

आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थालयः ।

ग्रन्थाङ्कः १८

सौरपुराणं व्यासकृतम् ।

एतत्पुस्तकं लेले इत्युपाह्वैः काशीनाथशास्त्रिभिः  
संशोधितम् ।

तत्र

महादेव चिमणाजी आपटे

इत्यनेन

पुण्याख्यपत्तने

आनन्दाश्रममुद्रणालये

आपसाक्षरैर्मुद्रयित्वा

प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः

(अस्य सर्वोऽङ्किकारा राजशासनानुमारेण स्वायत्तीकृताः)

मूल्यं ३ रूपकत्रयम् ।

\* ॥ ६१ ॥ सौर मन्वन्तरे रक्षेण्डरीर धमेनाथेनम् । मुद्रितम्

# शुद्धिपत्रम् ।

| पृष्ठाङ्कः । | पङ्क्तिपर्यङ्कः | अशुद्धम् ।    | शुद्धम् ।     | पृष्ठाङ्कः । | पङ्क्तिपर्यङ्कः | अशुद्धम् ।     | शुद्धम् ।    |
|--------------|-----------------|---------------|---------------|--------------|-----------------|----------------|--------------|
| २            | ६               | कञ्चुक        | कञ्चुक        | ३६           | २३              | सैहं           | सैहं         |
| ३            | २०              | विलक्षाय      | द्विलक्षाय    | ३६           | २३              | कौकुट          | कौकुट        |
| ५            | ४               | मुक्त         | भक्त          | ३६           | २५              | खड्गं          | खड्गं        |
| ५            | १७              | ज्ञानययी      | ज्ञानययी      | ३६           | २८              | चानालिकं       | च नालिकं     |
| ६            | ३२              | यत्रत्येत     | यत्र त्येत    | ३६           | २८              | भुनिः          | भुनिः        |
| ७            | १३              | न्यामुपरि     | न्या उपरि     | ३८           | २               | सदावत्स        | सदा वत्स     |
| ७            | १७              | विश्वतश्चक्षु | विश्वतश्चक्षु | ४२           | १७              | स्वरस्वतीम्    | सरस्वतीम् ।  |
| ८            | २९              | त्तियं        | त्ति यं       | ४७           | १२              | वैकुण्ठं       | वै कण्ठं     |
| ८            | २९              | त्तितं        | त्ति तं       | ४७           | १४              | बुद्धनाम्ना    | बुद्धनाम्ना  |
| ८            | ३०              | नेऽपि         | मानेऽपि       | ४७           | १५              | कल्किनाम्ना    | कल्किनाम्ना  |
| ९            | १               | वरा           | वरं           | ५४           | १४              | लम्भनं         | लम्भनं       |
| ९            | ९               | मज्ञानां      | मज्ञानं       | ५६           | २०              | ॥ ६१ ॥ ग्रहं   | *            |
| ९            | १६              | भक्तिलेशे न   | भक्तिलेशेन    | ५९           | ११              | विवर्जयेत् ।   | विसर्जयेत् । |
| १०           | ३२              | द्रष्टं       | द्रष्टुं      | ६१           | २०              | पाञ्चिव        | पाञ्चिव      |
| १२           | ३१              | यी यं         | यी तं         | ६४           | १९              | नन्यथा         | नन्यथा       |
| १३           | २९              | वै            | वै            | ६५           | ३               | सर्वतो मुखम् । | सर्वतोमुखम्  |
| १४           | १२              | महात्मानो     | महात्मनो      | ६५           | ४               | रं             | रं           |
| १६           | १५              | जगन्नये       | जगन्नये       | ६९           | १३              | स्र्चान्ध      | स्रश्चान्ध । |
| १६           | २३              | सूत उवाच      | सूत उवाच      | ८३           | १२              | कृतवे          | कृतवे        |
| १६           | ३०              | व्यास का      | व्यास का      | ८३           | १६              | मेरो           | मेरो         |
| १७           | २२              | कारेश्वर      | कारेश्वर      | ८९           | २९              | २८             | २८           |
| १९           | ३१              | धेनरः         | धे नरः        | ९०           | ६               | शाङ्गिणं       | शाङ्गिणं     |
| २१           | १०              | धृक्          | धृत्          | ९५           | २३              | राज्ञीरेवंत    | राज्ञी रेवंत |
| २१           | १२              | पशूनस्प       | पशूनस्प       | ९९           | ११              | चारुं          | चारुं        |
| २८           | २०              | ०             | सूत उवाच      | १०७          | २४              | वभूवा          | वभूवा        |
| ३०           | २९              | दंतो          | दंतो          | १२३          | २६              | शूलिनः         | शूलिनः       |
| ३२           | २               | ताल्लोका      | ताल्लोका      | १२४          | ४               | लंघरमया        | लंघर मया     |
| ३३           | ८               | भर्गो विश्वे  | भर्गो विश्वे  | १२४          | २३              | साहस्रं        | साहस्रं      |
| ३३           | २७              | मुर्यो        | मुर्यो        | १२४          | ३०              | भूते ततः       | भूतेन तत्क्ष |

| प्रक्रमांकः | पदकार्यक्रमांकः | अशुद्धम् ।   | शुद्धम् ।    | प्रक्रमांकः | पदकार्यक्रमांकः | अशुद्धम् ।  | शुद्धम् ।      |
|-------------|-----------------|--------------|--------------|-------------|-----------------|-------------|----------------|
| १३१         | २२              | कधुग्भवः     | कधुग्भवः     | १९३         | १५              | दंशन्ति     | दशन्ति         |
| १३२         | २१              | तद्रूपं      | तद्रूपं      | १८४         | २०              | पादुण्य     | पादुण्य        |
| १३५         | २               | खं सर्वं     | खं सर्वं     | १८८         | २५              | खेदः        | खेदः           |
| १३९         | २१              | म्लेच्छै     | म्लेच्छै     | १९५         | २२              | दैत्य       | दैत्य          |
| १४०         | ६               | पश्यसे       | शप्स्यसे     | १९६         | ९               | रद्रीके     | रद्रीके        |
| १४१         | २३              | च्छास्त्रनि  | च्छास्त्रनि  | २००         | ८               | मारुह       | ०              |
| १४३         | २५              | विरुपाक्षो   | विरुपाक्षो   | २००         | ९               | ०           | मारुह          |
| १४४         | ६               | परश्वधीः     | परश्वधीः     | २००         | ११              | खड्ग        | खड्ग           |
| १४८         | १९              | धृक् ।       | धृत् ।       | २०१         | २९              | यै          | ०              |
| १४८         | २५              | अलङ्कारिण्यु | अलङ्कारिण्यु | २०१         | ३०              | ०           | यै             |
| १४९         | १८              | धृक्         | धृत्         | २१०         | ९               | यणत्रयम्    | यणत्रयम्       |
| १५०         | ८               | स्वरमयः      | स्वरमयः      | २५८         | १४              | सखा         | सखा            |
| १५१         | १७              | यैक          | यैक          | २६८         | ९               | सर्वतः      | सर्वतः         |
| १६०         | ८               | सर्वतो भद्र  | सर्वतोभद्र   | २६८         | १२              | युक्ताति    | युक्ताति       |
| १६३         | ३               | आनन्तं       | आनन्त्यं     | २७४         | ३२              | श्वर        | श्वरं          |
| १६७         | २               | वर           | वरः          | २७५         | १               | द्रक्षपान्त | द्रक्षपान्ति   |
| १६९         | १२              | वाँल्लोका    | वाँल्लोका    | २७७         | ४               | स्तः शरणो   | विन्ध्यस्तचरणो |
| १८३         | १               | वाचम         | वचिम         | २८०         | २१              | दिग्भागो    | दिग्भागे       |

## अथ सौरपुराणस्य विषयानुक्रमः ।

अध्यायः १—नैमिषारण्यप्रशंसा । सूतागमनम् । सूतप्रशंसा । सौर-  
पुराणप्रशंसा । आदित्यस्तुतिः । आदित्यमनुसंवादः ।

अध्यायः २—भानोर्मतुं प्रति शिवमहिमकथनम् । महादेवस्य ब्रह्मा-  
दिष्टेः कथनम् । वेदोक्तं शिवमहिमवर्णनम् । महादेवस्य वेदेभ्यो हे वेदा लो-  
कपूजिता भविष्यध्वमित्पादिवरप्रदानम् ।

अध्यायः ३—आदित्यस्य मतुं प्रति शिवधर्मकथनम् । महादेवस्मरण-  
महिमा । सुद्युम्नारूपानम् । सुद्युम्नं प्रति तृणविन्दोरागमनम् । सुद्युम्नस्य तृण-  
विन्दुं प्रति पूर्वजन्मवृत्तकथनम् ।

अध्यायः ४—जालेश्वरमहिमा । वाराणसीमहिमा । गङ्गामहिमा । म-  
णिकर्णारूपतीर्थमहिमा । कलिपुगवर्णनम् ।

अध्यायः ५—विश्वेश्वरलिङ्गमहिमा । व्यासकृता शिवस्तुतिः । व्या-  
साय महादेवस्य वरप्रदानम् ।

अध्यायः ६—वाराणस्यामविमुक्तेश्वरस्याऽऽग्नेय्यां स्थिताया वाप्याः  
स्नानादिफलकथनम् । लाङ्गलीशिवर्णनम् । शूलपाणिमहिमा । तारकेश्वरमाहा-  
त्म्यम् । शुकेश्वरमहिमा । ओंकारेश्वरमाहात्म्यम् । कृत्तिवासेश्वरलिङ्गमहिमव-  
र्णनम् । हंसतीर्थकथनम् । रत्नेश्वरमाहात्म्यम् । वृद्धफालेश्वरवर्णनम् । मध्यमे-  
श्वरवर्णनम् । घण्टाकर्णहृदवर्णनम् । कपर्दीश्वरवर्णनम् । पिशाचमोचनतीर्थ-  
माहात्म्यम् ।

अध्यायः ७—दक्षेश्वरमाहात्म्यम् । दक्षोषारूपानम् । तत्कृतपद्मवर्णन-  
म् । शंकरेण विना कथं सर्वे देवाः समाहूता इत्यादिर्दक्ष प्रति ब्रह्मण उक्तिः ।  
शिवमहिमकथनम् । दधीचिदक्षयोः संवादः । दधीचिः शिवं प्रति दक्षयज्ञवृत्ता-  
न्तकथनम् । तं यज्ञमुद्दिश्य पार्वतीपरमेश्वरयोः संवादः । वीरभद्रोत्पत्तिः । द-  
क्षयज्ञविधातः । वाराणस्यां दक्षस्य दक्षेश्वरारूपलिङ्गप्रतिष्ठापनम् ।

अध्यायः ८—त्रिलोचनमाहात्म्यवर्णनम् । कामेश्वरमाहात्म्यम् । दुर्वा-  
ससे महादेवस्य वरप्रदानम् । व्यासकृता विशालाक्षीस्तुतिः । तस्या दर्शनमहि-  
मा । वाराणसीमाहात्म्यपठनादिकलम् ।

अध्यायः ९—पुराणलक्षणम् । यथाक्रममष्टादशपुराणवर्णनम् । तेषां दानफलकथनम् ।

अध्यायः १०—दानमहिमा । दानार्हविमाः । नित्यदानम् । नैमित्तिकदानम् । काम्यदानम् । विमलदानम् । अधिकदानम् । भूमिदानफलम् । विद्यादानफलम् । अन्नदानफलम् । जलदानफलम् । तिलदानफलम् । वासोदानफलम् । दीपदानफलम् । यानदानफलम् । शय्यादानफलम् । धान्यदानफलम् । अश्वदानफलम् । ब्रह्मदानफलम् । गोग्रासदानफलम् । शाकदानफलम् । इन्धनदानफलम् । छत्रदानफलम् । औषधदानफलम् । गोदानफलम् । संक्रान्तपादिपर्वकालदत्तदानफलम् ।

अध्यायः ११—शिवस्कन्दसंवादः । शिवभक्तमहिमा । शिवभक्तिमहिमा । शिवस्य स्कन्दं प्रत्यात्मज्ञानकथनम् ।

अध्यायः १२—योगसाधननिरूपणम् । यमकथनम् । नियमकथनम् । आर्हसाकथनम् । स्तेयकथनम् । ब्रह्मचर्यकथनम् । अपरिग्रहकथनम् । तपकथनम् । स्वाध्यायकथनम् । संतोषकथनम् । शौचकथनम् । ईश्वरपूजनकथनम् । सप्तविंशतिसंख्याकासनकथनम् । प्राणायामकथनम् । तस्य भेदाः । समाधिककथनम् ।

अध्यायः १३—उपसर्गकथनम् । सात्त्विकराजसादिविभक्तकथनम् । उपसर्गनाशोपायाः । ईश्वरध्यानम् ।

अध्यायः १४—कृष्णाष्टमीव्रतम् ।

अध्यायः १५—श्रवणद्वादशीव्रतकथनम् ।

अध्यायः १६—अनङ्गत्रयोदशीव्रतकथनम् ।

अध्यायः १७—वर्णभेदाः । आचारभेदाः । वर्णाश्रमविधिनिरूपणम् । अनधीतविमर्षणम् । साधुमकीर्तनम् । पुण्यदेशकथनम् । वज्र्यदेशकथनम् ।

अध्यायः १८—द्विजधर्मकथनम् ।

अध्यायः १९—श्राद्धविधिकथनम् ।

अध्यायः २०—ज्ञानप्रस्थधर्माः । संन्यासधर्माः ।

अध्यायः २१—भारुतमर्गकथनम् । ब्रह्मश्रुतिरूपनिः ।

अध्यायः २२—वाराहकल्पाकथनम् । ब्रह्मश्रुतिरूपनिः । पञ्चमर्गकथनम् ।

अध्यायः २३—सनकादिसृष्टिकथनम् । हरोत्पत्तिकथनम् । शिवाष्टमू-  
त्तिकथनम् । शिवस्तुतिः । हरस्य ब्रह्माणं प्रति प्रसादः ।

अध्यायः २४—विष्णुब्रह्मसंवादः । ब्रह्मपद्मयोनित्वकथनम् । विष्णो-  
र्द्धारद्वारप्राप्तिः । शिवमहिमवर्णनम् । अहमंशेन भविता पुत्रस्तव पितामहेति  
ब्रह्मणो हरस्य वरप्रदानम् । नाऽऽवाभ्यां विद्यते भेदो मच्छक्तिस्त्वं ( विष्णुः ),  
न संशय इत्यादिः शिवविष्णुसंवादः ।

अध्यायः २५—ब्रह्मोक्तगौरीस्तुतिः । गौरीो दक्षद्विदुत्वम् ।

अध्यायः २६—मरीचपादिसर्गकथनम् । दक्षकन्यासंततिकथनम् ।

अध्यायः २७—उत्तानपादसंततिकथनम् । मुशीलस्प पाशुपतयोगप्राप्तिः ।

अध्यायः २८—सुरासुरसृष्टिकथनम् । हिरण्यकशिपुवधः ।

अध्यायः २९—हिरण्याक्षवधः । प्रह्लादं प्रति विप्रशापः । अन्धकामुर-  
वधः । अन्धककृतशिवस्तुतिः । अन्धकस्य महादेवाद्वारप्राप्तिः । शिवविष्णुरूप-  
संमेलनम् । हरिहरभेददर्शनां पातकम् ।

अध्यायः ३०—प्रह्लादराज्याधिरोहणम् । तस्य तपोवनं प्रति गमनम् ।  
तत्पुत्रवंशः । पुलस्त्यसंततिः । अत्रिसंततिः । कश्यपसंततिः । इक्ष्वाकुवंशः ।  
रघुवंशः । रामचरितम् । रामस्य कुशलवादिसंततिः ।

अध्यायः ३१—पुरूरवोवंशः । यदुवंशः । विश्वतचरितम् । विश्वतोर्ष-  
शीवंशः । वसुदेवसंततिः । जनार्दनस्य महादेवाद्वारप्राप्तिः ।

अध्यायः ३२—शिधिनामधेपदेवेन्द्रचरितम् ।

अध्यायः ३३—नित्यनैमित्तिकप्राकृतात्पान्तकप्रतिसंचरकथनम् ।

अध्यायः ३४—त्रिपुरवर्णनम् । देवानां विष्णुं प्रति गमनम् । भूतान्प्र-  
ति नारायणस्य नियोगः । विष्णोत्रिपुरं प्रति मायिप्रेषणम् । दानवसंसोह-  
नम् । तेषां स्वधर्मत्यागः । त्रिपुरवधार्थं विष्णुकृतमहादेवस्तुतिः । शिवविष्णु-  
संवादः ।

अध्यायः ३५—शिवरथवर्णनम् । त्रिपुरवधार्थं देवानां प्रस्थानम् । म-  
हादेवं प्रति ब्रह्मणो विज्ञप्तिः । त्रिपुरदहनम् ।

अध्यायः ३६—उपमः सूयाख्यानम् ।

अध्यायः ३७—जालंधरवधः ।

अध्यायः ३८—शिवमहिमा । शिवविष्णु उद्दिश्य सूतशौनकसंवादः । प्रतर्दनोपाख्यानम् । प्रतर्दनक्षपणकसंवादः । प्रतर्दनस्य राज्यं त्यक्त्वा तपश्चरणम् । ब्रह्मप्रतर्दनसंवादः । प्रतर्दने महीं शासीत वर्णाश्रमाचारवर्णनम् । गुर्विन्द्र-संवादः । प्रतर्दनप्रजानां सन्मार्गाच्चालनार्थं देवान्प्रति बृहस्पतेरुपायकथनम् । भुवं गत्वा विष्णोः किंकरः शिव इति त्वया वक्तव्यमित्यादिः किंनरं प्रति शचीपतेरादेशः । शिवविष्णु उद्दिश्य प्रतर्दनवैष्णवाभाससंवादः ।

अध्यायः ३९—कलिप्रवेशः । संप्राप्ते कलौ प्रतर्दनपालितप्रजावस्थावर्णनम् । शिवमुद्दिश्य लक्ष्मीनारायणसंवादः । तयोः कैलासं प्रति प्रस्थानम् । प्रतर्दनचरितमुद्दिश्य शिवसुरसंवादः । मध्वाचार्यमधिकृत्य ब्रह्मणो भविष्य-कथनम् ।

अध्यायः ४०—श्रीमहेशस्य विष्णोश्च कथं तुल्यत्वमित्यादिः शौनकादीनामृषीणां सूतं प्रति प्रश्नः । तमुद्दिश्य तेषां सूतेन सह संवादः । रतिवसन्तादिसंवादः । कंदर्पनाशमधिकृत्य ब्रह्ममोहादिसंवादः । कलिमोहादिसंवादः । मधुमुद्दिश्य सूतस्य भविष्यकथनम् । मध्वाचार्यस्य गुरुं प्रति स्वोत्पत्त्यादिकथनम् । अन्धता तव सिद्धान्ते पूर्वं पक्षे च पाठवमित्यादिर्मधुं प्रति गुरोः शापः । कलिमहिमवर्णनम् । रते मा कुरु संतापमहं मोहः कलेः सखेत्यादि मोहादिभी रतेः समाश्वासनम् ।

अध्यायः ४१—विष्णोः सुदर्शनाख्यचक्रप्राप्तिमुद्दिश्य सूतशौनकादिसंवादः । विष्णोस्त्वरिताख्यरुद्रलिङ्गप्रतिष्ठापनम् । विष्णुप्रोक्तशिवसदस्त्रनामस्तोत्रम् । देत्यनिपूदनार्थं श्रीमहेशाद्विष्णोः सुदर्शनप्राप्तः । भक्तिर्मयि दृढा विष्णो भविष्यति त्वानघ । अजेयस्त्रिपुलोकेषु मत्प्रसादाद्भविष्यसीति विष्णवे शंभोर्वरप्रदानम् । विष्णुसमुदीरितशिवसदस्त्रनामस्तोत्रपठनादिमहिमा ।

अध्यायः ४२—शिवपूजाविधिः ।

अध्यायः ४३—उमामहेश्वरव्रतम् । द्वांगणपतिव्रतम् ।

अध्यायः ४४—शिवालपकरणफलम् । शिवालये क्रतस्य कर्मणः फलम् । शिवालपसंमार्जनादिफलम् । जलादिस्नानफलम् । वर्णगण्डन्पूजनादिप्रकारः । अरिसाफलम् । शिवभक्तिफलम् । रुद्रपूजनमहिमा ।

अध्यायः ४५—महेश्वरं दिव्यभूषां ब्रह्मादिदेवानां मन्दरं प्रति प्रया-

णम् । महेश्वरसुरसंवादः । शिवस्तुतिः । पाथुपतव्रतम् । पाथुपतव्रतमाहात्म्य-  
म् । भस्मधारणफलम् ।

**अध्यायः ४६—**शिवमाहात्म्यम् ।

**अध्यायः ४७—**अरुन्धतीसाँवित्रीसंवादः । शिवायतनसंमार्जनफलम् ।  
शिवपूजामाहात्म्यम् । कथं वैश्रवणः पूर्वं समाराध्य महेश्वरम् । लब्धं तस्मा-  
त्कुबेरत्वं सूत तद्भक्तुमर्हसीति शौनकादीनां सूतं प्रति प्रश्नः । सूतस्य तान्प्रति  
वैश्रवणस्य पूर्वजन्मप्रभृति कुबेरत्वप्राप्तिपर्यन्तमशेषं चरित्रकथनम् । कुबेर-  
कृतशिवस्तोत्रम् । कुबेरस्य महेश्वराद्भयप्राप्तिः । शिवपूजनादिमहिमा । कुबे-  
रकृतशिवस्तोत्रमहिमा ।

**अध्यायः ४८—**शिवमाहात्म्यम् । शिवधर्ममहिमा । शिवार्चनादिफ-  
लम् । नरवर्मणो राज्ञो महिष्याः सुदेव्या उपाख्यानम् । शिवदर्शनादिमहिमा ।

**अध्यायः ४९—**धर्मसंस्थापनार्थोप पार्वत्या अवतारः । रक्तासुरविक्रम-  
वर्णनम् । तस्य मन्त्रिनामानि । अहमेव भवतां पूज्य इत्यादिदानवान्प्रति रक्तासु-  
रस्योक्तिः । लोकस्य धर्महानिः । असुराभिभूतेन्द्रस्य बृहस्पतिसमीपं गत्वा स्वा-  
वस्थानकथनम् । न कालो विग्रहस्याद्येत्पादिभ्रूवन्तं प्रति बृहस्पतेरुपदेशः ।  
पुरोधोवचनमाकर्ष्य देवेन्द्रस्य अभिभूतो भृशं दैत्यैर्नादं जीवितुमुत्सह इत्यादि  
तं प्रति पुनरुक्तिः । मा विपादं कृथाः शक्र शरणं ब्रज पार्वतीमित्यादि ब्रह्मणो  
देवेन्द्रं प्रत्युपायकथनम् । त्रिदशैः सार्धं शक्रस्य हिमवन्तं गिरिं प्रति प्रस्थान-  
म् । पार्वत्यसुरपुद्गवर्णनम् । रक्तासुरवधः । शत्रुवधानन्तरं मघवते देव्या जग-  
देश्वर्यमदानम् ।

**अध्यायः ५०—**प्राप्तराज्यं सुराधिपं द्रष्टुमद्भिरआदिमुनीनामगमनम् ।  
कथमाराध्यते देवी वरदाऽचलकन्यकेत्यादिदेवेन्द्रस्य मुनीन्प्रति प्रश्नः । भवा-  
नीपूजनमहिमा । उलकानवमीव्रतम् । गिरिजाचर्चनमाहात्म्यम् ।

**अध्यायः ५१—**तिथिनिर्णयः । अर्कसंक्रान्त्यादिपूर्वपुण्यकालादिनिर्ण-  
यः । पुगादयः । मन्वन्तरादयः ।

**अध्यायः ५२—**प्रायश्चित्तविधिः ।

**अध्यायः ५३—**भानुमनुसंवादः । शिवस्मरणमहिमा । तारकासुरोपाख्या-  
नम् । तारकभयाभिभूतानां देवानां ब्रह्माणं प्रति रक्षणार्थं गमनम् । ब्रह्मण-  
स्तारकाय वरप्रदानम् । ब्रह्मसुरसंवादः । इन्द्रकामसंवादः । मदनदहनम् ।



अध्यायः५४—वरप्राप्त्यर्थं पार्वतीकृतमहादेवस्तुतिः । भवत्वनद्धो मरु-  
नस्त्वात्प्रियार्थमित्पादि महादेवस्य पार्वत्यै वरप्रदानम् ।

अध्यायः५५—पित्रे हिमालयाय पार्वत्या माहेश्वरज्ञानकथनम् ।

अध्यायः५६—पार्वतीपरगेश्वरविर्वाहमण्डपकरणमुद्दिश्य पर्वतेश्वरवि-  
श्वकर्मसंवादः । विवाहमण्डपवर्णनम् ।

अध्यायः५७—ईश्वरविवाहार्थं कालाग्र्याद्यावाहनम् । हरसंस्थानं प्रति  
कालाग्र्यादिप्रवेशः । शिवरूपवर्णनम् । शैलादेर्महेश्वराय देवासुरप्रवेशकथनम् ।  
सिन्ध्वादिनदीप्रवेशकथनम् ।

अध्यायः५८—उमाप्रदानार्थं हिमवतो मन्दरं प्रति गमनम् । शिवहिम-  
वत्संवादः । पार्वतीप्रदानम् । विवाहवर्णनम् ।

अध्यायः५९—मार्गभूपावर्णनम् । साम्बप्रत्युद्गमनार्थमागतानामप्सर-  
आदिदिव्यस्त्रीणां वर्णनम् । शंकरात्पार्वत्या भूषणप्राप्तिः । क्रीडास्थानवर्णनम् ।  
पार्वतीमुद्दिश्येश्वरहिमवत्संवादः । ब्रह्मशुक्रस्तनम् । वालखिल्योत्पत्तिः । वा-  
लखिल्यरूपपादिवर्णनम् । ब्रह्मादिदेवानां महेश्वराद्वरप्राप्तिः । शिवपार्वतीविवा-  
हश्रवणादिकथनम् ।

अध्यायः६०—रुद्रगणरूपवर्णनम् । ईश्वरचिरक्रीडोद्भूतोत्पातवर्णनम् ।  
उत्पातानुद्दिश्य नारददेवेन्द्रसंवादः । उत्पातकारणम् । शंकरक्रीडामधिकृत्य वि-  
ष्णुसुरसंवादः । प्रवेशायोग्यकालः । विष्णुसुरसंवादः ।

अध्यायः६१—अग्निस्तुतिः । अग्नेः शंभुग्रहं प्रति गमनम् । नन्दिरू-  
पवर्णनम् । हरं कथं पश्यामीत्याद्यग्नेश्चिन्ता । हंसरूपधारिणोऽग्नेर्महादेवक्री-  
डास्थाने प्रवेशः । पार्वतीवाहनवर्णनम् । सिंहस्य हुंकारेण ज्वलनस्य वधिर-  
त्वम् । तस्यैव शंभुग्रहान्निर्गमनम् । तं कृतकार्यं मन्यमानानां देवानां तेन संह-  
संभाषणम् । गतोऽहं तस्य भवनं 'देवदेवस्य शूलिन इत्याद्यग्नेर्देवान्प्रति यथा-  
वत्स्ववृत्तान्तकथनम् । मुनिगणैः सार्धं देवानां मन्दरं प्रति प्रयाणम् । शिवस्तु-  
तिः । वद्वेः शिवतेजोग्रहणम् । स्कन्दमुद्दिश्य शिवपार्वतीसंवादः ।

अध्यायः६२—देवानां सगर्भत्वम् । गर्भमुद्दिश्य शंकरसुरसंवादः । शर्वतेजोमहिमवर्णनम् । कुमारोत्पत्तिः । तमुद्दिश्य शिवपार्वतीसंवादः । तस्य  
क्रीडनम् । पद्मानननाशमधिकृत्य देवेन्द्रभक्तसंवादः । कथमुक्तमिदं भूता वा-  
लस्य हननं प्रतीत्यादिः पुरंदरस्य भूतान्प्रत्युत्तिः । आतुरादिनिषेदनपातयम् ।

गर्भोदितेयथा शक्र संरम्भात्सूदितस्त्वया । तदा नीतिर्गता 'कुत्रेत्पादिरिन्द्रं  
मति भूतानां प्रत्युक्तिः । स्कन्दवधार्थमिन्द्रप्रस्थानम् ।

अध्यायः ६३—नारदमहेन्द्रसंवादः । स्कन्दवर्णनम् । स्कन्दमहेन्द्रयु-  
द्धवर्णनम् । गुर्विन्द्रसंवादः । प्रसीद मे त्वं शरणागतस्येत्पादिर्महेन्द्रस्य स्क-  
न्दं प्रत्युक्तिः । स्कन्दमहेन्द्रसंवादः । गुहस्य सेनापत्यप्राप्तिः । तारकासुरवधः ।

अध्यायः ६४—शंकरभक्तियोगमाहात्म्यम् । शिवभक्तिमहिमा । लि-  
ङ्गार्चनमहिमा । सत्पञ्चजस्रतवसुश्रुतोपाख्यानम् । वसुश्रुतमुद्दिश्य यमतर्कि-  
करसंवादः । शिवभक्तमाहात्म्यम् ।

अध्यायः ६५—पञ्चाक्षरमन्त्रमहिमा । विल्ववृक्षमहिमा । शिवार्चनफ-  
लम् । नानाविधपुष्पकृतशिवपूजाफलम् । शिवमिपुष्पतारतम्यम् । निपिद्धपु-  
ष्पाणि । विल्वपत्रादिभिः कृतस्य शिवार्चनस्य माहात्म्यम् । शिवालपमण्ड-  
नफलम् । पुष्पादिकृतपूजाफलम् । कूपारामादिवन्धनफलम् । शिवक्षेत्रादिमानम् ।

अध्यायः ६६—शिवभीतिफलम् । शिवभजनफलम् । शिवस्मरणफ-  
लम् । शिवनिर्माल्यधारणमहिमा । शिवनिर्माल्यलङ्घनपातकम् । लिङ्गव्याख्या-  
नम् । ज्येष्ठत्वार्थं ब्रह्मविष्णुविवादः । तदर्पहरणाय लिङ्गप्रादुर्भावः । ज्येष्ठत्वं  
युवयोस्तावदास्तामित्पादिर्विष्णुब्रह्माणौ मति मुहादेवस्योक्तिः । मत्प्रसादेन सर्व-  
स्मादधिको भव माधवेति विष्णवे महादेवस्य वस्त्रप्रदानम् । चराचरस्य ज-  
गतो मान्यो भव पितामहेति शंकरस्य ब्रह्मणे वस्त्रप्रदानम् । ब्रह्मनारदसंवादः ।  
समुद्रदर्शनादिमहिमा । सप्तकोटीश्वरलिङ्गमाहात्म्यम् ।

अध्यायः ६७—उज्जयिनीस्थमहाकाललिङ्गमाहात्म्यम् । कुक्कुटेश्वरोत्प-  
त्तिः । शूलेश्वरमाहात्म्यम् । ओंकारेश्वरमाहात्म्यम् । अगस्त्येश्वरप्रादुर्भावः ।  
शक्तिभद्रारूपलिङ्गमहिमा । स्थाणुलिङ्गमहिमा । प्रयागमाहात्म्यम् । गपातीर्थ-  
माहात्म्यम् ।

अध्यायः ६८—तिथिनिर्णयः । सोमसूत्रमदक्षिणा । मन्त्रवीर्षहरपदा-  
धाः । गुरुशब्दव्युत्पत्तिः । गुरुत्यागादिदोषः । श्राद्धकर्तृनिर्णयः । साम्प्रिक-  
निरम्प्रिकव्याख्यानम् । एकहस्तकृतमणामादिदोषकथनम् । अक्षरगणकथ-  
नम् । परभक्षककथनम् ।

अध्यायः ६९—श्वेतोपाख्यानम् । शंभोः कालकालाख्याप्राप्तिः । ज्वा-  
लेश्वरादिलिङ्गमाहात्म्यम् । मुनिपत्नीमोहनमुद्दिश्य ब्रह्मनारदसंवादः । सीरपु-  
राशश्रवणादिमहिमा ।

सौरपुराणस्याऽऽदर्शपुस्तकानि शुद्धीकरणार्थं येषां मिलितानि  
तेषां नामानि पुस्तकानां संज्ञाश्च प्रदर्शयन्ते ।

- ( फ. ) इति संज्ञितम्—पनवेलग्रामस्थानां वृषपटोपाह्वानां वे० शा० सं० रा०  
रा० इसलामपुरकरोपाह्वैर्वाग्निशास्त्रिभिर्दत्तम् ।
- ( ख. ) इति संज्ञितम्—दक्षिणापथवर्तिविद्यालयग्रन्थसंग्रहालयस्थं डाक्टर इत्यु-  
पपदधारिभिर्भाण्डारकरोपाह्वै रामकृष्ण गोपाल इत्येतै-  
र्दत्तम् ।
- ( ग. ) इति संज्ञितम्—दक्षिणापथवर्तिविद्यालयग्रन्थसंग्रहालयस्थं डाक्टर इत्यु-  
पपदधारिभिर्भाण्डारकरोपाह्वै रामकृष्ण गोपाल इत्येतै-  
र्दत्तम् । लेखनकालः संवत् १६४५
- ( घ. ) इति संज्ञितम्—दक्षिणापथवर्तिविद्यालयग्रन्थसंग्रहालयस्थं डाक्टर इत्यु-  
पपदधारिभिर्भाण्डारकरोपाह्वै रामकृष्ण गोपाल इत्येतै-  
र्दत्तम् । लेखनकालः संवत् १७४१
- ( ङ. ) इति संज्ञितम्—दक्षिणापथवर्तिविद्यालयग्रन्थसंग्रहालयस्थं डाक्टर इत्यु-  
पपदधारिभिर्भाण्डारकरोपाह्वै रामकृष्ण गोपाल इत्येतै-  
र्दत्तम् । लेखनकालः संवत् १८१९
- ( च. ) इति संज्ञितम्—दक्षिणापथवर्तिविद्यालयग्रन्थसंग्रहालयस्थं डाक्टर इत्यु-  
पपदधारिभिर्भाण्डारकरोपाह्वै रामकृष्ण गोपाल इत्येतै-  
र्दत्तम् ।
- ( छ. ) इति संज्ञितम्—दक्षिणापथवर्तिविद्यालयग्रन्थसंग्रहालयस्थं डाक्टर इत्यु-  
पपदधारिभिर्भाण्डारकरोपाह्वै रामकृष्ण गोपाल इत्येतै-  
र्दत्तम् । लेखनकालः संवत् १८१९
- ( ज. ) इति संज्ञितम्—पुण्यपत्तननिवासिनां आडघरे इत्युपाह्वानां वे०शा०सं०  
रा०रा०भाऊसाहेबवैद्य इत्येतेषाम् ।
- ( झ. ) इति संज्ञितम्—पुण्यपत्तननिवासिनां साठे इत्युपाह्वानां रा०रा० गोपा-  
लराव इत्येतेषाम् ।

॥ श्रीः ॥

# सौरपुराणम्

व्यासकृतम् ।

यस्याऽऽज्ञया जगत्स्रष्टा विरञ्चिः पालको हरिः ।  
संहर्ता कालरुद्राख्यो नमस्तस्मै पिनाकिने ॥ १ ॥

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम् ।

मुनीनामाश्रयो नित्यं नैमिपारण्यमुत्तमम् ॥ २ ॥

शौनिकाद्या महात्मानः शिवभक्ता महौजसः ।

दीर्घसत्रं प्रकुर्वन्तस्तत्रेशानस्य तुष्टये ॥ ३ ॥

तस्मिन्सत्रे महाभागो मुनीनां भाग्यगौरवात् ।

आजगाम मुनीन्द्रष्टुं सूतः पौराणिकोत्तमः ॥ ४ ॥

तं दृष्ट्वा ते महात्मानो नैमिपारण्यवासिनः ।

महृष्टाः प्रष्टुमुद्युक्ताः पप्रच्छू रोमहर्षणम् ॥ ५ ॥

**ऋषय ऊचुः**—कथं भगवता पूर्वमादित्येनाऽऽत्मरूपिणा ।

पुराणं कथितं सौरं तन्नो वक्तुमिहार्हसि ॥ ६ ॥

ऋष्णद्वैपायनात्साक्षात्पूर्वं हि विदितं त्वया ।

त्वत्तो नास्ति परो वक्ता पुराणानां महोत्तमः ॥ ७ ॥

सन्त्यन्ये बहवः शिष्या अपि तस्य महात्मनः ।

तथाऽपि शिष्यवात्सल्याच्चं पुराणेषु योजितः ॥ ८ ॥

यान्यन्यानि पुराणानि त्वयोक्तानि महामुने ।

अञ्जं तैः पार्वतीकान्तभक्तौ भक्तियुतं त्विदम् ॥ ९ ॥

न यज्ञेन तपोभिर्वा न दानेन व्रतैस्तथा ।

शिवभक्तिमृते यस्मान्मुक्तिर्नास्तीति श्रुश्रुम ॥ १० ॥

देवोऽयं भगवान्भानुरन्तर्यामी सनातनः ।

यो ब्रूते सर्ववस्तूनां तत्त्वं ज्ञात्वैव नान्यथा ॥ ११ ॥

१ ( ए. ) 'हा भक्ता महात्मानो म' । २ ( इ. ) 'भक्तया म' । ३ ( ए. ग. ) 'त सूत त' ।  
४ ( ग. इ. ए. ) 'सौर्य त' । ५ ( ए. ग. ) 'नाम्य' । ६ ( ए. ग. ) 'हामने ॥ ७ ॥ ७ ( अ. ग. ) 'शिष्यो ना' । ८ ( ए. ग. ) 'हामने । अ' ।

अतः श्रद्धा हि महती श्रोतुं त्वद्ददनामृतम् ।

अस्माकं वर्तते सूते रोमहर्षण सुव्रत ॥ १२ ॥

सूत उवाच—नत्वा सूर्यं परं धाम ऋष्यजुःसामरूपिणम् ।

त्रिसत्यं त्रिजगद्योनिं त्रिमार्गं च त्रितत्त्वगम् ॥ १३ ॥

पुराणं संप्रवक्ष्यामि सौरं शिवकथाश्रयम् ।

यच्छ्रुत्वा मनुजः शीघ्रं पापकञ्चुकमुत्सृजेत् ॥ १४ ॥

श्लोकद्वयं पठेद्यस्तु श्लोकमेकमथापि वा ।

श्रद्धेवान्पापकर्माऽपि स गच्छेत्सवितुः पदम् ॥ १५ ॥

पौराणीं वृत्तिर्माश्रित्य ये जीवन्ति द्विजातयैः ।

तन्मण्डलं विनिर्मिद्य तत्सायुज्यं व्रजन्ति ते ॥ १६ ॥

वक्ता यत्र रविः साक्षाच्छ्रोता तस्य भृतो मनुः ।

माहात्म्यं कथ्यते शंभोर्नास्त्यस्मादधिकं द्विजाः ॥ १७ ॥

इदं पुराणं वक्तव्यं धार्मिकायानसूयवे ।

द्विजाय श्रद्धधानाय शिवैकार्पितबुद्धये ॥ १८ ॥

आसीन्मनुः सूर्यभृतो वर्तते यो महातपाः ।

स कदाचिन्महाभागः कामिकारुण्यं वनं ययौ ॥ १९ ॥

प्रतर्दनरयं वृषतेर्षेज्ञे विपुलदक्षिणे ।

तत्त्वं विचारयामासुर्मियो यत्र महर्षयः ॥ २० ॥

अशक्तास्ते महाभागा भृग्वाद्यास्तत्त्वनिर्णये ॥

एवं स्थितेषु त्रिषेणु मापया मोहितात्मसु ॥ २१ ॥

संशयाविष्टचित्तेषु वागभूदशरीरिणी ।

तपः कुरुध्वं विम्रेन्द्रास्तपो ज्ञाननिवर्हणम् ॥ २२ ॥

तपसा प्राप्यते सर्वमिति ते श्वश्रुतुर्गिरम् ।

श्रुत्वा तु मुनयः सर्वे भृग्वाद्या दग्धकिल्बिषाः ॥ २३ ॥

मेतुं पुरस्कृत्य ययुः क्षेत्रं वै द्वादशात्मनः ।

विश्रुतं द्वादशादिस्वमिति लोकेषु तद्विजाः ॥ २४ ॥

१ ( घ. ) \*तः सुखा नो हि मतिः श्रेः । २ ( रा. ग. ) \*त लोम । ३ ( घ. ड. व. इ. ) \*ग तु प्र । ४ ( क. ग. ) \*मि ई य धि । ( सं. ) \*मि धि य धि । ५ ( क. रा. ग. ) \*द्विपुलः परं परं पदार्थं वा यनुष्यदम् । ६ ( क. रा. ग. ) \*मात्स्याय ये पठन्ति १७ ( क. रा. ग. ) \*ग । १८ ( क. रा. ग. ) \*मात्स्याय ये पठन्ति १७ ( क. रा. ग. ) \*ग । १९ ( क. रा. ग. ) \*ता यैव ययो । २० ( क. रा. ग. ) \*तेर्षेणो यो । २१ ( क. रा. ग. ) \*तपसा प्राप्यते सर्वमिति ते श्वश्रुतुर्गिरम् । २२ ( क. रा. ग. ) \*तपसा प्राप्यते सर्वमिति ते श्वश्रुतुर्गिरम् । २३ ( क. रा. ग. ) \*तपसा प्राप्यते सर्वमिति ते श्वश्रुतुर्गिरम् । २४ ( क. रा. ग. ) \*तपसा प्राप्यते सर्वमिति ते श्वश्रुतुर्गिरम् ।

यत्र संनिहितो नित्यं भानुद्विदशपूजितः ।  
तेपुस्तत्रं तपो घोरं तच्चदर्शनकाङ्क्षिणः ॥ २५ ॥

गते वर्षसहस्रे तु सूर्यः प्रत्यक्षतामगात् ।  
किमर्थं तप्यते वत्स सर्वैश्चैतैर्महर्षिभिः ॥ २६ ॥

तुष्टोऽहं तव दास्यामि यत्ते मनसि वर्तते ।  
एते च मुनयः सर्वे तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ २७ ॥

पश्यन्तु मां परं देवं विश्वान्तर्यामिणं विभुम् ॥ २८ ॥

**मृत उवाच**—इति दृष्ट्वा रविं साक्षात्प्रत्यक्षं पुरतः स्थितम् ।

मेने कृतार्थमात्मानं भनुर्वेवस्वतस्तदा ॥ २९ ॥

आत्मन्यात्मानमाघाय सर्वभावेन संयमी ।

स्तुतिं चकार स मनुर्मुनिभिः सह सुव्रतः ॥ ३० ॥

**मनुस्वाच**—नमो नमो वरेण्याय वरदार्याथमालिने ।

ज्योतिर्मय नमस्तुभ्यमनन्तायाजिताथे ते ॥ ३१ ॥

त्रिलोकचक्षुषे तुभ्यं त्रिगुणायामृताय च ।

नमो धर्माय हंसाय जगज्जननहेतवे ॥ ३२ ॥

नरनारीशरीराय नमो मीढुष्टमाय ते ।

प्रज्ञानायाखिलेशाय सप्ताश्वाय त्रिमूर्तये ॥ ३३ ॥

नमो व्याहृतिरूपाय त्रिलक्षायाशुगामिने ।

हर्यश्वाय नमस्तुभ्यं नमी हरितवाहवे ॥ ३४ ॥

एकलक्षविलक्षाय बहुलक्षाय दण्डिने ।

एकसंस्थद्विसंस्थाय बहुसंस्थाय ते नमः ॥ ३५ ॥

शक्तित्रयाय शुक्लाय रवये परमेष्ठिने ।

त्वं शिवस्त्वं हरिर्देव त्वं ब्रह्मा त्वं दिवस्पतिः ॥ ३६ ॥

त्वमोकारो वपट्टारः स्वधा स्वाहा त्वमेव हि ।

त्वामृते परमात्मानं न तत्पश्यामि दैवतम् ॥ ३७ ॥

एवं स्तुत्वा मनुः प्राह भगवन्तं त्रयीमयम् ।

मुनिभिः सह धर्मात्मा सम्पददर्शनकाङ्क्षिभिः ॥ ३८ ॥

१ (क. ख. ग.) 'त्र महाधी' । २ (च. छ.) 'ते पुत्र स' । ३ (क. ख. ग घ छ.) 'एवं चिते महर्षयः । तु' । ४ (क. ख. ग.) 'सि रोचते' । ५ (क. ख. ग.) 'ते सर्वे च मुनयस्तप' । ६ (घ.) 'स्तु परम दे' । ७ (घ.) 'शुश्रुविन्दाक्ष प्रत्य' । ८ (च.) 'मो वेद्याय वरद व' । ९ (क. ख. ग.) 'व वे ॥ ३१ ॥ (घ.) 'व ते ॥ ३२ ॥ १० (घ. ख. ग.) 'मो हंसाय वभाय । ११ (घ.) 'दृष्ट्वाय नमो न' ।

**मनुरुवाच**—किं तच्छ्रेयस्करं तत्त्वं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् ।  
 कस्माद्विश्वमिदं जातं कस्मिन्वा लयमेष्यति ॥ ३९ ॥  
 कस्य ब्रह्मादयो देवा वशे तिष्ठन्ति सर्वदा ।  
 तदेकमथवाऽनेकमुभयं वा वद प्रभो ॥ ४० ॥  
 केन वा ज्ञायते सम्यगयमेश्व इतीतिवत् ।  
 ज्ञाते तस्मिंस्तु किं रूपं तस्य ज्ञानं किमात्मकम् ॥ ४१ ॥  
 चरितं तस्य किं तात किं तीर्थं तदधिष्ठितम् ।  
 केषामनुग्रहस्तस्य तीर्थे निवसतां प्रभो ॥ ४२ ॥  
 लक्षणं च पुराणानां व्रतानां च क्रमी यथा ।  
 वर्णानामाश्रमाणां च वर्णाचारविधिः कथम् ॥ ४३ ॥  
 श्राद्धं कथं वा क्रियते प्रायश्चित्तविधिः कथम् ।  
 एतत्सर्वं हि भगवन्पृष्ठं वक्तुमिहार्हसि ॥ ४४ ॥  
 एवं मनोर्वचः श्रुत्वा भगवान्भास्करो द्विजाः ।  
 यत्पृष्ठं तदशेषेण वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ४५ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे नैमिषारण्य-  
 प्रशंसादिकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

**भानुरुवाच**—शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि तत्त्वं यत्र प्रतिष्ठितम् ।  
 पुराणेऽस्मिन्महाभाग सर्ववेदार्थसंग्रहे ॥ १ ॥  
 तैत्तत्त्वं यद्भगवतो रूपमीशस्य शूलिनः ।  
 विश्वं तेनाखिलं व्याप्तं नान्येनेत्यब्रवीच्छ्रुतिः ॥ २ ॥  
 स एवाऽऽत्मा समस्तानां भूतानां मनुजाधिप ।  
 चैतन्यरूपो भस्वान्महादेवः सहोपया ॥ ३ ॥  
 एकोऽपि बहुधा भाति लीलया केवलः शिवः ।  
 ब्रह्मविष्ण्वादिरूपेण देवदेवो महेश्वरः ॥ ४ ॥  
 पृष्ठो ब्रह्मादिभिर्देवैः कस्त्वं देवेति शंकरः ।  
 अब्रवीदहमेवैको नान्यः कश्चिदिति श्रुतिः ॥ ५ ॥  
 आत्मभूतान्महादेवाल्लीलाविग्रहरूपिणः ।  
 आदिसर्गे समुद्भूतो ब्रह्मविष्णु सरोत्तमो ॥ ६ ॥  
 तमेकं परमात्मानमादिकर्तारमीश्वरम् ।  
 माहुर्बहुविधे तज्ज्ञा इन्द्रं मित्र इति श्रुतिः ॥ ७ ॥

१ (क.स.ग.) वा पाठः । २ (क.स.ग.) 'मर्षे' । ३ (क.स.ग.) 'त पटु । झ. ' । ४ (घ.) 'शुशु-  
 षे' । ५ (घ.) 'कुं तम्' । ६ (घ.) 'यु न त्व भग' । (घ. ' । ७ (घ.) 'इन्द्रं तं दे' । (ल. 'ग. भाटु' ।

न तस्मादधिकः कश्चिन्नाणीयानपि कश्चन ।  
 तेनेदमखिलं पूर्णं शंकरेण महात्मना ॥ ८ ॥  
 मुमुक्षुभिः सदा ध्येयः शिव एको निरञ्जनः ।  
 सर्वमन्यत्परित्यज्य मुक्त एव विमुच्यते ॥ ९ ॥  
 † न तस्य कर्मकार्यं वा बन्धमुक्ती महेशितुः ।  
 आनन्दरूपया गौर्यां क्रीडति स्म महेश्वरः ॥ १० ॥  
 अक्षरं परमं व्योम शैवं ज्योतिरनामयम् ।  
 यस्तन्न वेद किं वेदैर्ब्राह्मणस्य भविष्यति ॥ ११ ॥  
 † नान्यो वेद्यः स्वयंज्योती रुद्र एको निरञ्जनः ।  
 तस्मिञ्ज्ञातेऽखिलं ज्ञातमित्याहुर्वेदवादिनः ॥ १२ ॥  
 अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च शक्रश्चान्ये दिवोकसः ।  
 अद्याप्युपायैर्विविधैः शंभोर्दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ १३ ॥  
 न दानैर्न तपोभिर्वा नाश्वमेधादिभिर्मसैः ।  
 भक्त्यैवानन्यया राजञ्ज्ञायते भगवाञ्शिवः ॥ १४ ॥  
 यतो वाचो निवर्तन्ते अर्थाप्य मनसा सह ।  
 भर्गाद्विश्वस्य भरणाद्विश्वपोनेरुभापतेः ॥ १५ ॥  
 तस्य ज्ञानययी शक्तिरव्यया गिरिजा शिवा ।  
 तया सह महादेवः सृजत्यवति हन्ति च ॥ १६ ॥  
 आचक्षते तपोभेदमज्ञानं परमार्थतः ।  
 अभेदः शिवयोः सिद्धो बह्निदाहकपोरिव ॥ १७ ॥  
 माया सा परमा शक्तिरक्षरा गिरिजाऽव्यया ।  
 मायाविश्वात्मको रुद्रस्तज्ज्ञात्वा ह्यमृतीभवेत् ॥ १८ ॥

\* छन्दोगपुराणे न तस्येत्यादिधोक्त्वात्पूर्वधर्मार्थैकमित्यादि वदसिद्धान्त इत्यन्तमधिकं दृश्यते । तद्यथा—  
 धर्मार्थैकामभौक्षणा प्रापणे कारणं परम् । शिवभक्तिं मुदा सत्यं नान्यत्किञ्चन भूतले ॥ १ ॥  
 त्रिलोक्यया सुखकामो यस्तेन पूज्यः सदाशिवः । शिवभक्तमृते सौख्यं पुनः स्थात्सर्वदेहिनाम् ॥ २ ॥  
 शिवभक्त्या धनं विद्यां यथा शत्रुघ्नयस्तथा । प्राप्यते विजयं सर्वं सत्यमेतन्न सशयं ॥ ३ ॥  
 गेगघृथस्तथाऽऽरोम्य यद्यद्वि मनसोऽति । जनस्तःसर्वमाप्सति वेदस्य वचनं यथा ॥ ४ ॥  
 ताहि सर्वेऽपि शिवभक्तिं कथं न कुर्वन्ति तत्राऽऽह ।  
 यदा ललाटे ध्यात्रा हि लिखितं सौख्यमुत्तमम् । शिवभक्ती तदा बुद्धिर्जायते नान्यथा ध्रुवम् ॥ ५ ॥  
 यदा ललाटे सुखपातिर्लिखिता मनेत्तदा शिवसेवायां मतिर्भवताति वेदसिद्धान्तः ।

† घनहितपुराणकेषु धोको नास्ति ।



स्वात्मन्यवस्थितं देवं विश्वव्यापिनमीश्वरम् ।  
 भक्त्या परमया राजञ्ज्ञात्वा पाशैर्विमुच्यते ॥ १९ ॥  
 सकलं तस्य भासैव भाति नान्येन शंकरः ।  
 तस्मिन्प्रकाशमाने हि नैवभ्रन्त्षनलादयः ॥ २० ॥  
 तस्मिन्महेश्वरे गृढे विद्याविद्ये क्षराक्षरे ।  
 विधातरि जगन्नाथे विश्वं भाति न वस्तुतः ॥ २१ ॥  
 तस्मिन्महेश्वरे विश्वमोतं प्रोतं न संशयः ।  
 तस्मिञ्ज्ञातेऽखिलैः पाशैर्मुच्यते मनुजेश्वरः ॥ २२ ॥  
 ब्रह्मविष्णवादयो देवा मुनयो मनवस्तथा ।  
 सर्वे क्रीडनकास्तस्य देवदेवस्य शूलिनः ॥ २३ ॥  
 स एवैको न चानेको न द्विरूपः कदाचन ।  
 तस्याऽऽज्ञयाऽखिलं विश्वं वर्तते तन्नियन्त्रितम् ॥ २४ ॥  
 आदिसर्गे महादेवो ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः ।  
 दक्षिणाङ्गाद्विरूपाक्षः सृष्ट्यर्थं लीलया किल ॥ २५ ॥  
 तस्मै वेदान्पुराणानि दत्तवानग्रजन्मने ।  
 वासुदेवं जगद्योगिं सत्त्वोद्विक्तं सनातनम् ॥ २६ ॥  
 असृजत्पालनार्थं च वामभागान्महेश्वरः ।  
 हृदयात्कालरुद्राख्यं जगत्संहारकारकम् ॥ २७ ॥  
 असृजद्योगिनां ध्येयो निर्गुणस्तु स्वयं शिवः ।  
 विश्वं तस्माद्वि संभृतं तस्मिंस्तिष्ठति शंकरे ॥ २८ ॥  
 लयमेप्सति तत्रैवं त्रयमेतत्स्वलीलया ।  
 स एवाऽऽत्मा महादेवः सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ २९ ॥  
 ज्ञानेन भक्तियुक्तेन ज्ञातव्यः परमेश्वरः ।  
 न पश्यामि महादेवादधिकं देवतान्तरम् ॥ ३० ॥  
 वेदा अपि तमेवार्थमाहुः स्वाखंभुवेऽन्तरे ॥  
**वेदा ऊचुः**—यं प्रपश्यन्ति विद्वांसो योगिनः क्षपिताशयाः ।  
 नियम्य करणग्रामं स एवाऽऽत्मा महेश्वरः ॥ ३१ ॥  
 ब्रह्मविष्णवन्द्रचन्द्राद्या यस्य देवस्य किंकराः ।  
 यस्य प्रसादाज्जीवन्ति स देवः पार्वतीपतिः ॥ ३२ ॥

१ (घ. ड. च. छ.) 'त्मव्यव' २ (क. ख. ग.) 'तस्य भासैव सरल मा' ३ (घ. ख. ग.)  
 'यस्मि' ४ (ग.) 'मोतयो' ५ (घ. ड. च. छ.) 'को भवाने' ६ (घ.) 'पार्वतीनाथो मा'  
 ७ (क. ख. ग.) 'कारिणम्' ८ (घ. ड. च. छ.) 'व यन्त्येन' ९ (घ. क. च. ड.) 'न मुनि'

न जानन्ति परं भावं यस्य ब्रह्मादयः सुराः ।  
 अद्यापि न वयं विद्मः स देवत्रिपुरान्तकः ॥ ३३ ॥  
 शृण्वन्तु देवताः सर्वाः सत्यमस्मद्ब्रह्मचः परम् ।  
 नास्ति रुद्रान्महाभेवाद्भूतिकं देवतं परम् ॥ ३४ ॥  
 न यथा कूर्मरोमाणि शृङ्गं न शशमस्तके ।  
 न यथाऽस्ति वियत्पुष्पं तथा नास्ति हरात्परम् ॥ ३५ ॥  
 शिवभक्तिमृते यस्तु सुखमाप्नुमिहेच्छति ।  
 अजागलस्तनादेव स दुर्ग्यं पालुमिच्छति ॥ ३६ ॥  
 महादेवं विज्यानीपार्दहमस्मीति पण्डितः ।  
 अन्यतिकमस्मादप्यस्ति ज्ञातव्यं मुक्तिहेतवे ॥ ३७ ॥  
 ब्राह्मीं नारायणीं रौद्रीं पूजयित्वा महेश्वरीम् ।  
 यत्प्रपश्यन्ति योगीन्द्रास्तद्विद्याच्छांकरं पदम् ॥ ३८ ॥  
 क्रमाच्चक्राणि चक्रम्य शङ्खिन्यामुपरि स्थितम् ।  
 यद्भिव्यज्यते ज्योतिस्तद्विद्याच्छांकरं पदम् ॥ ३९ ॥  
 देवयानपथं हित्वा पितृयानं तथोत्तरम् ।  
 गगनाद्यो रवः सूक्ष्मः शंकरस्य स वाचकः ॥ ४० ॥  
 विश्वतश्वक्षुरीशानघ्निशूली विश्वतोमुखः ।  
 जनकः सर्वभूतानामेक एव महेश्वरः ॥ ४१ ॥  
 बालाग्रमात्रं हृत्पत्रे स्थितं देवमुमापतिम् ।  
 येऽनुपश्यन्ति विद्वांसस्तेषां शान्तिर्हो शाश्वती ॥ ४२ ॥  
 पृथिव्यां तिष्ठति विभुः पृथिवी वेत्ति नैव तम् ।  
 रूपं च पृथिवी यस्य तस्मै भूम्यात्मने नमः ॥ ४३ ॥  
 अम्बु तिष्ठति नैवाऽऽपस्तं विदुः परमेश्वरम् ।  
 आपो रूपं च यस्यैव नमस्तस्मै जलात्मने ॥ ४४ ॥  
 योऽग्नौ तिष्ठत्यमेयात्मा न तं वेत्ति कदाचन ।  
 अग्नी रूपं भवेद्यस्य तस्मै वह्न्यात्मने नमः ॥ ४५ ॥  
 तिष्ठत्यजस्रं यो वायौ न वायुर्वेत्ति तं परम् ।  
 वायुर्यस्य भवेद्रूपं तस्मै वाय्वात्मने नमः ॥ ४६ ॥  
 व्योम्नि तिष्ठति यो नित्यं व्योम वेत्ति न तं हरम् ।  
 व्योम यस्य भवेद्रूपं तस्मै व्योमात्मने नमः ॥ ४७ ॥

**भानुरुवाच**—एवं दत्त्वा वरान्देवो वेदेभ्यो गिरिजापतिः ।

पश्यतामेव वेदानां क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥ ६१ ॥ १०६ ॥  
इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे शिवमहिम-  
वर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

**भानुरुवाच**—यदेतदैश्वरं तेजः सर्वगं भाति केवलम् ।

तदेव शरणं गच्छ यदीच्छसि परं पदम् ॥ १ ॥

तदेव सर्वभूतस्थं चिन्मात्रं तमसः परम् ।

अक्षरं निर्गुणं शुद्धमानन्दं परमव्ययम् ॥ २ ॥

प्रत्यक्षं सर्वभूतानामज्ञानां तद्विपर्ययः ।

विश्वमायाविधातारं द्विरष्टादशरूपिणम् ॥ ३ ॥

भक्तिग्राह्यं महादेवं जानीह्यार्त्तमनि संस्थितम् ।

आत्मभूते महादेवे योगिध्येये सनातने ॥ ४ ॥

भक्तिमास्थाय परमां परं निर्वाणमामुहि ।

तीर्थयात्रा बहुविधा यज्ञाश्च विविधाः क्रताः ॥ ५ ॥

येषां जन्मसहस्रेषु तेषां भक्तिर्भवेच्छिवे ।

अक्षयः परमो धर्मो भक्तिलेशे न ज्ञापते ॥ ६ ॥

नास्ति तस्मात्परो धर्म इत्याहुर्वेदवादिनः ।

धर्मो बहुविधः प्रोक्तो मुनिभिस्तच्चदर्शिभिः ॥ ७ ॥

तत्राक्षयः परो धर्मः शिवधर्मः सनातनः ।

यज्ञात्तीर्थाञ्जपादानाद्धर्मः स्याद्बहुसाधनः ॥ ८ ॥

साधनप्रार्थनाक्लेशः परसंपत्तिदुःखदं ।

यः पुनः शिवधर्मस्तु न साधनमुपेक्षते ॥ ९ ॥

संचितं जन्मसाहस्रैः पापं भेरूपमं यदि ।

फरोति भस्मसोच्छक्तिः शंभोरमिततेजसः ॥ १० ॥

कुर्वन्नपि सदा पापं सक्रदेवाचंसेच्छिवम् ।

न्निष्यते न स पापेन याति माहेश्वरं पदम् ॥ ११ ॥

ये स्मरन्ति महादेवं यदि पापरता अपि ।

ते विज्ञेया महात्मान इति सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ १२ ॥

१ ( क. ख. ग. ) 'शयनो मयवे' । २ ( ह. ) 'देव म' । ३ ( क. ख. ग. ) 'शान्त' । ४ ( क. ख. ग. ) 'तमसः' । ५ ( घ. ) 'सा निर्वाण पदमा' । ६ ( क. ख. ग. ) 'धर्मो तदुर्ध्वं वेद' । ७ ( घ. ह. ख. ज. ) 'न बहुमा' । ८ ( घ. ) 'देवमप' । ९ ( क. ख. ग. ) 'माह्वयः' । १० ( घ. ख. ) 'शंभोर' ।

नामानि च महेशस्य गृणन्त्यज्ञानतोऽपि वा ।  
 तेषामपि शिवो मुक्तिं ददाति किमतः परम् ॥ १३ ॥  
 अत्राहं संभवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशनीम् ।  
 पापकल्पसमुद्रूतां ब्रह्मणा ससुदीरिताम् ॥ १४ ॥  
 श्रद्धया परया राजञ्जृणु त्वं गदतो मम ।  
 वक्ष्येऽहं ते प्रणम्यादावीशं भुवननायकम् ॥ १५ ॥  
 आसीदाद्ये क्रतुयुगे सप्तद्वीपैकराह्वली ।  
 इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो राजा परमधार्मिकः ॥ १६ ॥  
 तस्य पुत्रो महाभागः सुद्युम्न इति विश्रुतः ।  
 ऐश्वर्यैरखिलैर्भाति यथा दिवि शचीपतिः ॥ १७ ॥  
 प्रतिष्ठानपुरे रम्ये गङ्गातीरे मनोरमे ।  
 तत्र स्थित्वाऽखिलां पृथ्वीं तस्मिन् राजनि शासति ॥ १८ ॥  
 कदाचित्तत्र भगवांस्तृणविन्दुर्महामुनिः ।  
 आजगाम स ते द्रष्टुं सुद्युम्नं प्रियदर्शनम् ॥ १९ ॥  
 तमायान्तं मुनिं दृष्ट्वा राजा रुद्राचने रतः ।  
 उद्भास्यार्चा महाबाहुरुत्थाय च क्रताञ्जलिः ॥ २० ॥  
 यथावदभिकचाथ ददावासनमुत्तमम् ।  
 यथावन्मधुपर्कादि तस्मै सर्वं न्यवेदयत् ॥ २१ ॥  
 अथ धन्यः क्रतार्थोऽस्मि सफलं जीवितं मम ।  
 भगवानागतो यस्मान्मां द्रष्टुं मुनिसत्तम ॥ २२ ॥  
 किमर्थमागतो ब्रह्मन्कृतकृत्योऽस्मि सुव्रत ।  
 विशेषाच्छंकरे भक्तो न दुर्लभमिहास्ति ते ॥ २३ ॥  
**भानुरुवाच-**सुद्युम्नस्य वचः श्रुत्वा मुनिराह महामनाः ।  
 शिवभक्त्यपमृतास्वादपरानन्दैकनिर्भरः ॥ २४ ॥  
**तृणविन्दुरुवाच-**राजन्पदुक्तं भवता तत्तथैव न सशयः ।  
 तथाऽपि चरितं श्रुत्वा तवाहं विस्मयान्वितः ॥ २५ ॥  
 प्रेष्टुं समागतो राजञ्जन्मनस्तव गौरवम् ।  
 कथयस्व महाबाहो श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ २६ ॥

१ ( क. ल. ग. ) \*पि ये । ते । २ ( क. ल. ग. ) \*स्वयम् । इ । ३ ( क. ल. ग. ड. )  
 \*भाग सु । ४ ( क. ल. ग. ) \*स्मिन्शासति राजनि ॥ १८ ॥ ५ ( क. ल. ड. ) त मधु । ६ ( ड. )  
 \*त्तमः ॥ २२ ॥ ७ ( क. ल. ) \*गतः । १३ । ८ ( क. ल. ) \*प्रतिष्ठानपुरः । १० - - -  
 \*निवत् ॥ २५ ॥ १० ( प. ) द्रु ।

मुद्युम्न उवाच—जन्मन्यहमतीतेऽस्मिन्व्याधोऽहं गोमतीतटे ।

देवतानामहं द्वेष्य सर्वेषां प्राणिनामपि ॥ २७ ॥

सृव्यादिरिति नामाहं रूपातोऽहं व्याधराद्मुने ।

न कश्चिद्धर्मलेशोऽस्ति पापकर्मस्वहं रतः ॥ २८ ॥

मया ये निहता मार्गे तेषां संख्या न विद्यते ।

परस्वं यदपहृतं तत्पापं पर्वतोपमम् ॥ २९ ॥

एवं बहुतिथे काले गतेऽहं पञ्चतां गतः ।

धर्मराजस्य पुरतो नीतोऽहं यमकिंकरैः ॥ ३० ॥

मां दृष्ट्वाऽथाग्रवीद्धर्मश्चित्रगुप्तं विचारकम् ।

किमनेन क्रतो धर्मलेशोऽस्ति वद सुव्रत ॥ ३१ ॥

चित्रगुप्त उवाच—अनेन यत्कृतं पुण्यं मया बलुं न शक्यते ।

जानाति भगवानेकी विश्वव्यापी महेश्वरः ॥ ३२ ॥

इदं पुण्यमिति ज्ञात्वा क्रतु नानेन यद्यपि ।

आहर प्रहरेत्यादि नामसंकीर्तनं च यत् ॥ ३३ ॥

करोति तेन पुण्येन दुष्कृतं भस्मसात्कृतम् ।

यापलेशोऽपि नास्यास्ति इति मे निश्चिता मतिः ॥ ३४ ॥

मुद्युम्न उवाच—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा चित्रगुप्तस्य धीमतः ।

सुव्याधिं पूजयामास यथावद्विधिपूर्वकम् ॥ ३५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानं सार्वकामिकम् ।

सूर्याण्युत्तमतीकाशं दिव्यस्त्रीभिर्विराजितम् ॥ ३६ ॥

देवदत्तैः समानीतमारुह्य मुनिपुङ्गव ।

धर्मराजमनुज्ञाप्य गतोऽहममरावतीम् ॥ ३७ ॥

तत्र भुक्त्वा महाभोगान्पुगानामपुत ततः ।

गतोऽस्मि ब्रह्मसदनं ब्रह्मणाऽहं प्रपूजितः ॥ ३८ ॥

तत्राहं कल्पपर्यन्तं भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् ।

ततस्तु कर्मणः शेषं भोक्तुमत्र मदीतले ॥ ३९ ॥

इन्द्रद्युम्नस्य राजर्षेः कुले जातोऽस्मि सुव्रत ।

स्मरामि पूर्वाकां जातिं प्रसादाच्छृन्निनो मुने ॥ ४० ॥

१ ( क ख घ छ ) "द गौतमतः" २ ( क ख ग ) "मन्वदा" ३ ( क ख ग घ ङ, च ) गतोऽहं पञ्चतां गतः । ४ ( क ख ग ) "नेत्र वि" ५ ( क ख ग ) "न सदा । क" ( घ ङ ) " । परा । क" ६ ( घ ङ, च छ ) "स्तु धर्मणः शेषं" ७ ( क ख ) "दीपने ॥३९॥ ८ ( क ख ग ) "बे, दुरा जा" ९ ( क ख ) "बन" १० ( घ छ ) "वने । स्म"

ईश्वरे सहसा भक्तिर्मम त्रिदशपूजिते ।

जानाति को महेशस्य माहात्म्यं परमात्मनः ॥ ४१ ॥

यस्य नाम्नः फलमिदमज्ञानोच्चारणादपि ।

ज्ञात्वा यः कीर्तयेच्छंभोर्नान्यमिततेजसः ॥ ४२ ॥

मुक्तिः करतले तस्य स्थितेति मुनयो जगुः ।

**भानुरूवाच**-इति सर्वमशेषेण चरितं तस्य धीमतः ।

सुद्युम्नस्य मुनिः श्रुत्वा विस्मितोऽभृत्पुनः पुनः ॥ ४३ ॥

समालिङ्ग्य महात्मानं सुद्युम्नं राजपुङ्गवम् ।

राजन्स्वमाश्रमपदं यामीत्युक्त्वा जगाम सः ॥ ४४ ॥

एतत्ते चरितं राजन्सुद्युम्नस्य महात्मनः ।

कथितं यः पठेद्भक्त्या ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ ४५ ॥ १५१ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरै भानुमनुसंवादे सुद्युम्नाख्यानं

नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

**मनुरूवाच**-राज्ञः सकाशात्स मुनिर्गत्वा किं ऊतवान्पुनः ।

तस्याऽऽश्रमस्य किं नाम भगवन्बृहि मे प्रभो ॥ १ ॥

**भानुरूवाच**-रेवातीरे महत्पुण्यं जालेश्वरमिति स्मृतम् ।

आश्रमं तृणविन्दोस्तु मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥ २ ॥

गत्वा तत्र मुनिश्रेष्ठो भवभावसमन्वितः ।

शिवलिङ्गं मतिष्ठाप्य तीर्थयात्रां चकार सः ॥ ३ ॥

**मनुरूवाच**-कानि तीर्थानि गुह्यानि येषु संनिहितः शिवः ।

बृहि मे तानि भगवन्नन्यान्पि च तत्त्वतः ॥ ४ ॥

**भानुरूवाच**-तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम् ।

वाराणसीतिनगरी प्रिया देवस्य शूलिनः ॥ ५ ॥

यत्र विश्वेश्वरो देवः सर्वेषामिह देहिनाम् ।

ददाति तारकं ज्ञानं संसारान्मोचकं परम् ॥ ६ ॥

गङ्गा ब्रह्ममयी यत्र मूर्तिश्चोत्तरवाहिनी ।

संहर्त्री सर्वपापानां दृष्टा स्पृष्टा नमस्कृता ॥ ७ ॥

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं वाराणस्यां विशेषतः ।

तत्रापि मणिकर्णारूपं तीर्थं विश्वेश्वरप्रियम् ॥ ८ ॥

तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पातकी वाऽप्यपातकी ।  
 दृष्ट्वा विश्वेश्वरं देवं मुक्तिभाग्जायते नरः ॥ ९ ॥  
 विश्वेश्वरस्य माहात्म्यं यदुक्तं ब्रह्मसूनुना ।  
 वदहं संप्रवक्ष्यामि व्याप्तायामित्ततेजसे ॥ १० ॥  
 घोरं कलिपुगं प्राप्य कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।  
 किञ्चिच्छ्रेयस्करमिति हृदि कृत्वा जगाम सः ॥ ११ ॥  
 नन्दीश्वरस्य यः शिष्यो योगिनामग्रणीः स्वयम् ।  
 सनत्कुमारो भगवान्पत्राऽऽस्ते हिमवद्विरौ ॥ १२ ॥  
 नानादेवगणाकीर्णे यत्नगन्धर्वसेविते ।

- सिद्धचारणकूष्माण्डैरप्सरैर्भिक्ष संकुले ॥ १३ ॥  
 गङ्गा मन्दाकिनी यत्र राजते दुःखहारिणी ।  
 शोभिता हेमकमलैः पुष्पैरन्यैर्मनोहरैः ॥ १४ ॥  
 तस्याऽऽश्रममनुप्राप्य पाराशर्यो महामुनिः ।  
 अभिवाच यथान्यायं तस्याग्रं लपविश्य च ॥ १५ ॥  
 क्रताञ्जलिपुटो भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १६ ॥

व्यास उवाच—प्राप्तं कलिपुगं घोरं, पुण्यमार्गवहिष्कृतम् ।

पास्रण्हाचारनिरतं म्लेच्छान्धजनसंकुलम् ॥ १७ ॥  
 अधार्मिकाः क्रूरैस्त्वा ह्यनाचोराल्पमेधसः ।  
 तस्मिन्पुमे भविष्यन्ति ब्राह्मणाः शूद्रयाजकाः ॥ १८ ॥  
 स्नानं देवार्चनं दानं होमं च पितृतर्पणम् ।  
 स्वाध्यायं न करिष्यन्ति ब्राह्मणा हि कलौ युगे ॥ १९ ॥  
 \* न पठन्ति तथा वेदाञ्श्रेयसे ब्राह्मणाधमाः ।  
 प्रतिग्रहार्थं वेदांश्च पठिष्यन्ति कलौ युगे ॥ २० ॥  
 पुरुषोत्तममाश्रित्य शिवनिन्दार्ता द्विजाः ।  
 कलौ युगे भविष्यन्ति तेषां ज्ञाता न माधवः ॥ २१ ॥

\* घसिद्धनपुस्तकेऽय भोको न विद्यते ।

१ ( ल. ख. ग. ) यस्मिं । २ ( च. ) \*रोगणसं । ३ ( घ. ) \*मंहोरगैः ॥ १४ ॥ ४ ( क. ख. ग. प. ) पायण्डा । ५ ( घ. ) \*रमता छ । ( क. ख. ) \*रसहा छ । ६ ( ङ. ) \*चारैकतत्पर्याः । ७ ( ङ. ) \*याचकाः । ११ ॥ १८ ( क. ख. ग. घ. च. छ. ) \*म् । परार्थे वै क । ९ ( इ. च. छ. ) \*न्ति यथा । १० ( घ. ) \*दार्थवेदाध सप्रामे तु क ।

स्वां स्वां वृत्तिं परित्यज्य परवृत्त्युपजीवकाः ।  
 ब्राह्मणाद्या भविष्यन्ति संप्राप्ते तु कलौ युगे ॥ २२ ॥  
 एतान्पापरतान्दृष्ट्वा राजानश्चाविचारकाः ।  
 भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते वृथा आत्यभिमानिनः ॥ २३ ॥  
 उच्चासन्नगताः शूद्रा दृष्ट्वा च ब्राह्मणांस्तदा ।  
 न चलन्त्यल्पमतयः संप्राप्ते तु कलौ युगे ॥ २४ ॥  
 कापाधिणश्च निर्ग्रन्था नग्नाः कापालिकास्तथा ।  
 बौद्धा वैशेषिका जैना भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ २५ ॥  
 तपोयज्ञफलानां तु विक्रेतारो द्विजाधमाः ।  
 पतयश्च भविष्यन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २६ ॥  
 विनिन्दन्ति महादेवं संसोरान्मोचकं परम् ।  
 तद्गर्काश्च महात्मानो ब्राह्मणांश्च कलौ युगे ॥ २७ ॥  
 \*ताडयन्ति दुरात्मानो ब्राह्मणान् राजसेवकाः ।  
 न निवारयते राजा तान्दृष्ट्वाऽपि कलौ युगे ॥ २८ ॥  
 एवं घोरे कलियुगे किं तच्छ्रेयस्करं द्विज ।  
 ब्रूहि तद्गमवन्द्यं संसोरान्मोचकं परम् ॥ २९ ॥ १८० ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे भानुमनुसंवादे वाराणसी-  
 महिमकलियुगवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥  
**सनत्कुमार उवाच**—गच्छ वाराणसीं व्यास यत्र विश्वेश्वरः शिवः ।  
 न तत्र युगधर्मोऽस्ति नैव लग्ना वसुंधरा ॥ १ ॥  
 विश्वेश्वरस्य याल्लिङ्गं ज्योतिर्लिङ्गं तदुच्यते ।  
 यस्मिन्नदृष्टे क्षणाज्जन्तुः संसारं न पुनर्विशेत् ॥ २ ॥  
 गत्वा पश्य परं लिङ्गं तत्र सत्यवतीसुत ।  
 प्राप्स्यसे परमां मुक्तिं देवैरपि सुदुर्लभाम् ॥ ३ ॥  
 स्नात्वा गङ्गाजले पुण्ये पश्य विश्वेश्वरं परम् ।  
 स दास्यति परं ज्ञानं येन मुक्तो भविष्यति ॥ ४ ॥  
 दृष्ट्वा विश्वेश्वरं देवं यावत्तिष्ठति तत्क्षणात् ।  
 आगमिष्यन्ति मुनयस्त्वां द्रष्टुं सर्व एव ते ॥ ५ ॥

\* सप्तसितपुस्तकेऽयं श्लोको न विद्यते ।



विश्वेश्वरस्य माहात्म्यं प्रक्षयन्ति त्वां महामुने ।

ब्रूहिमद्वचनात्तेषां ज्ञानं माहेश्वरं परम् ॥ ६ ॥

एवं सत्यवतीस्रनुस्तन्माहात्म्यमज्ञेपतः ।

सनत्कुमारात्स्वगुरोः श्रुत्वा माहेश्वराग्रणीः ॥ ७ ॥

प्रणिपत्य गुरुं भक्त्या रुद्रं ब्रह्मादिसेवितम् ।

स गिण्यः प्रययौ शीघ्रं व्यासो वाराणसीं प्रति ॥ ८ ॥

**मनुरुवाच**—गत्वा वाराणसीं व्यासः सिद्धर्षिमुनिसेविताम् ।

अंकोरौत्किं तदाचक्ष्व भगवन्विश्वपूजित ॥ ९ ॥

**भानुरुवाच**—संप्राप्य काशीं धर्मोत्तमा कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।

• स्नात्वा यथावज्जाह्वय्यां तर्पयित्वा सुरान्पितॄन् ॥ १० ॥

ययौ विश्वेश्वरं द्रष्टुं ज्योतिलिङ्गमनामयम् ।

संपूज्य सर्वभावेन दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ ११ ॥

देवस्य दक्षिणा मूर्ताद्युपविश्य महामुनिः ।

पश्यन्विश्वेश्वरं लिङ्गं जपन्चै शंकरुद्विपम् ॥ १२ ॥

क्षणाच्छिङ्गात्परं ज्योतिराविर्भूतं निरञ्जनम् ।

सूक्ष्मात्सूक्ष्मं च परमानन्दं तमसः परम् ॥ १३ ॥

आदिमध्यान्तरहितं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।

यत्तन्माहेश्वरं ज्योतिर्वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् ॥ १४ ॥

दर्शनात्तस्य च मुनेः पादाशर्यस्य धीमतः ।

दिव्यं माहेश्वरं ज्ञानमुद्धृतं केवलं शिवम् ॥ १५ ॥

मेने कृतार्थमात्मानं दुःस्वप्नपविर्वाजितम् ।

अद्वयं निर्गुणं शान्तं जीवन्मुक्तस्तदा मुनिः ॥ १६ ॥

अहो विश्वेश्वरो देवः कथं कैवो न सेव्यते ।

यस्मिन्हेष्टे क्षणाज्ज्ञानमुदितं मम निर्मलम् ॥ १७ ॥

नमो भगवते तुभ्यं विश्वनाथाय शूलिने ।

पिनाकिने जगत्कर्त्रे विश्वमापाप्रवर्तिने ॥ १८ ॥

दुर्विज्ञेयाप्रमेयाय परमानन्दरूपिणे ।

भक्तिप्रियाय सूक्ष्माय पार्वतीशाय ते नमः ॥ १९ ॥

१ ( द. च. छ. ) \*रमुने ॥ ६ ॥ २ ( क. ल. ग. ) \*दिदेश्च ॥ ३ ( प. द. च. छ. )

\*मो पुरोश्च ॥ ८ ॥ ४ ( द. ) \*या त ए ॥ ५ ( प. द. च. छ. ) अविनाशो ६ ( क. ल. ग. )

स्वां स्वां वृत्तिं परित्यज्य परवृत्त्युपजीवकाः ।  
 ब्राह्मणाद्या भविष्यन्ति संप्राप्ते तु कलौ युगे ॥ २२ ॥  
 एतान्पापरतान्दृष्ट्वा राजानश्चाविचारकाः ।  
 भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते वृथा आत्यभिमानिनः ॥ २३ ॥  
 उच्चासनगताः शूद्रा दृष्ट्वा च ब्राह्मणांस्तदा ।  
 न चलन्त्यल्पमतयः संप्राप्ते तु कलौ युगे ॥ २४ ॥  
 कापायिणश्च निर्ग्रन्था नग्नाः कापालिकास्तथा ।  
 बौद्धा वैशेषिका जैना भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ २५ ॥  
 तपोयज्ञफलानां तु विक्रेतारो द्विजाधमाः ।  
 यतयश्च भविष्यन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २६ ॥ .  
 विनिन्दन्ति महादेवं संसारांन्मोचकं परम् ।  
 तद्गतांश्च महात्मानो ब्राह्मणांश्च कलौ युगे ॥ २७ ॥  
 \*ताडयन्ति दुरात्मानो ब्राह्मणान् राजसेवकाः ।  
 न निवारयते राजा तान्दृष्ट्वाऽपि कलौ युगे ॥ २८ ॥  
 एवं घोरं कलियुगे किं तच्छ्रेयस्करं द्विज ।  
 ब्रूहि तद्गवन्मन्धं संसारांन्मोचकं परम् ॥ २९ ॥ १८० ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे भानुमनुसंवादे वाराणसी-  
 महिमकलियुगवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥  
**सनत्कुमार उवाच**—गच्छ वाराणसीं व्यास यत्र विश्वेश्वरः शिवः ।  
 न तत्र युगधर्मोऽस्ति नैव लग्ना वसुंधरा ॥ १ ॥  
 विश्वेश्वरस्य यच्छिङ्गं ज्योतिर्लिङ्गं तदुच्यते ।  
 यस्मिन्दृष्टे क्षणाज्जन्तुः संसारं न पुनर्विशेत् ॥ २ ॥  
 गत्वा पश्य परं लिङ्गं तत्र सत्यवतीसुत ।  
 प्राप्स्यसे परमां मुक्तिं देवैरपि सुदुर्लभाम् ॥ ३ ॥  
 म्नात्वा गङ्गाजले पुण्ये पश्य विश्वेश्वरं परम् ।  
 स दास्यति परं ज्ञानं येन मुक्तो भविष्यति ॥ ४ ॥  
 दृष्ट्वा विश्वेश्वरं देवं यावत्तिष्ठति तत्क्षणात् ।  
 आगमिष्यन्ति मुनयस्त्वां द्रष्टुं सर्व एव ते ॥ ५ ॥

\* सप्तशतपुराणकेऽयं धोक्तो न विद्यते ।

तेषां लिङ्गानि जायन्ते हृदये त्रीणि सुव्रताः ।  
 दुर्लभं तज्जलं तस्मात्तिष्ठत्येव हि मुद्रितम् ॥ ५ ॥  
 तत्र सत्यवती स्रुतः स्नात्वा चैव यथाविधि ।  
 अविमुक्तेश्वरं दृष्ट्वा लाङ्गलीशं ततो ययौ ॥ ६ ॥  
 तत्र ब्रह्मादयो देवाः सेवन्ते शूलपाणिनम् ।  
 तस्य दर्शनमात्रेण ज्ञानं पाशुपतं भवेत् ॥ ७ ॥  
 जगाम स मुनिः पश्चाद्द्रष्टुं वै तारकेश्वरम् ।  
 यत्रान्तकाले भगवान्ज्ञानं तत्संप्रयच्छति ॥ ८ ॥  
 यत्रैवानेन देवस्य स्थापितं लिङ्गमुत्तमम् ।  
 यस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ९ ॥  
 तेदृष्ट्वा परमं लिङ्गं व्यासः सत्यवतीसुतः ।  
 ययौ शुकेश्वरं<sup>१</sup> द्रष्टुं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १० ॥  
 \* आराध्य मुनिना यत्र शुक्रेणामिततेजसा ।  
 प्राप्ता संजीविनी विद्या सुराणामपि दुर्लभा ॥ ११ ॥  
 देवस्य वह्निदिग्भागे कूपस्तिष्ठति शोभनः ।  
 स्नानं तत्राश्वमेधस्य फलं यच्छति शोभनम् ॥ १२ ॥  
 तस्मिन्कूपे मुनिः स्नात्वा दृष्ट्वा शुक्रेश्वरं शिवम् ।  
 ब्रह्मेश्वरं ययौ द्रष्टुं तत्र ब्रह्मा विराट् स्वयम् ॥ १३ ॥  
 तपस्तप्त्वा महाघोरं प्रीतये पार्वतीपतेः ।  
 ब्रह्मत्वं प्राप्तवान्ब्रह्मा योगं चान्ये महर्षयः ॥ १४ ॥  
 दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य सर्वयज्ञफलं लभेत् ।  
 पुनर्जगाम भगवान्कोकारेश्वरमव्ययम् ॥ १५ ॥  
 स्मरणोद्यस्य लिङ्गस्य मुच्यते सर्वपातकैः ।  
 यत्र साक्षाच्छिवः स्रुक्ष्मो नित्यं तिष्ठति वै द्विजाः ॥ १६ ॥  
 अनुग्रहाप लोकानां पशुपाशविमोचकः ।  
 यत्र पाशुपताः सिद्धा ओंकारेश्वरमीश्वरम् ॥ १७ ॥  
 संपूज्य परमां सिद्धिं प्राप्तवन्तो द्विजोत्तमाः ।  
 ऋणपक्षे चतुर्दशपां तस्मिँल्लिङ्गं उपोषितः ॥ १८ ॥

\* अथ शोको घटवत्प्रतिपत्तुः कथं नरित ।

नमो जगत्प्रतिष्ठाय जगज्जननहेतवे ।

संहर्त्रे ऋग्यजुःसाममूर्तये तत्प्रवर्तिने ॥ २० ॥

जानाति कस्त्वां विश्वेश तत्त्वतो माहशो जनः ।

वेदा अपि न जानन्ति साङ्गोपिनिपदक्रमाः ॥ २१ ॥

**भानुरुवाच**—अथ तस्मिन्महादेवे परंज्योतिषि विश्वभुक् ।

शूलपाणिरमेयात्मा प्रादुरासीद्दृषध्वजः ॥ २२ ॥

ततस्तमव्रवीद्वाक्यं कारुण्याच्छ्रुभया गिरा ।

वरं वरय दास्यामि यैत्ते मनसि रोचते ॥ २३ ॥

**व्यास उवाच**—भगवन्कृतकृत्योऽस्मि दर्शनात्तव शंकर ।

जातं त्वद्विषयं ज्ञानं देवानामपि दुर्लभम् ॥ २४ ॥

भक्तिं परे भगवति त्वय्येवाव्यभिचारिणीम् ।

देहि मे देवदेवेश नान्यदिष्टं वरं मम ॥ २५ ॥

**भानुरुवाच**—एवमस्त्विति देवेशो व्यासायामिततेजसे ।

वरं दत्त्वा मुनीन्द्राय क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥ २६ ॥

तस्माद्वासात्परो नान्यः शिवभक्तो जगन्नये ।

कृष्णो वा देवकीसूनुरर्जुनो वा महामतिः ॥ २७ ॥

एवं हराल्लुब्धवरः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।

तत्र यानि च लिङ्गानि तानि द्रष्टुं ययौ मुनिः ॥ २८ ॥ २०८ ।

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे भानुमनुसंवादे महादेव-

वरप्रदानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

**ऋषय ऊचुः**—कानि दिव्यानि लिङ्गानि यानि द्रष्टुं ययौ मुनिः ।

आचक्ष्व तानि नः सूत माहात्म्यं चापि कृतस्त्रशः ॥ १ ॥

**भूत उवाच**—पदुक्तं भानुना पूर्वं मनवे मुनिसत्तमाः ।

तदेव कथयिष्यामि शृणुध्वं गदतो मम ॥ २ ॥

आग्नेय्यामविमुक्तस्य वापी त्रैलोक्यविश्रुता ।

यत्र सन्निहितौ देवो नित्यं विश्वेश्वरः शिवः ॥ ३ ॥

यत्र स्नानं द्विजश्रेष्ठा देवानामपि दुर्लभम् ।

भक्त्या यैस्तज्जलं पीतं ते रुद्रा एव भूतले ॥ ४ ॥

१ ( घ. ड. च. छ. ) तन्प्रवर् । २ ( क. ) \*स्त्वा देवेश त\* । ( ख. ग. ) \*स्त्वा देवेश । ३ ( च. ) \*शेश त\* । ४ ( क. छ. ) \*वीद्यास का\* । ( ग. ) \*वीद्यास का\* । ५ ( क. ख. ग. ) \*यन्ने म\* । ६ ( क. छ. ग. ) \*ति विश्वेशो । ७ ( क. ख. ग. ) \*तो नित्य देवो वि\* । ८ ( क. \*ख. ग. ) तय ।

तेषां लिङ्गानि जायन्ते हृदये त्रीणि सुव्रताः ।  
 दुर्लभं तज्जलं तस्मात्तिष्ठत्येव हि मुद्रितम् ॥ ५ ॥  
 तत्र सत्पवती स्रुतुः स्नात्वा चैव यथाविधि ।  
 भविमुक्तेश्वरं दृष्ट्वा लङ्गुलीशं ततो ययौ ॥ ६ ॥  
 तत्र ब्रह्मादयो देवाः सेवन्ते शूलपाणिनम् ।  
 तस्य दर्शनमात्रेण ज्ञानं पाशुपतं भवेत् ॥ ७ ॥  
 जगाम स मुनिः पश्चाद्द्रष्टुं वै तारकेश्वरम् ।  
 घम्रान्तकाले भगवाञ्ज्ञानं तत्संप्रयच्छति ॥ ८ ॥  
 यत्रैवानेन देवस्य स्थापितं लिङ्गमुत्तमम् ।  
 यस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ९ ॥  
 तद्दृष्ट्वा परमं लिङ्गं व्यासः सत्पवतीश्वरः ।  
 ययौ शुकेश्वरं द्रष्टुं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १० ॥  
 आराध्य मुनिना यत्र शुक्रेणामिततेजसा ।  
 प्राप्ता संजीविनी विद्या सुराणामपि दुर्लभा ॥ ११ ॥  
 देवस्य वह्निदिग्भागे कूपस्तिष्ठति शोभनः ।  
 रनानं तत्राश्वमेधस्य फलं यच्छति शोभनम् ॥ १२ ॥  
 तस्मिन्कूपे मुनिः स्नात्वा दृष्ट्वा शुकेश्वरं शिवम् ।  
 ब्रह्मेश्वरं ययौ द्रष्टुं तत्र ब्रह्मा विराट् स्वपम् ॥ १३ ॥  
 तपस्तप्त्वा महावीरं प्रीतये पार्वतीपतेः ।  
 ब्रह्मत्वं प्राप्तवान्ब्रह्मा योगं चान्ये महर्षयः ॥ १४ ॥  
 दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य सर्वयज्ञफलं लभेत् ।  
 पुनर्जगाम भगवानोकारेश्वरमव्ययम् ॥ १५ ॥  
 स्मरणोद्यस्य लिङ्गस्य मुच्यते सर्वपातकैः ।  
 यत्र साक्षाच्छिवः स्रुक्ष्मो निरयं तिष्ठति वै द्विजाः ॥ १६ ॥  
 अनुग्रहाय लोकानां पशुपाशविमोचकः ।  
 यत्र पाशुपताः सिद्धा ओकारेश्वरमीश्वरम् ॥ १७ ॥  
 संपूज्य परमां सिद्धिं प्राप्तवन्तो द्विजोत्तमाः ।  
 ऋष्यपक्षे चतुर्दश्यां तस्मिन्लिङ्गे उपोषितः ॥ १८ ॥

\* अथ शरो घटवत्प्रतिपुत्रकेषु नागि ।

\* ( प. म. म. ) न दृष्टा । २ ( प. म. म. ) ०१ ( म. म. म. ) ३ ( म. म. म. ) ४ ( म. म. म. ) ५ ( म. म. म. ) ६ ( म. म. म. ) ७ ( म. म. म. ) ८ ( म. म. म. ) ९ ( म. म. म. ) १० ( म. म. म. ) ११ ( म. म. म. ) १२ ( म. म. म. ) १३ ( म. म. म. ) १४ ( म. म. म. ) १५ ( म. म. म. ) १६ ( म. म. म. ) १७ ( म. म. म. ) १८ ( म. म. म. )

यदि जागरणं कुर्यात्परां सिद्धिमवाप्नुयात् ।  
 ततः सत्यवतीसूनुः कृत्तिवासेश्वरं ययौ ॥ १९ ॥  
 उपासते महादेवं यत्र ब्रह्मादयः सुराः ।  
 मुनयः शंसितात्मानो रुद्रज्ञाप्यपरायणाः ॥ २० ॥  
 कृत्तिवासेश्वरे लिङ्गे लीलाश्च बहवो द्विजाः ।  
 देवस्य पूर्वदिग्भागे हंसतीर्थं महत्सरः ॥ २१ ॥  
 स्नात्वा तत्र महादेवं कृत्तिवासेश्वरं शिवम् ।  
 \*ये द्रक्ष्यन्ति महात्मानस्ते वै ब्रह्मादिवन्दिताः ॥ २२ ॥  
 सकृत्पश्यति यो भक्त्या कृत्तिवासेश्वरं विभुम् ।  
 न पतत्येव संसारे रुद्र एव न संशयः ॥ २३ ॥  
 हंसतीर्थे नरः स्नात्वा कृत्तिवासेश्वरं विभुम् ।  
 संपूज्य परया भक्त्या कृत्तिवासेश्वरं शिवम् ॥ २४ ॥  
 न पतत्येव संसारे नात्रकार्या विचारणा ।  
 ययौ रत्नेश्वरं द्रष्टुं मोक्षो यत्र प्रतिष्ठितः ॥ २५ ॥  
 दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य फलं वक्तुं न शक्यते ।  
 सर्वस्मादधिको ज्योतिर्दृष्टिर्निपेक्ष्यते ॥ २६ ॥  
 योऽयं पाशुपतो योगः पशुपाशविमोचकः ।  
 वर्षैर्द्वादशभिः सम्यकृते पाशुपते द्विजाः ॥ २७ ॥  
 रत्नेश्वरे तदा ज्योतिर्दर्शान्मनुजोत्तमः ।  
 रत्नेश्वरं तु संपूज्य पाराशर्यो महामुनिः ॥ २८ ॥  
 द्रष्टुं देवाधिदेवेशं वृद्धकालेश्वरं ययौ ।  
 तस्मिन्लिङ्गे महादेवः सदा तिष्ठति लीलया ॥ २९ ॥  
 अनुग्रहाय लोकानामुमया सह विश्वभुक् ।  
 पृथिव्यां यानि लिङ्गानि सन्ति दिव्यानि वै द्विजाः ॥ ३० ॥  
 वृद्धकालेश्वरे दृष्टे दृष्टान्पेव न संशयः ।  
 देवस्य पूर्वदिग्भागे कूपो मुनिनिपेक्षितः ॥ ३१ ॥  
 पूरितः पुण्यसलिलैर्देवदेवेन शंभुना ।  
 यैः पीतं तस्य सलिलं प्राकृतेश्चलुकत्रयम् ॥ ३२ ॥

\* घडचछसहितपुस्तकेष्वयं श्लोको नास्ति ।

प्रकृतिमुच्यते तेभ्यो मुक्तात्मानो भवन्ति ते ।  
 तत्र द्वैपायनो विंशः स्नानं कृत्वा समाहितः ॥ ३३ ॥  
 वृद्धकालेश्वरं लिङ्गं संपूज्य च ततो पयौ ।  
 मन्दाकिनीतटे रम्ये मुनिसिद्धनिपेविते ॥ ३४ ॥  
 मध्यमेश्वरनामानं मोक्षलिङ्गमनुत्तमम् ।  
 यत्र ब्रह्मादयो देवा मुनयः सनकादयः ॥ ३५ ॥  
 उपासते परं लिङ्गं शिवदर्शनकाङ्क्षिणः ।  
 मन्दाकिन्यां मुनिः स्नात्वा दृष्ट्वा च मध्यमेश्वरम् ॥ ३६ ॥  
 घण्टाकर्णहृदे स्नात्वा लिङ्गं तद्विमलं शिवम् ।  
 प्रतिष्ठाप्य मुनिश्रेष्ठो लब्धवाञ्छानमुत्तमम् ॥ ३७ ॥  
 घण्टाकर्णहृदे तत्र दृष्ट्वा व्यासेश्वरं शिवम् ।  
 यत्र यत्र मृतो वाऽपि वाराणस्यां मृतो भवेत् ॥ ३८ ॥  
 ततः सत्पवतीस्रजुः कपर्दीश्वरमीश्वरम् ।  
 द्रष्टुं जगाम विमन्द्रा लिङ्गं तत्पारमेश्वरम् ॥ ३९ ॥  
 पिशाचमोचनं नाम तत्र तीर्थमनुत्तमम् ।  
 रुद्रलोकस्य सोपानमिति प्राह महामुनिः ॥ ४० ॥  
 ये द्रक्ष्यन्ति कपर्दीशं कृतार्थास्ते न संशयः ।  
 मानुषीं तनुमाश्रित्य रुद्रा एव न संशयः ॥ ४१ ॥  
 तस्मिंस्तीर्थे मुनिः स्नात्वा संतर्प्य च सुरान्पितॄन् ।  
 कपर्दीश्वरमीशानं संपूज्य प्रययौ मुनिः ॥ ४२ ॥ २५० ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरै सूतशौनकसंवादे वाराणसी-  
 लिङ्गमहिमवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सूत उवाच—पुनर्जगाम भगवान्कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।  
 द्रष्टुं दंक्षेश्वरं देवं भक्तानां सिद्धिदायकम् ॥ १ ॥  
 यच्छिवावज्ञया पापं जातं दक्षप्रजापतेः ।  
 तस्य पापस्य मोक्षाय तस्मिच्छिङ्गे द्विजोत्तमाः ॥ २ ॥  
 आराध्य देवदेवेशं बहून्यब्दशतानि वै ।  
 तस्य प्रसन्नो भगवान्देवदेवः सहोमया ॥ ३ ॥

यदि जागरणं कुर्यात्परां सिद्धिमवाप्नुयात् ।  
 ततः सत्यवतीसूनुः कृत्तिवासेश्वरं ययौ ॥ १९ ॥  
 उपासते महादेवं यत्र ब्रह्मादयः सुराः ।  
 मुनयः शंसितात्मानो रुद्रजाप्यपरायणाः ॥ २० ॥  
 कृत्तिवासेश्वरे लिङ्गे लीलाश्च बहवो द्विजाः ।  
 देवस्य पूर्वदिग्भागे हंसतीर्थं महत्सरः ॥ २१ ॥  
 स्नात्वा तत्र महादेवं कृत्तिवासेश्वरं शिवम् ।  
 \*ये द्रक्ष्यन्ति महात्मानस्ते वै ब्रह्मादिवन्दिताः ॥ २२ ॥  
 सकृत्पश्यति यो भक्त्या कृत्तिवासेश्वरं विभुम् ।  
 न पतत्येव संसारे रुद्र एव न संशयः ॥ २३ ॥  
 हंसतीर्थे नरः स्नात्वा कृत्तिवासेश्वरं विभुम् ।  
 संपूज्य परया भक्त्या कृत्तिवासेश्वरं शिवम् ॥ २४ ॥  
 न पतत्येव संसारे नात्रकार्या विचारणा ।  
 ययौ रत्नेश्वरं द्रष्टुं मोक्षो यत्र प्रतिष्ठितः ॥ २५ ॥  
 दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य फलं वक्तुं न शक्यते ।  
 सर्वस्मादधिको योगो वेदविद्भिर्निपेव्यते ॥ २६ ॥  
 योऽयं पाशुपतो योगः पशुपाशविमोचकः ।  
 वर्षैर्द्वादशभिः सम्यकृते पाशुपते द्विजाः ॥ २७ ॥  
 रत्नेश्वरे तदा ज्योतिर्दर्शनान्मनुजोत्तमः ।  
 रत्नेश्वरं तु संपूज्य पाराशर्यो महामुनिः ॥ २८ ॥  
 द्रष्टुं देवाधिदेवेशं वृद्धकालेश्वरं ययौ ।  
 तस्मिंलिङ्गे महादेवः सदा तिष्ठति लीलया ॥ २९ ॥  
 अनुग्रहाय लोकानामुभया सह विश्वभुक् ।  
 पृथिव्यां यानि लिङ्गानि सन्ति दिव्यानि वै द्विजाः ॥ ३० ॥  
 वृद्धकालेश्वरे दृष्टे दृष्टान्येव न संशयः ।  
 देवस्य पूर्वदिग्भागे कूपो मुनिनिपेवितः ॥ ३१ ॥  
 पूरितः पुष्पसलिलैर्देवदेवेन शंभुना ।  
 यैः पीतं तस्य सलिलं प्राकृतैश्चलुकत्रयम् ॥ ३२ ॥

\* घडचछसशितपुस्तकेष्वय भोको नास्ति ।



- यस्य वामाङ्गजो विष्णुर्दक्षिणोद्गाद्गवाम्पहम् ।  
यस्याऽऽज्ञयाऽखिलं विश्वं सूर्यो भ्रमति सर्वदा ॥ १८ ॥  
चन्द्रश्च तारकाश्चैव ग्रहाश्च भुवनानि च ।  
धर्माधर्मव्यवस्था च वर्णाश्रैवाऽऽश्रमाणि च ॥ १९ ॥  
• तिष्ठन्ति शासनात्तस्य देवदेवस्य शूलिनः ।  
सा च शक्तिः परा गौरी स्वेच्छाविग्रहचारिणी ॥ २० ॥  
तव पुत्रीति दुर्बुद्धे मन्यसे तमसाऽऽवृतः ।  
कस्तां जानाति विश्वेशीमीश्वरार्धशरीरिणीम् ॥ २१ ॥  
अहं नाद्यापि जानामि चक्री शक्रस्य का कथा ।  
• स्वेच्छाविग्रहरूपिण्या गौर्या सह पिनाकधृक् ॥ २२ ॥  
ज्ञामपत्पखिलं विश्वमिति सत्यं न संशयः ।  
स एव बभ्राति पञ्चस्मदादीन्महेश्वरः ॥ २३ ॥  
स एव मोचको देवः पञ्चानां न इति श्रुतिः ।  
नामसंकीर्तनाच्चस्य भिद्यते पापपञ्जरम् ॥ २४ ॥  
कथं न पूज्यते देवस्त्वया दक्ष मुदुर्मते ।  
शंभोरवज्ञा यत्राऽऽस्ते स्थातव्यं नैव सूरिभिः ॥ २५ ॥  
इत्युक्त्वा प्रययौ ब्रह्मा स्तूपमानो महर्षिभिः ॥ २६ ॥  
मूत उवाच—गते चतुर्मुखे देवे सर्वलोकपितामहे ।  
दधीचिरत्रवीदक्षं मुनीनामग्रणीः स्वयम् ॥ २७ ॥  
दधीचिरुवाच—कथं देवाधिदेवेशः कर्मसाक्षी सनातनः ।  
विश्वेश्वरो महादेवस्त्वया दक्ष न पूज्यते ॥ २८ ॥  
वाचकः प्रणवो यस्य ज्ञानमूर्तेरुमापतेः ।  
अनुग्रहं विना तस्य कथं जानीति शूलिनम् ॥ २९ ॥  
एक एवेति यो रुद्रः सर्ववेदेषु गीयते ।  
तस्य प्रसादलेशेन मुक्तिर्भवति किंकरी ॥ ३० ॥  
प्रसङ्गात्कौतुकाह्लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ।  
• हर इत्युच्चरन्मर्त्यैः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३१ ॥  
अहो दक्ष तवाज्ञानं तव नाशस्य कारणम् ।  
केनापि हेतुना जातमिति मे भाति निश्चितम् ॥ ३२ ॥

ददौ माहेश्वरं योगं तस्मै दक्षाय धीमते ।

लब्ध्वा तं परमं योगं तस्मिँल्लिङ्गे लयं गतः ॥ ४ ॥

ततः प्रभृति तल्लिङ्गं योगिभिः सेव्यते द्विजाः ।

योगं ददाति सर्वेषां देवो दक्षेश्वरः शिवः ॥ ५ ॥

शृङ्गायां प्रयतः स्नात्वा दृष्ट्वा दक्षेश्वरं शिवम् ।

प्राप्नोति परमं योगमिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥

स्नात्वा सत्पवतीस्रुतुर्गङ्गायां प्रयतो द्विजाः ।

दृष्ट्वा दक्षेश्वरं देवं ययौ पश्चात्रिलोचनम् ॥ ७ ॥

**ऋषय ऊचुः**—हेतुना केन दक्षस्य निन्दाऽभूच्छांकीरी पुरा ।

कारणं वद तत्सूत श्रोतुं वाञ्छा प्रवर्तते ॥ ८ ॥

**सूत उवाच**—आसीद्ब्रह्मसुतो दक्षः पुनः प्राचेतसोऽभवत् ।

शप्तो देवेन रुद्रेण क्रोधाच्छंभोरवज्ञया ॥ ९ ॥

वैरं निधाय मनसि शंभुना सह सुव्रताः ।

दक्षः प्राचेतसो यज्ञमकरोज्जाह्नवीतटे ॥ १० ॥

तस्मिन्यज्ञे समाहृता इन्द्राद्या देवतागणाः ।

ऋषयो मुनयः नसिद्धा राजानः प्रथितौजसः ॥ ११ ॥

ब्रह्मा च विष्णुना सार्थमाहूतस्तेन धीमता ।

देवान्सर्वाश्च भागार्थमाहूतान्यज्ञसंभवः ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा शिवेन रहितान्दक्षं प्रत्येवमब्रवीत् ।

**ब्रह्मोवाच**—अहो दक्ष महामूढ दुर्बुद्धे किं कृतं त्वया ।

देवाः सर्वे समाहूताः शंकरेण विना कथम् ॥ १३ ॥

अन्तर्पामी स विश्वेशः सर्वेषामेव देहिनाम् ।

भोक्ता स सर्वयज्ञानां शंकरः परमार्थतः ॥ १४ ॥

एते च मुनयः सर्वे तव साहाय्यकारिणः ।

न जानन्ति परं भावं महादेवस्य शूलिनः ॥ १५ ॥

एते च देवाः शक्राद्या आगता यज्ञभागिनः ।

तन्मायामोहिताः सर्वे न जानन्ति पिनाकिनम् ॥ १६ ॥

यस्य पादरजःस्पर्शाद्ब्रह्मत्वं प्राप्तवानहम् ।

शार्ङ्गिणाऽपि सदा मूर्धा धार्यते कः शिवात्परः ॥ १७ ॥

यस्य वामाङ्गजो विष्णुर्दक्षिणोद्गाद्गवाम्पहम् ।  
 यस्याऽऽज्ञयाऽऽखिलं विश्वं सूर्यो भ्रमति सर्वदा ॥ १८ ॥  
 चन्द्रश्च तारकाश्चैव ग्रहाश्च भुवनानि च ।  
 धर्माधर्मव्यवस्था च वर्णाश्रैवाऽऽश्रमाणि च ॥ १९ ॥  
 तिष्ठन्ति शासनात्तस्य देवदेवस्य शूलिनः ।  
 सा च शक्तिः परा गौरी स्वेच्छाविग्रहचारिणी ॥ २० ॥  
 तव पुत्रीति दुर्बुद्धे मन्यसे तमसाऽऽवृतः ।  
 कस्तां जानाति विश्वेशीमीश्वरार्धशरीरिणीम् ॥ २१ ॥  
 अहं नाद्यापि जानामि चक्री शक्रस्य का कथा ।  
 स्वेच्छाविग्रहद्विपिण्या गौर्या सह पिनाकधृक् ॥ २२ ॥  
 भ्रामयत्यखिलं विश्वमिति सत्यं न संशयः ।  
 स एव बध्नाति पशून्मदादीन्महेश्वरः ॥ २३ ॥  
 स एव मोचको देवः पशूनां नृ इतिश्रुतिः ।  
 नामसंकीर्तनाद्यस्य भिद्यते पापपञ्जरम् ॥ २४ ॥  
 कथं न पूज्यते देवस्त्वया दक्ष सुदुर्मते ।  
 शंभोरवज्ञा यत्राऽऽस्ते स्थातव्यं नैव सूरिभिः ॥ २५ ॥  
 इत्युक्त्वा प्रययौ ब्रह्मा स्तूयमानो महापिभिः ॥ २६ ॥  
**मृत उवाच**—गते चतुर्मुखे देवे सर्वलोकपितामहे ।  
 दधीचिरवरीदक्षं मुनीनामग्रणीः स्वयम् ॥ २७ ॥  
**दधीचिरुवाच**—कथं देवाधिदेवेशः कर्मसाक्षी सनातनः ।  
 विश्वेश्वरो महादेवस्त्वया दक्ष न पूज्यते ॥ २८ ॥  
 वाचकः प्रणवो यस्य ज्ञानमूर्तेरुमापतेः ।  
 अनुग्रहं विना तस्य कथं जानोति शूलिनम् ॥ २९ ॥  
 एक एवेति यो रुद्रः सर्वेदेवेषु गीयते ।  
 तस्य प्रसादलेशेन मुक्तिर्भवति किंकरी ॥ ३० ॥  
 प्रसङ्गात्कीतुकाष्टोभाद्गयादज्ञानतोऽपि वा ।  
 हर इत्युच्चरन्मर्त्यैः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३१ ॥  
 अदो दक्ष तवाज्ञानं तव नाशस्य कारणम् ।  
 केनापि हेतुना जातमिति मे भाति निश्चितम् ॥ ३२ ॥

एवं दधीचेर्वचनं श्रुत्वा दक्षो विचक्षणः ।  
 दधीचिमब्रवीद्विप्राः शक्रादीनां च संनिधौ ॥ ३३ ॥  
**दक्ष उवाच**—नाहं नारायणाद्देवात्पश्याम्यन्यं द्विजोत्तम ।  
 कारणं सर्ववस्तूनां नास्तीतिर्वै मुनिश्चितम् ॥ ३४ ॥  
**दधीचिरुवाच**—उमया सह यो देवः सोम इत्युच्यते बुधैः ।  
 स एव कारणं नान्यो विष्णोरपि<sup>१</sup> हि वै श्रुतिः ॥ ३५ ॥  
 तस्माद्यः सर्वदेवानामधिकश्चन्द्रशेखरः ।  
 इज्यते सर्वयज्ञेषु कथं दक्ष न पूज्यते ॥ ३६ ॥  
 यज्ञस्य पालको विष्णुरिति यन्निश्चितं त्वया ।  
 भविष्यत्यन्यथैवाशु पश्यतः कमलापतेः ॥ ३७ ॥  
 एते च ब्राह्मणाः सर्वे ये द्विपैन्ति महेश्वरम् ।  
 भवन्तु वेदवाह्यास्ते तमोपहतचेतसः ॥ ३८ ॥  
 पापण्डाचारनिरताः सर्वे निरयगाभिनः ।  
 कलौ युगे तु संप्राप्ते दरिद्राः शूद्रयाजकाः ॥ ३९ ॥  
 सर्वस्मादधिको रुद्रः पशुपाशविमोचकः ।  
 पराङ्मुखस्तु पुष्पाकं मा भूदिज्याकरी गतिः ॥ ४० ॥  
 इति शब्दां ययौ विप्रो दधीचिर्मुनिपुङ्गवः ।  
 स्वाश्रमं मुनिभिर्जुष्टमोकारं नर्मदातटे ॥ ४१ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे गौरी परव्योमात्मिका शिवा ।  
 दक्षपुत्रस्य वृत्तान्तं श्रुत्वा देवऋषेर्मुखात् ॥ ४२ ॥  
 प्राह विश्वाधिकं रुद्रं भैषतातिमभञ्जनम् ।  
 निरीक्ष्यमाणं देर्वशी परानन्दैकविग्रहम् ॥ ४३ ॥  
**श्रीदेव्युवाच**—योऽयं प्राचेतसो दक्षः पिता मे पूर्वजन्मनि ।  
 आवाभवज्ञाय कथं यज्ञं कर्तुं प्रचक्रमे ४४ ॥  
 देवाः सर्वे समाहृता विष्णुना सह शंकर ।  
 आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्चैव मरुद्गणाः ॥ ४५ ॥  
 ऋषयो मुनयः सिद्धा दैतेया दानवाश्च ये ।  
 राजानश्च महाभागा गन्धर्वाः किन्नरास्तथा ॥ ४६ ॥

१ ( प. द. ) ०त्वेव मु० २ ( व. ग. म. ) सदितो दे० ३ ( ड. छ. ) ०प द वै । ४ ( व. द. ) ०शमास म० ( प. द. ) ०स्याप्य म० ५ ( व. म. द. ) ०वन्तो म० ६ ( व. म. द. )

अवज्ञाकारिणस्तस्य यज्ञं शीघ्रं विनाशय ।  
 तेन मे जायते प्रीतिरनुला भक्तवत्सल ॥ ४७ ॥  
 एवं देव्या वचः श्रुत्वा देवदेवः पिनाकधृक् ।  
 असृजत्तत्क्षणाच्छुभ्रं विभुद्रं महाबलम् ॥ ४८ ॥

- सहस्रसिंहवदनं प्रलयाम्बिसमप्रभम् ।  
 सहस्रबाहुं जटिलं दुष्टानां च भयंकरम् ॥ ४९ ॥  
 भक्तानां वरदं देवं सूर्यसोमाम्बिलोचनम् ।  
 उमाकोपोद्भवा देवी भद्रकाली भयंकरी ॥ ५० ॥  
 अन्याश्च देव्यो रुद्राश्च शतशो रोमसंभवाः ।  
 भद्रकाल्या सह तदा वीरभद्रो महाबलः ॥ ५१ ॥  
 प्रहितो देवदेवेन दक्षयज्ञजिघांसया ।  
 गत्वा स यज्ञं दक्षस्य भस्मसादकरोद्विजाः ॥ ५२ ॥  
 दक्षस्तदद्भुतं कर्म दृष्ट्वाऽथ भयविह्वलः ।  
 गतस्तच्छरणं शीघ्रं वीरभद्रस्य शूलिनः ॥ ५३ ॥  
 उवाच वीरभद्रस्तं दक्षं प्राचेतसं द्विजाः ।  
 तस्य पापविमोक्षाय कारुण्याभृतवारिधिः ॥ ५४ ॥

**वीरभद्र उवाच**—गच्छ वाराणसीं दक्षं सर्वपापप्रणाशनीम् ।

अनुग्रहार्थं लोकानां यत्र तिष्ठति शंकरः ॥ ५५ ॥

अनुग्रहाद्भगवतो देवदेवस्य शूलिनः ।

अनेनैव शरीरेण तत्र मोक्षं गमिष्यसि ॥ ५६ ॥

**सूत उवाच**—वीरभद्रस्य वचनं श्रुत्वा दक्षो महामतिः ।

गत्वा वाराणसीं शीघ्रं सर्वसङ्गविवर्जितः ॥ ५७ ॥

प्रतिष्ठाप्य महालिङ्गं गङ्गातीरे मनोरमे ।

आराध्य परया भक्त्या तस्मिँल्लिङ्गे लयं गतः ॥ ५८ ॥

दक्षेश्वरस्य माहात्म्यं कथितं मुनिपुङ्गवाः ।

त्रिलोचनस्य माहात्म्यं सांप्रतं वर्णयते मया ॥ ५९ ॥ ३०९ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे दक्षेश्वर-

- माहात्म्यादिकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

**सूत उवाच**—त्रिलोचनात्परं लिङ्गं वाराणस्यां न दृश्यते ।

सदा संनिहितो निर्त्यं पस्मिँल्लिङ्गे शिवः स्थितः ॥ १ ॥

यानि स्थितानि लिङ्गानि वाराणस्यां द्विजोत्तमाः ।  
 दृष्टान्येव भवन्त्येव दृष्टे लिङ्गे त्रिलोचने ॥ २ ॥  
 असंख्यातानि पापानि ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।  
 कृतानि नाशयत्येवं देवदेवत्रिलोचनः ॥ ३ ॥  
 मायापाशेन बद्धानां सर्वेषां प्राणिनामपि ।  
 मुक्तिं ददाति परमां देवदेवत्रिलोचनः ॥ ४ ॥  
 पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं सर्पमेखलमण्डितम् ।  
 तस्य दर्शनमात्रेण कोटिलिङ्गार्चनं फलम् ॥ ५ ॥  
 त्रिलोचनं ह्यसंपूज्य कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।  
 ययौ कामेश्वरं द्रष्टुं सिद्धलिङ्गमनुत्तमम् ॥ ६ ॥  
 ददौ दुर्वाससे यत्र देवदेवो महेश्वरः ।  
 प्रसन्नो विविधाः सिद्धीः सर्वेषामपि दुर्लभाः ॥ ७ ॥  
 अन्यश्चापि वरो दत्तो देवदेवेन शूलिना ।  
 कृतानां क्रियमाणानां सर्वेषां तपसामपि ॥ ८ ॥  
 क्रोधो नाशकरः प्रोक्तो ह्यन्यथैव मुने स्तुते ।  
 तस्य दक्षिणदिग्भागे कामकुण्डमिति स्मृतम् ॥ ९ ॥  
 तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या दृष्ट्वा कामेश्वरं शिवम् ।  
 ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्तो याति परां गतिम् ॥ १० ॥  
 अन्यान्यपि च लिङ्गानि वाराणस्यां स्थितान्यपि ।  
 संख्यामपि न जानाति तेषां देवश्चतुर्मुखः ॥ ११ ॥  
 को वा वदति 'माहात्म्यमृते देवान्महेश्वरात् ।  
 नन्दीश्वरो वा जानाति प्रसादाद्भिरिजापतेः ॥ १२ ॥  
 अथ सत्यवतीसुनुर्द्रष्टुं देवीं शिवां पराम् ।  
 विशालाक्षीं द्विजश्रेष्ठा यत्र संनिहिता शिवा ॥ १३ ॥  
 तां दृष्ट्वा विधिवद्भक्त्या संपूज्य च महामुनिः ।  
 परानन्दात्मिकां गौरिं स्तुतिं मत्वा चकार सः ॥ १४ ॥  
**व्यास उवाच**—विशालाक्षि नमस्तुभ्यं परब्रह्मात्मिके शिवे ।  
 त्वमेव माता सर्वेषां ब्रह्मादीनां दिवोकसाम् ॥ १५ ॥

इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्त्वमेव हि ।  
 ऋज्वी कुण्डलिनी सूक्ष्मा योगसिद्धिप्रदायिनी ॥ १६ ॥  
 स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती ।  
 सती दाक्षायणी विद्या सर्वशक्तिमयी शिवा ॥ १७ ॥  
 अपर्णा चैकपर्णी च तथो चैकैकपाटला ।  
 उमा हैमवती चापि कल्याणी चैव मानुका ॥ १८ ॥  
 रुपातिः प्रज्ञा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता ।  
 गणाम्बिका महादेवी नन्दिनी जातवेदसी ॥ १९ ॥  
 सावित्री वरदा पुण्या पावनी लोकविश्रुता ।  
 आद्येती नियती रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी ॥ २० ॥  
 कालरात्री महामाया रेवती भूतनायिका ।  
 गौतमी कौशिकी चाऽऽर्या चण्डी कात्यायनी सती ॥ २१ ॥  
 वृषध्वजा गूलधरा परमा ब्रह्मचारिणी ।  
 महेन्द्रोपेन्द्रमाता च पार्वती सिंहवाहना ॥ २२ ॥  
 एवं स्तुत्वा विशालाक्षीं दिव्यैरेतैः मुनामभिः ।  
 कृतकृत्योऽभवद्वासो वाराणस्यां द्विजोत्तमाः ॥ २३ ॥  
 वाराणस्यां विशालाक्षी गङ्गा विश्वेश्वरः शिवः ।  
 भक्तिः पशुपतौ तत्र दुर्लभं हि चतुष्टयम् ॥ २४ ॥  
 यः पश्यति विशालाक्षीं स्नात्वा गङ्गाम्भसि द्विजाः ।  
 अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ २५ ॥  
 वाराणस्यास्तु माहात्म्यमिति किञ्चिन्मयोदितम् ।  
 यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि याति माहेश्वरं पदम् ॥ २६ ॥ ३३५ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे त्रिलोचन-  
 माहात्म्यादिकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥  
 ऋषय ऊचुः—किं लक्षणं पुराणानां तेषां दानेन किं फलम् ।  
 अन्येषामपि दानानां व्रतानां च विशेषतः ॥ १ ॥  
 वर्णानामाश्रमाणां च तेषां वै लक्षणं यथा ।  
 ततः श्राद्धविधानं च प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ २ ॥

१ ( द. ) ०नी नवी म० २ ( घ. ) विधा म० ३ ( च. छ. ) ०नीवा त० ४ ( क. ख. ग. ) ०पा विष्णुपाटला । ३० ५ ( क. ख. ग. ) ०नी . येव व० ६ ( ख. ग. ) ०दातीन० ७ ( ख. ग. ) ०शत्रिर्ह० ८ ( द. ) ०हृत्पा रे० ९ ( घ. द. च. छ. ) ०नी । माह० १० ( क. ख. ग. ) ०नेमुः न०

सर्वमेतदशेषेण सूत नो वक्तुमर्हसि ।  
 मूत उवाच—यदुक्तं भानुना पूर्वं पुत्राय मनवे द्विजाः ।  
 तदहं संप्रवक्ष्यामि शृणुध्वं गदतो मम ॥ ३ ॥  
 • सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशा मन्वन्तराणि च ।  
 वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ ४ ॥  
 ब्राह्मादीनां पुराणानामुक्तमेतत्तु लक्षणम् ।  
 एतच्चोपपुराणानां खिलत्वाद्धक्षणं स्मृतम् ॥ ५ ॥  
 ब्राह्मं पुराणं तत्राऽऽद्यं संहितायां विभूषितम् ।  
 श्लोकानां दशसाहस्रं नानापुण्यकथायुतम् ॥ ६ ॥  
 पात्रं द्वितीयं कथितं तृतीयं वैष्णवं स्मृतम् ।  
 चतुर्थं वायुना प्रोक्तं वायवीयमिति स्मृतम् ॥ ७ ॥  
 ततो भागवतं प्रोक्तं भागद्वयविभूषितम् ।  
 चतुर्भिः पर्वभिः प्रोक्तं भविष्यं तदनन्तरम् ॥ ८ ॥  
 नारदीयं तथाऽऽग्नेयं मार्कण्डेयमतः परम् ।  
 दशमं ब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशं परम् ॥ ९ ॥  
 भागद्वयेन लैङ्गं च ततो वाराहमुत्तमम् ।  
 संयुक्तमष्टाभिः खण्डैः स्कान्दं चैवातिविस्तरम् ॥ १० ॥  
 ततस्तु वामनं कौमं भागद्वयविराजितम् ।  
 मात्स्यं च गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डं च ततः परम् ॥ ११ ॥  
 भागद्वयेन कथितं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम् ।  
 खिलान्युपपुराणानि यानि चोक्तानि स्मरिभिः ॥ १२ ॥  
 इदं ब्रह्मपुराणस्य खिलं सौरमनुत्तमम् ।  
 संहिताद्वयसंयुक्तं पुण्यं शिवकथाश्रयम् ॥ १३ ॥  
 आद्या सनत्कुमारोक्ता द्वितीया सूर्यभाषिता ।  
 इयं पुण्यतमा ख्याता संहिता पापनाशिनी ॥ १४ ॥  
 वैवस्वताय मनवे कथिता रविणा पुरा ।  
 दानमस्य पुराणस्य दानानामुत्तमं द्विजाः ॥ १५ ॥  
 • यो दद्याच्छिवभक्ताय ब्राह्मणाय तपस्विने ।  
 यानि दानानि लोकेषु प्रसिद्धानि द्विजोत्तमाः ॥ १६ ॥



सर्वेषां फलमाप्नोति चतुर्दश्यां न संशयः ।  
 ब्राह्मं पुराणं प्रथमं ददाति श्रद्धयाऽन्वितः ॥ १७ ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।  
 पात्रं ब्रह्माणमुद्दिश्य यो ददाति गुरोर्दिने ॥ १८ ॥  
 द्विजाय वेदविदुषे ज्योतिष्टोमफलं लभेत् ।  
 वैष्णवं विष्णुमुद्दिश्य द्वादश्यां प्रयतः शुचिः ॥ १९ ॥  
 अनूचानाय यो दद्याद्द्वैष्णवं पदमाप्नुयात् ।  
 ददाति सूर्यभक्ताय यस्तु भागवतं द्विजाः ॥ २० ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वरोगविवर्जितः ।  
 लीवेद्वर्षशतं साग्रमन्ते वैवस्वतं पदम् ॥ २१ ॥  
 वैशाखे शुक्लपक्षस्य तृतीयाऽक्षयसंज्ञिता ।  
 तस्यां तिथौ संयतात्मा ब्राह्मणायाऽऽहिताग्रये ॥ २२ ॥  
 भविष्यारूपं पुराणं तु ददाति श्रद्धयान्वितः ।  
 अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ २३ ॥  
 मार्कण्डेयं तु यो दद्यात्सप्तम्यां प्रयतात्मवान् ।  
 सूर्यलोकमवाप्नोति सर्वपापविवर्जितः ॥ २४ ॥  
 आग्नेयं प्रतिपद्येव मदद्यादाहिताग्रये ।  
 राजसूयस्य यज्ञस्य फलं भवति शाश्वतम् ॥ २५ ॥  
 ददाति नारदीयं पञ्चतुर्दश्यां समाहितः ।  
 द्विजाय शिवभक्ताय शिवलोके महीयते ॥ २६ ॥  
 यो दद्याद्ब्रह्मवैवर्ते वैष्णवाय समाहितः ।  
 ब्रह्मलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ २७ ॥  
 क्रांतिरूपं चतुर्दश्यां शुक्लपक्षस्य सुभ्रंताः ।  
 लेङ्गं दद्याद्दिजेन्द्राय शिवाचंनरताय वै ॥ २८ ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वेश्वर्यसमन्वितः ।  
 याति माहेश्वरं धाम सर्वलोकोपरि स्थितम् ॥ २९ ॥  
 द्वादश्यां संयतो भूत्वा ब्राह्मणाय तपस्विने ।  
 यो वै ददाति वाराहं विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ३० ॥  
 \*स्कान्दं शिवचतुर्दश्यां मदद्याच्छिवयोगिने ।  
 ज्ञानी भवति विमेन्द्रा महादेवमसादतः ॥ ३१ ॥

\* यम'हनपुराणेऽयं धोहो कर्तव्यः ।

द्वादश्यां वा चतुर्दश्यां दद्याद्दामनमुत्तमम् ।  
 तस्यै देवस्य तं लोकं प्राप्नोत्यक्षयमुत्तमम् ॥ ३२ ॥  
 दद्यात्कौर्मं चतुर्दश्यां योगिने प्रयतात्मने ।  
 सर्वदानस्य यत्पुण्यं सर्वयज्ञस्य यत्फलम् ॥ ३३ ॥  
 प्राप्नोति तत्फलं विद्वानन्ते शैवं परं पदम् ।  
 मात्स्यं दद्याद्द्विजेन्द्राय प्रयतश्चोत्तरायणे ॥ ३४ ॥  
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यः शिवलोके महीयते ।  
 गारुडं शिवमुद्दिश्य दद्याच्छिवतिथौ द्विजाः ॥ ३५ ॥  
 वाजपेयसहस्रस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम् ।  
 प्रदद्याच्छिवभक्ताय ब्रह्माण्डमिति यत्स्मृतम् ॥ ३६ ॥  
 शिवस्य पुरतो भक्त्या संप्राप्ते दक्षिणायने ।  
 चन्द्रस्य ग्रहणे वाऽथ भानोरपि च सुव्रताः ॥ ३७ ॥  
 रौणाधिपत्यमाप्नोति देवदेवस्य शूलिनः ।  
 एवमुक्तः पुराणानां क्रमो दानेन यत्फलम् ॥ ३८ ॥  
 प्रोक्तं समासतो विद्याः सूर्यो यत्स्वयमब्रवीत् ।  
 यः पठेदिममध्यायं महादेवस्य संनिधौ ॥ ३९ ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो वाजपेयफलं लभेत् ॥ ४० ॥ ३७५ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे ब्राह्मदि-  
 पुराणक्रमदानफलकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥  
 नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विमलं च चतुर्विधम् ।  
 दानं पात्रे प्रदांतर्ष्यं नापात्रेऽप्यणमात्रकम् ॥ १ ॥  
 पात्रभृतान्प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ।  
 भानुना देवदेवेन मनवे कथिताश्च ये ॥ २ ॥  
 न दानादधिकं किञ्चिद्विद्यते भुवनत्रये ।  
 दानेन प्राप्यते स्वर्गः श्रीदानेनैव लभ्यते ॥ ३ ॥  
 दानेन प्राप्नुयात्सौरुष्यं रूपं कान्ति यशो बलम् ।  
 दानेन जयमाप्नोति मुक्तिर्दानेन लभ्यते ॥ ४ ॥  
 दानेन शत्रून्पति व्याधिदानेन नश्यति ।  
 दानेन लभते विद्यां दानेन युवतीं जनः ॥ ५ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं स्मृतम् ।  
 दानमेव न चैवान्यदिति देवोऽब्रवीद्विः ॥ ६ ॥  
 तस्मादानाय सत्पात्रं विचार्यैव प्रयत्नतः ।  
 दातव्यमन्यथा सर्वभस्मनीव हुतं भवेत् ॥ ७ ॥  
 वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः शान्ताश्चैव जितेन्द्रियाः ।  
 श्रौतस्मार्तक्रियानिष्ठाः सत्यनिष्ठाः कुट्टुम्बिनः ॥ ८ ॥  
 तपस्विनस्तीर्थरताः कृतज्ञा मितभाषिणः ।  
 गुरुशुश्रूषणरता नित्यं स्वाध्यायशीलिनः ॥ ९ ॥  
 महादेवार्चनरता भूतिशासनभूषिताः ।  
 वैष्णवाः सूर्यभक्ता वा पात्रभूता द्विजोत्तमाः ॥ १० ॥  
 एभ्य एव प्रदातव्यमीहेदानफलं यदि ।  
 आपद्यपि न दातव्यमन्येभ्य इति निश्चितम् ॥ ११ ॥  
 यस्तु माहेश्वरो विप्रो जातिमात्रोऽपि यद्यपि ।  
 उत्तमः सर्वपात्राणां तस्मै दत्तं तदक्षयम् ॥ १२ ॥  
 शिवभक्तमतिक्रम्य यच्चान्यस्मै प्रदीयते ।  
 निष्फलं तद्भवेदानं नरकं च प्रपद्यते ॥ १३ ॥  
 तस्मात्पात्रतमं ज्ञात्वा शिवभक्तमकल्मषम् ।  
 तस्मै सर्वं प्रदातव्यमक्षयं फलमिच्छता ॥ १४ ॥  
 दानं फलमनुद्दिश्य सर्वदा यत्प्रदीयते ।  
 तदानं नित्यमित्युक्तं देवदेवेन भानुना ॥ १५ ॥  
 दानं पापविशुद्धयर्थं श्रद्धया यत्प्रदीयते ।  
 प्रोक्तं नैमित्तिकं दानमृषिभिर्वेदवादिभिः ॥ १६ ॥  
 पुत्रार्थं वा धनार्थं वा स्वर्गार्थं वाऽन्यतोऽपि वा ।  
 यदानं दीयते भक्त्या काम्यमित्यभिधीयते ॥ १७ ॥  
 हरस्य प्रीणनार्थं यच्छिवभक्ताय दीयते ।  
 दानं तद्विमलं प्रोक्तं केवलं मोक्षसाधनम् ॥ १८ ॥  
 यत्किञ्चिदीयते दानं दरिद्राय विशेषतः ।  
 दानं तदधिकं प्रोक्तं स्वकुट्टुम्याविरोधतः ॥ १९ ॥

स्वल्पामपि महीं यस्तु ददाति श्रद्धयाऽन्वितः ।  
 स याति ब्रह्मसदनं यत्र देवः स्वयं विराट् ॥ २० ॥  
 इक्षुगोधूमतुवरीयवैश्च सहितां महीम् ।  
 यो ददाति दरिद्राय स याति ऽवितुः पद्म् ॥ २१ ॥  
 अपि गोचर्ममात्रां यो ददाति श्रद्धयान्वितः ।  
 शिवभक्ताय शान्ताय सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२ ॥  
 न भूमिदानादधिकं दानमस्तीह भृतले ।  
 तदानं हि दरिद्राय दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ २३ ॥  
 आढ्याय नैव दातव्यं भूमिदानं विशेषतः ।  
 यो ददाति भयात्स्नेहोत्सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥ २४ ॥  
 यैर्देत्ता ब्राह्मणेभ्यश्च भ्रामाः परमधार्मिकैः ।  
 शृङ्खन्ति ये करं तेषु लोभान्धाः पापिनो वृषाः ॥ २५ ॥  
 नरकेषु विपच्यन्ते यावत्कल्पायुतत्रयम् ।  
 तदन्ते मक्षिका यूका मत्कुणा मशकास्तथा ॥ २६ ॥  
 क्रमयो जालपादार्षं शूकराः पक्षिणस्तथा ।  
 श्वानो गोधाः शशाः सेधा र्दभाश्च पिपीलिकाः ॥ २७ ॥  
 मृयकाः कृकलासाश्च वृक्षगुल्मादयस्तथा ।  
 भवन्ति युगसाहस्रं तदन्ते म्लेच्छजातयः ॥ २८ ॥  
 न तेषां निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तशतैरपि ।  
 ब्रह्महा शुद्धिमाप्नोति कालेन मुनिपुङ्गवाः ॥ २९ ॥  
 द्विजग्रामकरग्राही नैव शुद्धिमवाप्नुयात् ।  
 तस्मात्परिहरेत्तत्र करं यत्नेन बुद्धिमान् ॥ ३० ॥  
 विभ्रदानकरादानादधिकं नास्ति पातकम् ।  
 दानानामुत्तमं दानं विद्यादानं विदुर्बुधाः ॥ ३१ ॥  
 तच्च दानं विनीताय वर्णाश्रमरताय च ।  
 ब्राह्मणायैव शान्ताय शुश्रूषणरताय च ॥ ३२ ॥  
 दत्तं तद्ब्रह्मलोकाय विद्यादानं प्रचक्षते ।  
 अन्नदानं प्रशंसन्ति विदुषो वेदवादिनः ॥ ३३ ॥

अन्नमेव यतः प्राणाः प्राणदानसमं हि तत् ।  
 तस्मादहरहर्देयमन्नमेव विचक्षणैः ॥ ३४ ॥  
 अपरीक्ष्यैव सर्वेभ्य इति स्वायंभुशासनात् ।  
 प्रीतो विरञ्चिरन्नेन प्रीतश्च कमलापतिः ॥ ३५ ॥  
 प्रीतश्च भगवाञ्शंभुरन्नेनैव शचीपतिः ।  
 तस्माद्विशिष्टं ते देयमाहुर्वेदविदो बुधाः ॥ ३६ ॥  
 आममन्नं गृहस्थाय नैव पक्कं कदाचन ।  
 नाध्वगाय निषिद्धं तदिति देवोऽब्रवीद्भ्रविः ॥ ३७ ॥  
 जलदानमपि प्रोक्तमन्नदानेन वै समम् ।  
 जीवनं सर्वभूतानां जलमेव द्विजोत्तमाः ॥ ३८ ॥  
 तिलदः पुत्रमाप्नोति वासोदः कान्तिमुत्तमाम् ।  
 दीपदो निर्मलां द्वाष्टं यानदः श्रियमुत्तमाम् ॥ ३९ ॥  
 शय्याप्रदश्चापि तथा धान्यदः सौख्यमुत्तमम् ।  
 अश्विनोर्लोकमाप्नोति सौन्दर्यं घोटकप्रदः ॥ ४० ॥  
 ब्रह्मदानं महद्दानमिति वेदविदो विदुः ।  
 तेन दानेन महता सायुज्यं ब्रह्मणः स्मृतम् ॥ ४१ ॥  
 गृहीत्वा वेतनं वेदं योऽध्यापयति मूढधीः ।  
 अर्धति यो हि वा दत्त्वा ताशुभौ पापिनौ स्मृतौ ॥ ४२ ॥  
 तपोमुत्सर्गता वेदा निन्द्रिताः सर्वकर्मसु ।  
 सुराभाण्डगतं तोयं यथा भवति निन्दितम् ॥ ४३ ॥  
 गर्वां ग्रासप्रदानेन मुच्यते सर्वपातकैः ।  
 यानि भोज्यानि मूल्यानि फलानि विविधानि च ॥ ४४ ॥  
 शाकानि ब्राह्मणैर्यथा दत्त्वाऽस्त्यन्तं सुखी भवेत् ।  
 इन्धनानां प्रदानेन जठराग्निप्रदीपनम् ॥ ४५ ॥  
 परलोकगतानां च च्छत्रदानं सुखप्रदम् ।  
 रोगिणे रोगशान्त्यर्थमौषधं यः प्रपच्छति ॥ ४६ ॥  
 रोगहीनः स दीर्घायुः सुखी भवति सर्वदा ।  
 गामलंकृत्य यो दद्यात्सवत्सरां च सदक्षिणाम् ॥ ४७ ॥

स क्षीरिणो द्विजेन्द्राय श्रद्धया द्विजपुङ्गवाः ।  
 प्राप्नोति शाश्वत्तल्लोकाञ्जानाभोगसमन्वितान् ॥ ४८ ॥  
 संख्या नैवास्ति पुण्यानां कपिलायाः प्रदानतः ।  
 कृष्णाजिनं च महिषी मैषी च दश धेनवः ॥ ४९ ॥  
 ब्रह्मलोकप्रदायिन्यस्तुलापुरुष एव च ।  
 षोडश क्रतवो ये च दानं तीर्थेषु यत्स्मृतम् ॥ ५० ॥  
 तदक्षयं भवेद्दानं योगिने च विशेषतः ।  
 अयने विपुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ५१ ॥  
 संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम् ।  
 शिवमुद्दिश्य यदत्तं स्वल्पं वा यद्रि वा बहु ॥ ५२ ॥  
 शिवालये विशेषेण दत्तं भवति चाक्षयम् ।  
 विशाखर्क्षेण संयुक्ता वैशाखी पूर्णिमा भवेत् ॥ ५३ ॥  
 तस्यां तिथौ तु संपूज्य ब्राह्मणान्सप्त पञ्च वा ।  
 कृष्णैरेव तिलैर्विद्वान्मधुनो वाऽप्युपोषितः ॥ ५४ ॥  
 धर्मराजो यमः साक्षात्प्रीयतामिति शक्तितः ।  
 दद्याद्देवार्थेविदुषे यदि वा शिवयोगिने ॥ ५५ ॥  
 यावज्जीवं धृतैः पापैः कायिकैर्वाङ्मनोगतैः ।  
 मुच्यते तत्क्षणादेव धर्मराजप्रसादतः ॥ ५६ ॥  
 कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिणी ।  
 ददाति यस्तु विप्राय सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५७ ॥  
 \*गामन्नमुदकुम्भं च वैशाख्यां संप्रयच्छति ।  
 प्रीतये धर्मराजस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५८ ॥  
 प्रसिद्धा या शिवतिथिर्माघे कृष्णचतुर्दशी ।  
 तस्यां तिथौ नरो भक्त्या देवमुद्दिश्य शंकरम् ॥ ५९ ॥  
 ददाति हेम वासो वा फलं धान्यमथापि वा ।  
 यत्किञ्चिद्देवविदुषे दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ ६० ॥  
 अभयं सर्वभूतैभ्यो दद्याद्दानं परं स्मृतम् ।  
 न तस्मादधिकं दानं विद्यते च धनैर्विना ॥ ६१ ॥

\* घटचछसहितपुस्तकेष्वय धेनो न विद्यते ।

१ ( फ. स. ग. ) ०धी सुस० २ ( फ. स. ग. ड. ) ०ना चाप्यु० ३ ( ल. ग. घ. ङ. )

एवं दानफलं प्रोक्तं पुराणेऽस्मिन्पृथक्पृथक् ।

पठेद्यः गृणुयाद्वाऽपि गोदानस्य फलं लभेत् ॥ ६२ ॥ ४३७ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे दानार्ह-

विमादिकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

\*मृत उवाच-अन्यद्वर्तमिदं वक्ष्ये गृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ।

शिवेन कथितं साक्षात्स्वयं स्कन्दाय पृच्छते ॥ १ ॥

स्कन्द उवाच-देवदेव महादेव शशाङ्ककृतशेखर ।

भर्गविश्वेश्वरेजान कारुण्यामृतवारिधे ॥ २ ॥

कस्य प्रसीदति क्षिप्रं केन वा ज्ञायते भवान् ।

योगस्त्वद्विषयः को वा ज्ञानं त्वद्विषयं च किम् ॥ ३ ॥

सर्वमेतन्महादेव पुत्रस्त्रेहाद्रवीहि मे ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच-मद्भक्तः सर्वदा स्कन्द मत्प्रियो न गुणाधिकः ।

सर्वाशी सर्वभक्षी वा सर्वाचारविलोपकः ॥ ५ ॥

भत्परो वाङ्मनःकार्पैर्मुक्त एव न संशयः ।

नाहं भसन्नस्तपसा न दानेन न चेज्यया ॥ ६ ॥

तुष्टोऽहं भक्तिलेशेन क्षिप्रं यच्छे परं पदम् ।

त्रिपुण्ड्रधारी सततं शान्तो रुद्राक्षकङ्कणः ॥ ७ ॥

निर्दम्भः सत्यसंकल्पो भक्तः स्यादुत्तमो मम ।

सूर्यवह्नीन्दुभक्तानामुत्तमो वैष्णवः परः ॥ ८ ॥

वैष्णवानां सहस्रेभ्यः शिवभक्तो विशिष्यते ।

यदि पापरतः क्रूरः स्वाश्रमाचारवर्जितः ॥ ९ ॥

मम भक्तो यदि भवेत्प्रज्यो मान्यः स एव हि ।

येऽपि दम्भं समाश्रित्य भक्तानामुपजीविकाः ॥ १० ॥

संसारार्त्तेऽपि मुच्यन्ते किं पुनर्मत्परा जनाः ।

भद्रक्तानां च माहात्म्यं को वा जानाति तत्त्वतः ॥ ११ ॥

जानेऽहं त्वं च जानासि नन्दी जानासि वा गुह ।

मार्गस्यो वाऽप्यमार्गस्यो मुस्तौ वा पण्डितोऽपि वा ॥ १२ ॥

\* पठेद्यः पुराणसहितपुराणकेषु य एवाद्दशोऽध्यायः स एव कलकामन्त्रिपुराणकेषु पञ्चदशो वर्तते । तेषु पुराणकेषु दशोऽध्यायो विद्यते एव । स चारिभ्यः पुस्तके यदुद्देशाभावात्स्थाने मण्डितः । कलकामन्त्रिपुराणकेषु दशोऽध्यायः विद्यते ।

मम भक्तो यदि भवेत्सर्वस्मादधिको हि सः ।  
 भक्तः प्रियो मे सततं यथा त्वं क्रीञ्चसूदन ॥ १३ ॥  
 तस्मात्तत्पूजनाद्वत्स पूजितोऽहं न संशयः ।  
 मद्भक्तं द्वेष्टि यो मोहात्स मां द्वेष्टि सनातनं ॥ १४ ॥  
 तं पूजयति यो भक्त्या स मां पूजितवान्गुह ।  
 भक्तिरष्टविधा स्कन्द सर्वशास्त्रेषु पठ्यते ॥ १५ ॥  
 तामहं कथयिष्यामि भक्तिं भवविनाशिनीम् ।  
 मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायाश्चानुमोदनम् ॥ १६ ॥  
 स्वयमभ्यर्चनं भक्त्या ममार्थं चाङ्गवेष्टितम् ।  
 मत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्राङ्गविक्रिया ॥ १७ ॥  
 ममानुस्मरणं नित्यं यश्च मां नोपजीवति ।  
 भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिँल्लेशोऽपि वर्तते ॥ १८ ॥  
 स विभेन्द्रो मुनिः श्रीमान्स पतिः स च पण्डितः ।  
 तस्मै दानं सदा देयं तस्माद्ग्राह्यं पढानन ॥ १९ ॥  
 सकृदभ्यर्चयेन्मां यो भक्तिलेशसमन्वितः ।  
 स महापातकैर्मुक्तो मम लोके महीयते ॥ २० ॥  
 स्वहस्ताहृतपुष्पाणि मामुद्दिश्य प्रयच्छति ।  
 तद्दानं सर्वदानानामुत्तमं परिपश्यते ॥ २१ ॥  
 मयि भक्तिः सदा कार्या भवपाशविमोचनी ।  
 भक्तिराम्यस्त्वहं वत्स मम योगो हि दुर्लभः ॥ २२ ॥  
 योगात्संजायते ज्ञानं योगो मय्येकचित्तता ।  
 ज्ञानं स्वरूपमेव स्थाश्चिद्रूपभङ्गप्रयथम् ॥ २३ ॥  
 आनन्दमजर शृद्धमज्ञानेन तिरोहितम् ।  
 वेदान्तवाक्पबोक्षेन तच्चाज्ञानं निवर्तते ॥ २४ ॥  
 ज्ञानं नैवाऽऽत्मनो धर्मो न गुणो वा कथंचन ।  
 ज्ञानस्वरूपमेवाऽऽत्मा नित्यः सर्वगतः शिवः ॥ २५ ॥  
 अहमात्मा समस्तानां भूतानां परमेश्वरः ।  
 एक एव पदार्थश्च कल्पितो मयि पण्मुख ॥ २६ ॥  
 अद्वैतमेकं परममात्मानं ज्ञानविग्रहम् ।  
 नानात्मानं प्रपश्यन्ति मायया मोहिता जनाः ॥ २७ ॥



नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका ।  
 सदसद्रूप्यामन्यरूपा मिथ्याभूता सनातना ॥ २८ ॥  
 विज्ञानमेवमखिलं विश्वाकारमबुद्धयः ।  
 पश्यन्ति ज्ञानिनस्त्वेकमात्मरूपमिदं जगत् ॥ २९ ॥  
 अहमात्मा विभुः शुद्धः स्फटिकोपलसन्निभः ।  
 उपाधिरहितः शान्तः स्वयंज्योतिः प्रकाशकः ॥ ३० ॥  
 आत्मन्येवाखिलं भाति शुक्तिकारजतं यथा ।  
 शुक्तितत्त्वपरिज्ञानात्तन्नाशस्तद्भेदात्मनि ॥ ३१ ॥  
 कर्तृत्वं नैव भोक्तृत्वमात्मनोऽस्ति कदाचन ।  
 अहंकाराविवेकेन कर्तृत्वमिति निश्चितम् ॥ ३२ ॥  
 आत्मनो नित्यमुक्तस्य निर्विभागस्य पण्मुस्र ।  
 नैवास्ति किञ्चित्कर्तव्यमित्याहुर्वेदवादिनः ॥ ३३ ॥  
 कर्तृत्वं करणस्यैव नाऽऽत्मनोऽस्ति हि तत्त्वतः ।  
 न तेन लिप्यते ह्यात्मा पुण्यापुण्याख्यकर्मणा ॥ ३४ ॥  
 बुद्ध्यादयो गुणाः सर्वे ह्यभ्रद्बुद्धेरहंकृतिः ।  
 अहंकाराच्च सूक्ष्माणि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ॥ ३५ ॥  
 सूक्ष्मेभ्यः पञ्चभूतानि तेभ्यः स्थूलमिदं जगत् ।  
 चतुर्विंशकमव्यक्तं पुरुषः पञ्चविंशकः ॥ ३६ ॥  
 न तस्य कार्यं करणं क्रियारूपं च विद्यते ।  
 स्वाज्ञानात्कथितं सर्वमात्मन्येवेति च श्रुतिः ॥ ३७ ॥  
 इति महिष्यपं ज्ञानं कथितं तव पुत्रक ॥ ३८ ॥ ४७५ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसोरे स्रतशौनकसंवादे शिवभक्त-  
 महिमादिकथनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥  
 ईश्वर उवाच—मय्येकचित्तता योग-इति पूर्वं निरूपितम् ।  
 साधनान्यष्टधा तस्य प्रवक्ष्याम्यधुना शृणु ॥ १ ॥  
 यमाश्च नियमास्तावदासनान्यपि पण्मुस्र ।  
 प्राणायामस्ततः प्रोक्तः प्रत्याहारश्च धारणा ॥ २ ॥  
 ध्यानं तथा समाधिश्च योगाद्भानि प्रचक्षते ।  
 अदिसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ॥ ३ ॥

यमाः संक्षेपतः प्रोक्ता नियमाऽशृणु पुत्रक ।  
 तपः स्वाध्यायसंतोषः शौचमीश्वरपूजनम् ॥ ४ ॥  
 नियमाः कथिता वत्स योगसिद्धिप्रदायिनः ।  
 सर्वेषामेव भूतानामकेशजननं हि यत् ॥ ५ ॥  
 अहिंसा कथिता सद्भिर्योगसिद्धिप्रदायिनी ।  
 यथार्थकथनं सत्यमस्तेयमधुना शृणु ॥ ६ ॥  
 चौर्येण वा बलेनापि परस्वहरणं च यत् ।  
 स्तेयमित्युच्यते सद्भिरस्तेयं तस्य वर्जनम् ॥ ७ ॥  
 सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यमिहोच्यते ।  
 द्रव्याणामप्यनादानप्रापद्यपि पथेच्छया ॥ ८ ॥  
 अपरिग्रह इत्युक्तो योगसिद्धेस्तु साधनम् ।  
 चान्द्रायणादिना यत्तु शरीरस्य च शोषणम् ॥ ९ ॥  
 तत्तपः कथितं पुत्र स्वाध्यायमधुना शृणु ।  
 प्रणवः शतरुद्रीपं तथाऽधर्वशिरःशिखा ॥ १० ॥  
 एतेषां योजपः पुत्र स्वाध्याय इति कीर्तितः ।  
 यदृच्छालाभसंतुष्टः संतोष इति पठ्यते ॥ ११ ॥  
 बाह्ये चार्भ्यन्तरे चापि शुद्धिः शौचं विधीयते ।  
 स्तुतिस्मरणपूजाभिर्वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥ १२ ॥  
 मयि भक्तिर्दृढा पुत्र एतदीश्वरपूजनम् ।  
 यमाश्च नियमाः प्रोक्ताः संक्षेपात् तु विस्तरात् ॥ १३ ॥  
 यमैश्च नियमैर्युक्तो योगी मोक्षाय संस्तुतः ।  
 स्थिरबुद्धिरसंमूढः पूर्वमासनमभ्यसेत् ॥ १४ ॥  
 पद्मकं स्वास्तिकं पीठं सैहं कौकुटकौश्लरम् ।  
 कौर्म वज्रासनं जैवं वैयाघ्रं चार्धचन्द्रकम् ॥ १५ ॥  
 दण्डं ताक्ष्यासनं शूलं खड्गं मुद्गरमेव च ।  
 मकरं त्रिपथं काष्ठं स्थाणुवां हस्तिकर्णिकम् ॥ १६ ॥  
 भीमं वीरासनं चापि वाराहं भृगुवैणिकम् ।  
 कौश्लं चानालिकं चापि सर्वतोभद्रमेव च ॥ १७ ॥  
 इत्येतान्यासनान्यत्र सप्तविंशतिसंख्यया ।  
 योगसंसिद्धिहेतोस्तु कथितानि त्वानघ ॥ १८ ॥

एषामेकतरं बद्ध्वा गुरुभक्तिपरायणः ।  
 द्वन्द्वार्तीतो जयेत्प्राणानभ्यासक्रमयोगतः ॥ १९ ॥  
 अन्तश्चराणां वायूनां बाह्याभ्यन्तररोधनम् ।  
 प्राणायाम इति प्रोक्तो द्विविधः स च कथ्यते ॥ २० ॥  
 अगर्भश्च सगर्भश्च तयोराद्योऽजयः स्मृतः ।  
 द्वितीयः सजयः प्रोक्तो ध्रुवं व्याहृतिमातृभिः ॥ २१ ॥  
 रेचकः शून्यकश्चैव पूरकः कुम्भकस्तथा ।  
 एवं चतुर्विधो भेदः प्राणायामेऽत्र सूत्रिभिः ॥ २२ ॥  
 असूनां नाड्यः प्रोक्ता गमागमलयाश्रयाः ।  
 रेचनाद्रेचकः प्रोक्तः शून्यकस्तु यथास्थितः ॥ २३ ॥  
 पूरकः पूरणाद्वायोस्तन्निरोधाच्च कुम्भकः ।  
 देहिनो दक्षिणे भागे पिङ्गला नाडिका स्मृता ॥ २४ ॥  
 पितृयोनिरिति ख्याता भानुस्तत्राधिदैवतम् ।  
 दक्षिणोत्तरगा या च इडा सा नाडिका स्मृता ॥ २५ ॥  
 देवयोनिरिति ख्याता चन्द्रस्तत्राधिदैवतम् ।  
 एतयोरुभयोर्मध्ये सुपुत्रा नाम विश्रुता ॥ २६ ॥  
 पञ्चसूत्रनिभा नाडी कार्याख्या ब्रह्मदैवतम् ।  
 ततः शून्यं निरालम्बं मध्ये स्वात्मनि योजयेत् ॥ २७ ॥  
 बाह्यस्याद्रोधनाद्वायोः शून्यकत्वं विनिर्दिशेत् ।  
 चन्द्रदैवतया भूयः पित्रेदमृतमुत्तमम् ॥ २८ ॥  
 आप्यायनं भवेत्तेन प्लावनं कल्पमपस्य तु ।  
 आपूर्णोदरसंस्थं तु उच्चैर्वायुं निरोधयेत् ॥ २९ ॥  
 कुम्भकः कुम्भवत्स स्याद्रेचको वार्तितस्य च ।  
 उत्क्षिप्य प्रयतो वायुमज्जदेवत्प्रमानयेत् ॥ ३० ॥  
 अङ्गुष्ठाग्रात्समारभ्य ब्रह्मरन्ध्रेण मोचयेत् ।  
 संकोच्य कुञ्चिकाचक्रमूर्ध्वं नीत्वा रसात्रयम् ॥ ३१ ॥  
 संतोभ्य शङ्खिनीं सम्पक्ततो ब्रह्मगुहां नयेत् ।  
 अनेन शोधयेन्मार्गमैश्वरं विमलं भुनिः ॥ ३२ ॥

क्रमेणाभ्यासयोगेन योगसंसिद्धिभाग्भवेत् ।  
 मुमुक्षूणां सदावत्स योगाङ्गं योगसिद्धये ॥ ३३ ॥  
 विहाय वह्निभागं तु अङ्गुल्यास्तु शनैः शनैः ।  
 सौम्येनाऽऽकर्षयेद्वायुं नाभावाकृष्य धारयेत् ॥ ३४ ॥  
 धारयन्नियतप्राणो योगैश्वर्यसमन्वितः ।  
 जायते वत्सराद्योगी जरामरणवर्जितः ॥ ३५ ॥  
 वायुमाकर्षयेद्ब्राह्मं वामया चोदरं भरेत् ।  
 नाभिनासान्तरा घ्यापंत्त्रिः प्राणांश्च जपेद्भुवम् ॥ ३६ ॥  
 मनःस्थैर्यं भवेद्भूत्स त्रिषु स्थानेषु धारणात् ।  
 अङ्गुष्ठनाभिनासाग्रे वायुं योगी जितासनः ॥ ३७ ॥  
 अपानं कटिदेशे तु पृष्ठतो वै विनिर्दिशेत् ।  
 सदा तत्रैव संधेय एष वायुजयक्रमः ॥ ३८ ॥  
 रेचकः पूरकश्चैव कुम्भकश्च न विद्यते ।  
 निरालम्बे मनः कृत्वा क्षणात्प्राणजितो भवेत् ॥ ३९ ॥  
 इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः ।  
 निग्रहः प्रोच्यते यस्तु प्रत्याहारः स उच्यते ॥ ४० ॥  
 यद्यत्पश्यति तत्सर्वं पश्येदात्मवदात्मनि ।  
 प्रत्याहारः स वै प्रोक्तो योगसाधनमुत्तमम् ॥ ४१ ॥  
 कर्भेन्द्रियाणां पश्चानां पश्चमाद्येतरेजने ।  
 यदि तत्र स्थिरो लोको मनो याति तदालयम् ॥ ४२ ॥  
 उद्गातान्दश पञ्चैव कारयेद्धारणां बुधः ।  
 प्राणवायुं निवार्यैव मनः सूर्येऽन्तरे क्षिपेत् ॥ ४३ ॥  
 देवांश्च सिद्धान्गान्धवांश्चारणान्खेचरान्गणान् ।  
 पण्मासाभ्यासयोगेन सूक्ष्मज्योतिः प्रपश्यति ॥ ४४ ॥  
 दृष्टे न स्याज्जरा मृत्युः सर्वज्ञश्च प्रजायते ।  
 स्फोटाख्या नाडिका प्रोक्ता कूर्मलोकस्तदान्तरे ॥ ४५ ॥  
 उच्चार्य त्रिन्दुतत्त्वं तु तस्यान्ते गुणवत्स्मरेत् ।  
 भूतं भव्यं भविष्यं च वर्तमानं च द्रुतः ॥ ४६ ॥  
 ज्ञानं यत्तद्वेद्भूतं स्फोटाख्ये ज्ञानमभ्यसेत् ।  
 ललाटे मूर्ध्नि हृदये सदाशिवमनुस्मरेत् ॥ ४७ ॥

शृद्धस्फटिकसंकाशं जटाजूट्रेन्दुशेखरम् ।  
 पञ्चवक्रं दशभुजं सर्पयज्ञोपवीतिनम् ॥ ४८ ॥  
 ध्यात्वैवमात्मनि विभुं ध्यानं तत्सूरयो विदुः ।  
 ततोन्मनस्त्वं भवति न मृणोति न पश्यति ॥ ४९ ॥  
 न जिप्रति न स्पृशति न किञ्चिद्वा समीक्षते ।  
 गुह्योदरादिस्थानेषु वायुं नासां विचिन्तयेत् ॥ ५० ॥  
 ईशोऽहमिति योगीन्द्रः परानन्दैकविग्रहः ।  
 जरामरणनिमुक्तः शिव एव भवेन्मुनिः ॥ ५१ ॥  
 गमनागमनाभ्यां यो हीनो वै विषयोज्झितः ।  
 एकान्तरोन्मनीभावः समाधिरभिधीयते ॥ ५२ ॥  
 न बृहद्बस्तुनश्चिन्ता न सूक्ष्मस्यापि चिन्तनम् ।  
 न वहिर्नान्तरं पुत्र ब्रह्मग्रन्थिविभेदनम् ॥ ५३ ॥  
 न स्थूलं न कृशं वाऽपि न ह्रस्वं नापि लोपितम् ।  
 न शुकुं नापि वा पीतं न कृष्णं नापि कर्तुरम् ॥ ५४ ॥  
 कृत्वा हृत्पद्मनिलये विश्वाख्यं विश्वसंभवम् ।  
 आत्मानं सर्वभूतानां परंस्तात्तमसंस्थितम् ॥ ५५ ॥  
 सर्वस्याधारमव्यक्तमानन्दं ज्योतिरव्ययम् ।  
 मधानपुरुषातीतमाकाशं दहरं शिवम् ॥ ५६ ॥  
 तदन्तः सर्वभूतानामीश्वरं ब्रह्मरूपिणम् ।  
 ध्यायेदनादिर्मध्यान्तमानन्दादिगुणालयम् ॥ ५७ ॥  
 महान्तं पुरुषं ब्रह्म ब्रह्माणं ब्रह्म चाव्ययम् ।  
 ओंकारान्ते तथाऽऽत्मानं संस्थाप्य परमात्मनि ॥ ५८ ॥  
 आकाशे देवमीशानं ध्यायीताऽऽकाशमध्यगम् ।  
 कारणं सर्वभावानामानन्दैकरसाश्रयम् ॥ ५९ ॥  
 पुराणं पुरुषं शंभुं ध्यायेन्मुच्येत बन्धनात् ।  
 शिवभाक्तिं विना यस्तु संसारं तर्तुमिच्छति ॥ ६० ॥  
 मूढो यथा श्वलाङ्गुलीः समुद्रं तर्तुमिच्छति ।  
 तथा विना शंभुसंवां संसारत्वरणं न हि ॥ ६१ ॥

सर्वसौरुपप्रदः शंभुर्नान्या काचन देवता ।  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन महादेवं प्रपूजयेत् ॥ ६२ ॥  
 यद्वा गुहायां प्रकृतं जगत्संमोहनालये ।  
 विचिन्त्य परमं व्योम सर्वभूतैर्ककारणम् ॥ ६३ ॥  
 जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते ।  
 आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मं यत्पश्यन्ति मुमुक्षवः ॥ ६४ ॥  
 तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलं ज्ञानलक्षणम् ।  
 पातुं तिष्ठेन्महेशेन सोऽश्रुते योगमैश्वरम् ॥ ६५ ॥  
 नैकलक्षं द्विलक्षं वा त्रिलक्षं न नवात्मकम् ।  
 सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं समाधिरभिधीयते ॥ ६६ ॥  
 वाह्ये चाभ्यन्तरे पुत्र यत्र यत्र मनः क्षिपेत् ।  
 तत्र तत्राऽऽत्मनो रूपमानन्दमनुभूयते ॥ ६७ ॥  
 संस्थाप्य मयि चाऽऽत्मानं परं ज्योतिषि निर्गुणे ।  
 मुहूर्तं तिष्ठतः साक्षात्तस्य चानुभवो भवेत् ॥ ६८ ॥  
 सर्वज्ञः परिपूर्णश्च जरामरणवर्जितः ।  
 मत्प्रसादाद्भवेद्योगी नान्यथा क्रौञ्चसूदन ॥ ६९ ॥  
 तूस्मात्सर्वं परित्यज्य कर्मजातं सुदुष्करम् ।  
 मामेकं शरणं गच्छेदज्ञानं नाशयाम्यहम् ॥ ७० ॥  
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये च संकराः ।  
 मद्रक्तिभावनापूता यान्ति मत्परमं पदम् ॥ ७१ ॥  
 जगतः प्रलये प्राप्ते नष्टे च कमलोद्भवे ।  
 मद्रक्ता नैव नश्यन्ति स्वेच्छाविग्रहधारिणः ॥ ७२ ॥  
 योगिनां कामिणां चैव तापसानां यतात्मनाम् ।  
 अहमेव गतिस्तेषां नान्यदस्तीति निश्चयः ॥ ७३ ॥ ५४८ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे शिवस्कन्दसंवादे यमनिपम-  
 प्राणायामादिकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥  
**स्कन्द उवाच**—भूतकार्यमिदं देहमापद्रोगाकुलं परम् ।  
 विषयैः पीड्यते देव सुखदुःखात्मकैः सदा ॥ १ ॥  
 अभिभूतो यदा योगी दुःखैरध्यात्मसंभवैः ।  
 किमुपायं तदा तस्य पदा वै भौतिकस्य च ॥ २ ॥

ब्रह्माधिदैविकस्यापि योगसंसिद्धये प्रभो ।

यातना योपसर्गाणां प्रसादाद्योगिनां वद ॥ ३ ॥

**ईश्वर उवाच**—सात्त्विका राजसा विघ्नास्तामसास्त्विह योगिनाम् ।

योगत्रासकराः सर्वे भवन्ति भवतामपि ॥ ४ ॥

प्रातिभाश्रवणावार्तादर्शनास्वादवेदनाः ।

उपसर्गा भवन्त्येते सात्त्विकास्तु पदेव हि ॥ ५ ॥

दरिद्रोऽहमहं चाऽऽद्यः शूरोऽहं दुर्बलस्तथा ।

मूर्खोऽहं च सुविद्वान्श्च मूर्खोऽहमरूपवान् ॥ ६ ॥

दाताऽहं कृपणश्चाहं सुखी भोग्यहमेव च ।

अकुलीनः कुलीनश्च कण्ठकः कण्ठकोद्भिन्नतः ॥ ७ ॥

मदीयं सर्वमेतद्धि वस्त्वित्यादिप्रजल्पनम् ।

अहंकारमयं किञ्चिद्यत्तत्कृत्स्त्रं हि राजसम् ॥ ८ ॥

अन्धत्वं चैव बाधिर्यं पङ्क्तुत्वं दुष्टरोगता ।

शिरोरोगो ज्वरः शूलं यक्ष्ममूर्च्छाऽन्नमादयः ॥ ९ ॥

राजसास्तामसाः सर्वे तमोहंकारसंयुताः ।

व्याधयो मिश्रभावेन पीडयन्तीह दैहिनम् ॥ १० ॥

केवलं जाड्यभावेन मूढत्वं मोहनं तथा ।

अज्ञानत्वं च मूकत्वमित्याद्यास्तामसाः स्मृताः ॥ ११ ॥

गुह्यका यातुधानाश्च किंनरीरगराक्षसाः ।

देवदानवरौद्राश्च दैत्या मातरजा गणाः ॥ १२ ॥

तामसास्तु ग्रहा भूता वायुभूता नरं सदा ।

पीडयन्तीह विघ्ना हि योगाभ्यासरतं ग्रहैः ॥ १३ ॥

एवमाद्युपसर्गाणां वारणाय च धारणाम् ।

वक्ष्यामि विविधां वत्स योगिनां सिद्धिहेतवे ॥ १४ ॥

त्वगादिसप्रधानूनामेकीभूतं विचिन्तयेत् ।

प्रणवं कण्ठनासाग्रे सर्वाङ्गं वह्निदीपितम् ॥ १५ ॥

वारुणेषु च सर्वेषु उपसर्गेषु योगवित् ।

एतदेव चरेन्नित्यमुपसर्गोदयो ययुः ॥ १६ ॥

पित्तरोगाभिभूतो वा योगी योगपरायणः ।

ध्यानमेतत्प्रकुर्वीत तथाऽन्यच्छृणु पुत्रक ॥ १७ ॥

सृष्टं चोदुनांधस्य चाक्षरं तत्र चिन्तयेत् ।  
 सुधाभिलषितं ध्यायेत्स्वस्य मूर्ध्नि शिवात्मकम् ॥ १८ ॥  
 प्रविश्य ब्रह्मरन्ध्रेण देहं निर्वाणजं स्मरेत् ।  
 शीतलेन सुगन्धेन हृत्तत्त्वं चापि तेन वै ॥ १९ ॥  
 पैत्तिकाशोपसर्गाश्च भानुना तिमिरं पथां ।  
 विषज्वरजराद्याश्च नश्यन्त्यभ्यासतो भुवम् ॥ २० ॥  
 \*नोशयेदन्धतां योगी दिव्यदृष्टिः प्रजापते ।  
 उँत्स्नप्यापानमन्यं च चन्द्रदैवत्यया पिवेत् ॥ २१ ॥  
 पीत्वा पार्थिवतत्त्वेन स्तम्भं वायोर्विनाशयेत् ।  
 पुष्टिरेवानुला तस्य स्थिरत्वं रुजहीनता ॥ २२ ॥  
 हृत्तत्त्वं च सुपीताभममरत्वं तथा स्मरन् ।  
 श्रोत्रमाकाशवास्योश्च अत्रैकत्वं विचिन्तयेत् ॥ २३ ॥  
 मोचयेत्तं पुनर्वायुं वधिरत्वविनाशनम् ।  
 गृणोति दूरतः सर्वं श्रुतधारी भवेत्सदा ॥ २४ ॥  
 विषन्मयोऽथ संचारी सतताभ्यासयोगतः ।  
 सरोर्जं रसनाधीं च तद्दृष्टारं सकर्णिकम् ॥ २५ ॥  
 स्मृत्वा मध्ये पुनर्ध्यायेच्छुक्लवर्णां स्वरस्वतीम् ।  
 जडत्वं च शिरोरोगं मुखरोगान्विनाशयेत् ॥ २६ ॥  
 प्रज्ञा चैवं स्मृतिर्भेदा कवित्वं बुद्धिरुत्तमा ।  
 स्तम्भनं दृष्टसत्त्वानां सर्ववायुञ्जयेत्सदा ॥ २७ ॥  
 हृत्सरोजगतं देवमष्टादशभुजैर्युतम् ।  
 नीलारुणं महाकायं त्रिदशचन्द्रजटाधरम् ॥ २८ ॥  
 सिंहचर्माम्बरं भीमं सर्वाभरणभूषितम् ।  
 भुजङ्गहाराभरणं सर्पकङ्कणनूपुरम् ॥ २९ ॥  
 ज्वालामालाकुलं दीप्तं भाभासितदिगाननम् ।  
 अभेद्यं विजयं रौद्रमक्षोभ्यं त्रिदशेश्वरम् ॥ ३० ॥

\* नोशयेदन्धतामित्यादेः श्लोकात्पूर्वं कलगतसङ्गितेध्वेव पुस्तकेषु धोकार्थमिदं दृश्यते । तद्यथाऽ-  
 रष्टमात्रे तु तस्मिन्नेव मनेनोत्थापयेदक्षणात् ।

१ ( क. ख. ग. ) अन्धत्वं नाशयेयोगी । २ ( क. ख. ग. ) उँत्स्नप्यापा० । ३ ( क. ख. ग. )  
 ०योनिवारये० । ४ ( घ. ) ०त्र पु० । ५ ( क. ख. ग. ) ०त. शब्द भु० । ६ ( घ. ) ०त्र दृष्टि० ।  
 ७ ( घ. ङ. च. छ. ज. ) ०र नार स० । ८ ( छ. ) ०गभूषण० ।



कपालमालिनं चोग्रं भीमं दंष्ट्राकरालिनम् ।  
 अस्त्रैर्ध्वजकरं देवममौघैर्वह्निकारणैः ॥ ३१ ॥  
 स्मरणाद्यजनाच्चैव तैजसैर्विघ्ननाशनम् ।  
 शूलमुद्गरवज्रेषुदण्डकौमुकुशकल्पसि ॥ ३२ ॥  
 पश्चान्ते दक्षिणे भागेऽविनाशं परमेश्वरम् ।  
 परिघध्वजखट्वाङ्गैरङ्कुशं च धनुर्गदाम् ॥ ३३ ॥  
 ज्वालाननेन पाशेन वामभागेऽभयप्रदम् ।  
 अनेन ध्यानयोगेन सर्वविघ्नोन्निवारयेत् ॥ ३४ ॥  
 वशं नयेज्जगत्सर्धमापद्यपि महेश्वरः ।  
 सम्यग्दर्शनसंपन्नो नाभिभूयेत कर्मभिः ॥ ३५ ॥  
 योगविद्योगयुक्तात्मा परं निर्वाणमृच्छति ।  
 आदित्यमण्डलं पार्श्वे सौम्यं वै पावकं ततः ॥ ३६ ॥  
 आत्मनो हृद्गुहोवासं संचिन्त्यैवं महामुनिः ।  
 तत्र देवं परं शान्तं ध्यायेद्दीशं मुनिर्मलम् ॥ ३७ ॥  
 जगद्ध्याप्य स्थितं कृत्स्नं कालाकालविवर्जितम् ।  
 विषदेशे हृत्कुञ्जे वा योगी योगविदां वरः ॥ ३८ ॥  
 ईश्वरं चिन्तयेत्स्थाणुं ज्ञानमानन्दविग्रहम् ।  
 उभावपि स्थिरीकृत्य योगी मोक्षाय कल्पते ॥ ३९ ॥  
 बाह्ये चित्तं समारोप्य वाचोः परमकारपत् ।  
 ततो द्वाराणि संयम्य ब्रह्मरन्ध्रे लयं गतः ॥ ४० ॥  
 लक्षमाधाय तत्रैव योजयेत्प्रियं पणमुत्त ।  
 घृतं घृतेष्वेव यथा नियुक्तं प्रयाति चैक्यादविशेषभावम् ।  
 तथैव लीनो न भवेत्स भूयः परे चतुर्थे त्वनया च युक्त्या ॥ ४१ ॥ ५८९ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरि शिवस्वन्दसंवादे सात्त्विकराजस-  
 विघ्नादिकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥  
 \*मूल उवाच-व्रतानि संप्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ।  
 तत्र कृष्णाष्टमी पुण्या सर्वपापप्रणाशनी ॥ १ ॥

\* कव्यगत इतिपुस्तकेषु य एकादशोऽध्यायः स एतावत् सगृहीतः ।

१ ( क. ख. ग. घ. ङ ) षडशाम् २ ( क. ख. ग. ) षडशानाम् ३ ( घ. ङ. च. छ. ज. )  
 पशं सोम ४ ( क. ख. ग. घ. ङ. ) षष्ठे सोम वै ५ ( क. ख. ग. ) षडशाम् ६ ( क. ख.  
 ग. ) षष्ठं सर्वं काण्ड ७ ( क. ख. ग. ) षष्ठे वा ८ ( क. ख. ग. ) षष्ठे वा ९ ( क. ख.  
 ग. ) षष्ठा म्पु १०

कृष्णाष्टमीव्रतान्नान्यद्व्रतमस्ति विभूतिदम् ।  
 कृष्णाष्टमीव्रतं कृत्वा ब्रह्मा ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥ २ ॥  
 विष्णुत्वं प्राप्तवान्विष्णुः सुरेशत्वं शचीपतिः ।  
 कुबेरो यक्षराजत्वं निपन्वृत्त्वं यमः स्वपम् ॥ ३ ॥  
 चन्द्रश्चन्द्रत्वमापन्नो गणेशत्वं गणाधिपः ।  
 स्कन्दः सेनापतित्वं च तथा चान्ये गणेश्वराः ॥ ४ ॥  
 कृत्वा चैश्वर्यमापन्नाः सौभाग्यं देववल्लभाः ।  
 व्रतस्यास्य प्रभावेन लक्ष्म्याः पतिरभूद्धरिः ॥ ५ ॥  
 ययातिः सार्वभौमत्वं तथा चान्ये ऋषोत्तमाः ।  
 ऋषयो मुनयः सिद्धा गन्धर्वाणां च कन्यकाः ॥ ६ ॥  
 कृत्वा चैव परां सिद्धिं प्राप्ताश्च मुनिपुङ्गवाः ।  
 नन्दीश्वरेण यत्प्रोक्तं नारदाय महात्मने ॥ ७ ॥  
 कृष्णाष्टमीव्रतं श्रेष्ठं सर्वकामफलप्रदम् ।  
 भूरोर्षदक्षिणं शृङ्गं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ८ ॥  
 तत्र नन्दीश्वरं दृष्ट्वा सर्वज्ञं शंभुवल्लभम् ।  
 उपास्यमानं मुनिभिः स्तूयमानं मरुद्गणैः ॥ ९ ॥  
 सर्वानुग्रहकर्तारं स्तुत्वा तु विविधैः स्तवैः ।  
 अब्रवीत्प्रणिपत्याथ दण्डवन्नारदो मुनिः ॥ १० ॥

**नारद उवाच**—भगवन्सर्वतत्त्वज्ञ सर्वेषामभयप्रद ।  
 केन व्रतेन चीर्णेन तपोवृत्तिः प्रजायते ॥ ११ ॥  
 सौभाग्यं कान्तिमैश्वर्यमपत्यं च यशस्तथा ।  
 शाश्वतीं मुक्तिमन्ते च पशुपाशविमोचनीम् ॥ १२ ॥  
 भगवंस्तद्व्रतं ब्रूहि कारुण्याच्छंकरप्रियम् ।

**नन्दिकेश्वर उवाच**—कृष्णाष्टमीव्रतं श्रेष्ठमस्ति देवऋषे मृगु ।  
 गणेशत्वं मया लब्धं येन चीर्णेन नारद ॥ १३ ॥  
 मासे मार्गेशिरे मासे कृष्णाष्टम्यां जितेन्द्रिय ।  
 अश्वत्थदन्तकाष्ठेन कृत्वा वै दन्तधावनम् ॥ १४ ॥  
 स्नानं कृत्वा च विधिवत्तर्पणं चैव नारद ।  
 आगत्य भवनं पश्चात्पूजयेच्छंकर प्रभुम् ॥ १५ ॥  
 गोमूत्रं प्राश्य विधिवदुपवासी भवेन्निशि ।  
 अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं भवेत् ॥ १६ ॥

सर्पिषः प्राशनं-पौषे दन्तकाष्ठं च तत्स्मृतम् ।  
 पूजयेच्छंभुनामानं भगवन्तं महेश्वरम् ॥ १७ ॥  
 वाजपेयाष्टकफलं प्राप्नोति श्रद्धयाऽन्वितः ।  
 माघे वटस्य कथितं गोक्षीरं प्राशनं स्मृतम् ॥ १८ ॥  
 माहेश्वरं सुसंपूज्य गोमेघस्याष्टकं फलम् ।  
 फाल्गुने च तदेवोक्तं कार्यं वै प्राशनं च तत् ॥ १९ ॥  
 संपूजयेन्महादेवं राजसूयाष्टकं फलम् ।  
 काष्ठमौदुम्बरं चैत्रे प्राशने वर्जिता जनाः ॥ २० ॥  
 पूजयेत्स्थाणुनामानमश्वमेधफलं लभेत् ।  
 शिवं संपूज्य वैशाखे पीत्वा चैव कुशोदकम् ॥ २१ ॥  
 नरमेघाष्टकफलं प्राप्नोत्येव हि नारद ।  
 ज्येष्ठे प्लाक्षं भवेत्काष्ठं पूज्यः पशुपतिर्विभुः ॥ २२ ॥  
 गर्वां गृह्णोदकं प्राश्य स्वपेदेवस्य संनिधौ ।  
 गर्वां कौटिप्रदानस्य यत्पुण्यं तदवाप्नुषात् ॥ २३ ॥  
 आपाद्रे चोग्रनामानमिष्ट्वा प्राश्य च गोमयम् ।  
 सौत्रामण्यास्तु यज्ञस्य फलमष्टगुणं भवेत् ॥ २४ ॥  
 पालाशं श्रावणे प्रोक्तं शर्वं संपूज्य नारदे ।  
 प्राशयित्वाऽर्कपत्राणि कल्पं शिवपुरे वसेत् ॥ २५ ॥  
 मासे भाद्रपदेऽष्टम्यां त्र्यम्बकं संपूजयेत् ।  
 प्राशनं विल्वपत्रस्य सर्वदीक्षाफलं भवेत् ॥ २६ ॥  
 आश्विने जम्बुवृक्षस्य दन्तकाष्ठमुदीरितम् ।  
 ईश्वरं पूजयेद्भक्त्या प्राशयेत्तण्डुलोदकम् ॥ २७ ॥  
 पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् ।  
 मासे नु कार्तिकेऽष्टम्यामीशानाख्यं प्रपूजयेत् ॥ २८ ॥  
 पञ्चगव्यं सकृत्पीत्वा अग्निष्टोमफलं लभेत् ।  
 वर्षान्ते भोजयेद्विप्रांश्चिवभक्तिपरायणान् ॥ २९ ॥  
 पापसं मधुसंयुक्तं घृतेन सुपरिप्लुतम् ।  
 शक्त्या हिरण्यं वासांसि भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत् ॥ ३० ॥  
 देवाय दद्यादध्यन्नं वितानध्वजचामरम् ।  
 ऋणां पपस्विनीं गां च घण्टां कञ्चुक्वाससी ॥ ३१ ॥

सरत्नां ताम्रकलशीं गामलंकृत्य नारद ।

अलंकारं च वस्त्रं च दक्षिणां च स्वशक्तितः ॥ ३२ ॥

कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके महीयते ।

कृष्णाष्टमीव्रतं सम्पक्कप्राप्तं देवैः कृपे मया ॥ ३३ ॥

यदुक्तं देवदेवेन देव्यै विश्वसृजा पुरा ॥ ३४ ॥

**सूत उवाच-**एवं नन्दीश्वराच्छ्रुत्वा नारदो मुनिपुङ्गवाः ।

कृष्णाष्टमीव्रतं पुण्यं ययौ बदरिकाश्रमम् ॥ ३५ ॥

व्रतस्यास्य प्रभावं यः पठेद्वा शृणुयादपि ।

अतिसत्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ३६ ॥ ६२५ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे कृष्णाष्टमी-

व्रतं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

**सूत उवाच-**अन्यद्भूतं पापहरं देवदेवस्य चक्रिणः ।

यदुक्तं भानुना पूर्वं याज्ञवल्क्याय योगिने ॥ १ ॥

**याज्ञवल्क्य उवाच-**जया च विजया चैव किंफला किंपरायणा ।

तस्यां विशिष्टं यत्पुण्यं वद कश्यपनन्दन ॥ २ ॥

**सूर्य उवाच-**द्वादशी विष्णुदयिता द्वादशी वैष्णवी तिथिः ।

श्रवणेन समायुक्ता कदाचिच्चिदि लभ्यते ॥ ३ ॥

शुक्लपक्षे द्विजश्रेष्ठ विजया सा प्रकीर्तिता ।

उपोष्या सा प्रयत्नेन सर्वपापप्रणाशनी ॥ ४ ॥

या तु पुष्पेण संयुक्ता फाल्गुनस्य सिता तु वै ।

सा जया द्वादशी नाम सर्वपापक्षयंकरी ॥ ५ ॥

क्रतार्थो जायते मर्त्यस्तामुपोष्य द्विजोत्तम ।

तस्यां स्नातः सदा स्नातो भवेद्द्वै नात्र संशयः ॥ ६ ॥

संपूज्य वस्त्रपुष्पाद्यैः फलं साग्रं समश्नुते ।

एकं जप्त्वा सहस्रस्य जप्तस्याऽऽप्नोति वै फलम् ॥ ७ ॥

दानं सहस्रगुणितं तथा वै विप्रभोजनम् ।

होमश्चैवोपवासश्च सहस्रस्य फलप्रदः ॥ ८ ॥

ऋचमेकामधीति यो विमः श्रद्धासमन्वितः ।

ऋग्वेदस्य समग्रस्य सदैव फलमश्नुते ॥ ९ ॥

सप्तजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।  
 तन्नाशयति गोविन्दस्तस्यामभ्यर्च्य यत्नतः ॥ १० ॥  
 यश्चोपवासं कुरुते तस्यां स्नातो द्विजोत्तम ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ११ ॥  
 यः कृत्वा द्वादशीभिर्मां क्षपयेद्भक्तिमानवरः ।  
 ब्रह्मणो दिवसं यावत्तावत्स्वर्गे महीयते ॥ १२ ॥  
 तस्मिन्दिने तु संप्राप्ते यत्कर्तव्यं ब्रवीम्यहम् ।  
 एकादश्यां निराहारो द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत् ॥ १३ ॥  
 गन्धपुष्पोपहारैश्च विविधैर्विधिवन्नरः ।  
 मत्स्याय पादौ प्रथमं कूर्माय च तथा कटिम् ॥ १४ ॥  
 वराहायेति जठरं नरसिंहाय वा उरः ।  
 वामनायेति वैकुण्ठं भुजं रामद्वयेति च ॥ १५ ॥  
 यजेद्रामेति च सुखं प्रच्युन्नायेति नासिकाम् ।  
 कृष्णनाम्ना च नेत्रे द्वे बुद्धनामा तथा शिरः ॥ १६ ॥  
 कल्किनामा तथा केशान्नामनेति च सर्वतः ।  
 भक्त्या चाऽऽराध्य गोविन्दं गोमूलं च तथा निशि ॥ १७ ॥  
 ततस्तस्याग्रतः शुद्धं न्यसेत्कृष्णाजिनं नुधः ।  
 तस्योपरि तिलानां तु कृष्णानामाढकं न्यसेत् ॥ १८ ॥  
 मध्यतः प्रस्थमेकं तु दक्षिणः क्रुद्धं तथा ।  
 तिलालाभे यवाः कार्या गोधूमास्तदलाभतः ॥ १९ ॥  
 सुखं तत्र फलं ब्रह्मांस्तिलैः प्राप्नोति मानवः ।  
 सौवर्णं रौप्यपात्रं वा पात्रं कुर्यात्स्वशक्तितः ॥ २० ॥  
 प्रच्छाद्य पात्रं वासाभिरहर्तैः सृपरीक्षितैः ।  
 सौवर्णं वामनं कृत्वा साक्षसूत्रकमण्डलुम् ॥ २१ ॥  
 यथाशक्त्या कृतं ह्रस्वं कृतपद्मोपवीतिनम् ।  
 एवंरूपं तु तं कृत्वा वामनं भक्तिमानवरः ॥ २२ ॥  
 स्थापयेत्तन्तुपात्रस्थं भक्त्या सम्यगुपोषितः ।  
 पुष्पैर्गन्धैः फलेर्घृणैः कालोत्पैरर्चयेद्दरिम् ॥ २३ ॥

पूर्वोक्तमन्त्रविधिना भक्ष्यैर्भोज्यैश्च भक्तितः ।  
 मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः ॥ २४ ॥  
 रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश ।  
 एतैर्मन्त्रपदैर्देवं नैवेद्यैश्च प्रपूजयेत् ॥ २५ ॥  
 भक्तस्यात्र विशेषेण फलं कोटिगुणोत्तरम् ।  
 ततस्तस्य समीपे तु दधिभक्तं घटे न्यसेत् ॥ २६ ॥  
 करकं वारिपूर्णं च सुगन्धद्रव्यसंगुतम् ।  
 छत्रं चैवाक्षसूत्रं च पादुके गुडिकां तथा ॥ २७ ॥  
 एवं संपूज्य विधिवद्देवदेवं जनार्दनम् ।  
 जागरं तत्र कुर्वीत गीतवादित्रनादितैः ॥ २८ ॥  
 एवं सर्वरजन्यन्ते प्रभाते विमले सति ।  
 प्रदेयं शास्त्रविदुषे ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ २९ ॥  
 विष्णुभक्ताय शान्ताय विशेषेण प्रदीपते ।  
 गुरौ च सति नान्यस्मै दातव्यमिति निश्चितम् ॥ ३० ॥  
 वेदाध्येत्रे समं दानं द्विगुणं तद्विदे तथा ।  
 आचार्ये दानमेकं च सहस्रगुणितं तथा ॥ ३१ ॥  
 गुरौ सति ततोऽन्यस्य व्रतं यश्च निवेदयेत् ।  
 स दुर्गतिमवाप्नोति दत्तं भवति निष्फलम् ॥ ३२ ॥  
 अविद्यो वा सविद्यो वा गुरुरेव जनार्दनः ।  
 मार्गस्थो वा विमार्गस्थो गुरुरेव सदा गतिः ॥ ३३ ॥  
 प्रतिपन्नं शुरुं यैश्च मोहाद्विप्रतिपद्यते ।  
 स जन्ममोहोऽस्ति नरके पच्यते पुराणधमः ॥ ३४ ॥  
 एवं दत्त्वा विधानेन ब्राह्मणाय च भक्तितः ।  
 मन्त्रेणानेन दातव्यं पुराणपठितेन च ॥ ३५ ॥  
 मन्त्रेण प्रतिशुक्लीयाद्ब्राह्मणश्च द्विजोत्तम ।  
 वामनो बुद्धिदो दाता द्रव्यस्थो वामनः स्वयम् ॥ ३६ ॥  
 वामनोऽस्य प्रदाता वै वामनाय नमो नमः ॥ इति दानमन्त्रः ।  
 वामनः प्रतिशुक्लति वामनो मे ददाति च ।  
 वामनस्तारको द्वाभ्यां वामनाय नमो नमः ॥ ३७ ॥ इति प्रतिग्रहमन्त्रः ॥

१ ( क. ख. ग. ) ०ध शक्ति ० २ ( क. ख. ग. ) भक्तिधाम । ३ ( घ. ङ. च. छ. ज. )  
 सपूज्यविधिना देव देव ० ४ ( क. ख. ग. ) प्रदापयेत् । ५ ( क. ल. ग. ) यस्तु मो ० ६ ( घ. ङ.  
 च. छ. ज. ) ०मोऽस्तु ते ।

अन्नं मजापतिविष्णुरुद्रेन्द्रशशिभास्कराः ।

अग्निर्वापुष्यमश्वैव पापं हरतु मे सदा ॥ ३८ ॥ इत्यन्नदानमन्त्रः ।

पर्जन्यो वरुणः सूर्यः सलिलं केशवः शिवः ।

त्वष्टा यमो वैश्रवणः पापं हरतु मे सदा ॥ ३९ ॥ इतिसलिलदानमन्त्रः ।

विप्राणां भोजनं दत्त्वा यथाशक्त्यथ दक्षिणाम् ।

पृषदाज्यं च संप्राश्य पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः ॥ ४० ॥

भूयो यथेच्छया रात्रौ सर्वत्रैष विधिः स्मृतः ।

समापिते व्रते तस्मिन्ब्रह्मऋणु च यत्फलम् ॥ ४१ ॥

ब्रह्मणः प्रलयं यावत्तावत्स्वर्गे महीयते ।

ब्रह्मलोकादिलोकेषु भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥ ४२ ॥

पुनः स्वर्गाद्भुवं प्राप्य जायते महतां कुले ।

सप्तद्वीपाधिपत्यं च प्राप्नुयात्त्र संशयः ॥ ४३ ॥

सर्वान्कामानवाप्नोति ततो मुक्तिं च गच्छति ।

इन्द्रस्यावरजो देवो रमाहृदयनन्दनः ॥ ४४ ॥

बलिवर्द्धस्त्वया देव गृहाणाध्वं तु वामन ॥ इत्यध्वमन्त्रः ।

इतीदं ऋणुयान्नित्यं पठेद्धतमनुत्तमम् ।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यः श्रवणद्वादशीफलात् ॥ ४५ ॥ ६७० ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतयाज्ञवल्क्यसंवादे श्रवण-

द्वादशीव्रतकथनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

**मूल उवाच**—अन्यद्दत्तमिदं वक्ष्ये ऋणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ।

सौभाग्यवर्धनं पुण्यं महापातकनाशनम् ॥ १ ॥

सर्वदुष्टोपशमनं सर्वैश्वर्यप्रदं शिवम् ।

यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः ॥ २ ॥

पुरा देवेन रुद्रेण दग्धः कामो दुरासदः ।

उपोषिता तिथिस्तेन तेनानङ्गत्रयोदशी ॥ ३ ॥

शुकुपक्षे त्रयोदश्यां मासि मार्गशिरे द्विजाः ।

स्नानं कृत्वाऽथ विधिना सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥

भक्त्या त्वनन्यया देवं पूजयेच्छशिरोरम् ।

पुण्यैर्नानाविधैर्भूषैर्नैवेद्यैश्च फलैस्तथा ॥ ५ ॥

शंभुनाम्ना तिलैर्होमं कुर्यादष्टोत्तरं शतम् ।  
 अनङ्गनाम्ना संपूज्य मधु प्राश्य स्वपेन्निशि ॥ ६ ॥  
 दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ।  
 योगेश्वरं सुसंपूज्य पीपे प्राश्रीति चन्दनम् ॥ ७ ॥  
 राजसूयस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः ।  
 नाटेश्वरं सुसंपूज्य माघमासे जितेन्द्रियः ॥ ८ ॥  
 मौक्तिकं प्राश्य विभेन्द्राः फलं तस्य वदाम्यहम् ।  
 बहुस्वर्णस्य यज्ञस्य फलं शतगुणं भवेत् ॥ ९ ॥  
 संपूज्य फाल्गुने वीरं कङ्कोलं प्राशयेन्निशि ।  
 गोमेधस्य फलं प्राप्य मोदते देवराडिव ॥ १० ॥  
 सुहृपं नाम वै चैत्रे चित्ररत्नविनिर्मितम् ।  
 कर्पूरं प्राशयेद्ब्राह्मणैः नरमेधफलं लभेत् ॥ ११ ॥  
 वैशाखे च महाहृपं देवेशं च प्रपूजयेत् ।  
 जातीफलं च संप्राश्य गोसहस्रफलं लभेत् ॥ १२ ॥  
 ज्येष्ठे प्रद्युम्ननामानं लवङ्गं प्राशयेन्निशि ।  
 वाजपेयस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणोत्तरम् ॥ १३ ॥  
 उमाभक्तैः तितागानमापाढे संप्रपूजयेत् ।  
 तिलोदकं तु संप्राश्य पुण्डरीकफलं लभेत् ॥ १४ ॥  
 पूजयेच्छ्रावणे शूलपाणिनं परमेश्वरम् ।  
 प्राशयेद्दन्धतोयं तु अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ १५ ॥  
 मासे भाद्रपदे विद्याः सद्योजातं प्रपूजयेत् ।  
 अग्रहं प्राशयित्वा तु सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ १६ ॥  
 मासे चाऽऽश्वयुजे प्राप्ते त्रिदशाधिपतिं यजेत् ।  
 स्वर्णोदकं तु संप्राश्य स्वर्णकोटिफलं लभेत् ॥ १७ ॥  
 विश्वेश्वरं च कार्तिक्यां पूजयेद्भक्तिसंयुतः ।  
 मदनस्य फलं प्राश्य कामवद्द्युतिमान्भवेत् ॥ १८ ॥  
 प्रतिमासं प्रवक्ष्यामि दन्तकाष्ठानि वै द्विजाः ।  
 मल्लिका स्वादिरं चैव प्लक्षापामार्गजं तथा ॥ १९ ॥  
 जम्बूदुम्बरजाश्वत्थं मालती वटजं तथा ।  
 कादम्बं च तथा प्लाक्षं दूर्वा चैव शिरीषजम् ॥ २० ॥



विमाः शृणुत पुष्पाणि नैवेद्यानि तथैव च ।  
 मालत्याः प्रथमं तावत्ततो मरुत्वकं तथा ॥ २१ ॥  
 करवीरं तथा कुन्दमर्कपत्राणि सुव्रताः ।  
 ततो मन्दारपुष्पाणि मल्लिकाकुमुमानि च ॥ २२ ॥  
 फादम्बं घृधिकापुष्पं धत्तूरं शतपत्रकम् ।  
 दूर्वाङ्कुराणि देयानि नैवेद्यानि यथाक्रमम् ॥ २३ ॥  
 ओदनं कृशरं चैव शर्करामोदकास्तथा ।  
 कंसारं यावकास्तत्र ततः सोर्हालिका भवेत् ॥ २४ ॥  
 पञ्चस्वाद्यं परं प्रोक्तं घृतपूरमनन्तरम् ।  
 शालिमक्तेन नैवेद्यं गुणकास्तदनन्तरम् ॥ २५ ॥  
 नानाविधान्नं नैवेद्यं कार्तिक्यां परिकल्पयेत् ।  
 पूजानामानि वक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ॥ २६ ॥  
 शंकराय नमः पादौ गौर्यै गुल्फे शिवाय च ।  
 शिवायै जानुनी पूज्य शंभवायाद्भवाय च ॥ २७ ॥  
 कटिं मन्मथनाशाय मदनायै सुरेश्वरे । ?  
 नाभिं भवाय संपूज्य भवान्यै नम इत्युमाम् ॥ २८ ॥  
 वक्षो देवाधिदेवाय अर्ण्यायै नमः शिवाम् ।  
 स्तनौ विभेश्वरायैति सुरकान्त्यै नमो नमः ॥ २९ ॥  
 कण्ठं भीमोग्ररूपाय गिरिजायै नमः शिवाम् ।  
 स्कन्धं त्रिदशबन्धाय त्रिशूलिन्यै नमः शिवाम् ॥ ३० ॥  
 बाहू धूर्जटपेत्युक्त्वा धूसरायै नमः शिवाम् ।  
 इस्तौ शूलधरायैति शूलिन्यै नम इत्युमाम् । ३१ ॥  
 मुखं देवस्य संपूज्य वामदेवेति वामतः ।  
 वामायै नम इत्युक्त्वा नासां चैव कपालिने ॥ ३२ ॥  
 मूढान्यै नम इत्युक्त्वा ललाटं चेन्दुधारिणे ।  
 अलकायै नमः पञ्चाशिनेत्राय नमस्तथा ॥ ३३ ॥  
 त्र्यक्ष्यै संपूजयेद्देवीं शिरोगङ्गाधराय च ।  
 कात्यायनीं ततः पूज्य व्योमकेशाय वै नमः ॥ ३४ ॥  
 केशान्संपूज्य विधिवत्केशिन्यै च नमो नमः ।  
 एवं संवत्सरे पूर्णे सौवर्णे कारयेच्छिवम् ॥ ३५ ॥

ताम्रपात्रे तु संस्थाप्य कलशोपरि विन्यसेत् ।

शुक्लवस्त्रेण संछाद्य संपूज्य विधिवद्विजाः ॥ ३६ ॥

आचार्यापाथ तं दद्याद्विचाराभ्यविवाजितः ।

कलशाः सोदका देवा ब्राह्मणभ्यः सदक्षिणाः ॥ ३७ ॥

ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या शिवभक्तिपरायणान् ।

एवं करोति यो विप्रा भक्त्याऽनङ्गुत्रयोदशीम् ॥ ३८ ॥

प्राप्नोति राज्यं सौभाग्यं पुत्रांश्च चिरजीविनः ।

शिवलोकं च संप्राप्य शंभोः प्रियतमो भवेत् ॥ ३९ ॥ ७०९ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादेऽनङ्गुत्रयोदशी-

व्रतकथनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

\*ऋषय ऊचुः—यदुक्तं भवता सूत नैष्कलं ज्ञानमुत्तमम् ।

श्रुतं चाखिलमस्माभिर्मनांसि हृषितानि नः ॥ १ ॥

भक्तिश्च शाश्वते शंभौ जाताऽस्माकं हि शाश्वती ।

वर्णाश्रमाचारविधिमिदानीं ब्रूहि तत्त्वतः ॥ २ ॥

सूत उवाच—चतुर्णामपि वर्णानां विधिं वक्ष्यामि सुव्रताः ।

यदुक्तं भानुना पूर्वं मनवे परमेष्ठिने ॥ ३ ॥

येन विश्वेश्वरः शंभुः कर्मयोगरतैः सदा ।

आराध्यते न चान्येन इत्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥ ४ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यश्चतुर्थः शूद्र उच्यते ।

वर्णाश्चत्वार एवैते त्रय आद्या द्विजाः स्मृताः ॥ ५ ॥

ग्रहरथो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थो पतिस्तथा ।

चत्वारश्चाऽऽश्रमास्तेषां पञ्चमो नोपपद्यते ॥ ६ ॥

सर्वेषामाश्रमाणां च विहितं दण्डधारणम् ।

न दण्डेन विना कश्चिदाश्रमीति निगद्यते ॥ ७ ॥

ब्रह्मचारी भवेद्दण्डी कृष्णाजिनधरस्तथा ।

मेखली च तथा मुण्डी शिखी वा यदि वा जटी ॥ ८ ॥

भिक्षाहारेण सततं वर्तने तस्य सुव्रताः ।

अग्निकार्यं तथा कुर्यात्सायं प्रातर्यथाविधि ॥ ९ ॥

\* अयमेव पञ्चदशाध्यायः क्लृप्तसंशितपुस्तकेष्वष्टादशः ।

अभिकायपरित्यागी पतितः सर्वकर्मसु ।  
 स्नात्वा संतर्प्य देवादीन्देवताभ्यर्चनं ततः ॥ १० ॥  
 अभिवादनशीलः स्पादृद्धेषु च यथाक्रमम् ।  
 कृतेऽभिवादाने कुर्यान्नैव भूत्पभिवादनम् ॥ ११ ॥  
 करोति नाभिवाद्योऽसौ यथा शूद्रस्तथैव सः ।  
 आध्यात्मिकं वैदिकं वा तथा लौकिकमेव वा ॥ १२ ॥  
 आददीत गुरोर्यस्मात्तं पूर्वमभिवादयेत् ।  
 असावहमिति ब्रूयात्भूत्पुत्र्याय यवीयसः ॥ १३ ॥  
 नाभिवाद्यास्तु विभेण क्षत्रियाद्याः कथंचन ।  
 शिष्टानां च गृहान्नित्यं भिक्षामाहस्य सुव्रतः ॥ १४ ॥  
 निवेद्य गुरुवेऽश्रीयाद्वाग्यतस्तदनुज्ञया ।  
 भेक्षेण वर्तनं नित्यं नैकात्रादी व्रती भवेत् ॥ १५ ॥  
 उपवाससमा भिक्षा प्रोक्ता वै ब्रह्मचारिणाम् ।  
 अनारोग्यमनापुष्पमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ॥ १६ ॥  
 अपुष्पं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।  
 प्राङ्मुखोऽन्नादि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा ॥ १७ ॥  
 नाद्यादुदङ्मुखो नित्यं विधिरेप सनातनः ।  
 पादौ प्रक्षाल्य विधिवदाचम्य प्रयतो द्विजः ॥ १८ ॥  
 भुञ्जीत मौनी सततं स्मरेद्देवं सदाशिवम् ।  
 सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी चाऽऽचमेद्बुधः ॥ १९ ॥  
 न चैव वर्षघाराभिर्न तिष्ठन्ग्रहपन्न च ।  
 प्राश्रीपात्रिरपः पूर्वं ब्राह्मेण प्रयतो द्विजः ॥ २० ॥  
 संवृताङ्गुष्ठमूलेन मुखं चैवमुपस्पृशेत् ।  
 अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च संस्पृशेन्नयनद्वयम् ॥ २१ ॥  
 अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां च संस्पृशेन्नासिकापुटे ।  
 कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेच्छ्रोत्रयुगं द्विजः ॥ २२ ॥  
 सर्वाभिरङ्गुलीभिश्च हृदयं च तलेन वा ।  
 संस्पृशेद्भ्रै शिरस्त्वद्दङ्गुष्ठेनाथवा द्वयम् ॥ २३ ॥

\* भिक्षामाहृत्यादि वर्तनं निशमित्यन्तं क्लृप्तसङ्कितयोः पुस्तकयोर्नस्ति ।

विन्यस्य दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः ।  
 दिवा मूत्रपुरीषे च शर्वयां दक्षिणामुखः ॥ २४ ॥  
 आच्छाद्य पर्णैर्वसुधां वृणैर्वा मौनसंयुतः ।  
 शिरः प्रावृत्त्य विभेन्द्रा नान्यथा च कदाचन ॥ २५ ॥  
 पथि गोष्ठे नदीतीरे छायायां कूपसंनिधौ ।  
 तुषाङ्गारकपालेषु न क्षेत्रे न चतुष्पथे ॥ २६ ॥  
 नोद्याने न श्मशाने च न पश्यंस्तारकादिकान् ।  
 न चैवाभिमुखः स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम् ॥ २७ ॥  
 शौचं पश्चात्पकुर्वीत गन्धलेपक्षयावधि ।  
 आन्तरं मनसः शुद्धिर्यथा भवति तद्विजाः ॥ २८ ॥  
 \*जितेन्द्रियः स्यात्सततं वश्यात्माऽक्रोधनः शुचिः ।  
 प्रयुञ्जीत सदा वाचं मधुरां हितभाषिणीम् ॥ २९ ॥  
 परोपघातं पैशुन्यं कौमं लोभं तथैव च ।  
 द्यूतं जनपरीवादं स्त्रीक्ष्वेल्यालम्भनं तथा ॥ ३० ॥  
 गन्धमालयं रसं छत्रं वर्जयेदन्तधावनम् ।  
 सर्वं पर्युषितं वज्यं कृतं च लवणं तथा ॥ ३१ ॥  
 मलापकर्षणं स्नानं शूद्राद्यैरभिभाषणम् ।  
 गुरोरवज्ञां सततं ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥ ३२ ॥  
 उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकां कुञ्जान् ।  
 गुर्वर्धमाहरेन्नित्यं भैक्षं चाहरहश्चरेत् ॥ ३३ ॥  
 आचम्य संयतो नित्यमधीयीत ह्युदङ्मुखः ।  
 जपसंग्रह्य तत्प्रादौ वीक्षणाय गुरोर्मुखम् ॥ ३४ ॥  
 सर्वेषामेव भूतानां वेदश्चक्षुः सनातनम् ।  
 वेदः श्रेयस्करः पुंसां नान्य इत्यब्रवीद्विद्विः ॥ ३५ ॥  
 अनधीत्य द्विजो यस्तु शास्त्राणि सुबहून्पपि ।  
 शृणोति ब्राह्मणो नासौ नरकाणि प्रपद्यते ॥ ३६ ॥

\* छत्रादिपुस्तकेऽप्य धोत्रे न विद्यते

२ ( घ. ) ०वे तु ३० २ ( ग. ) न रात्री ष ३० ३ ( ग. ) ०क्षय बहिः । आ० ४ ( ड. )  
 ०पुञ्जानः स० ५ ( घ. ट. घ. छ. ज. ) वान्यं लो० ६ ( क. ख. ग. ज. ) रात्रेक्षाल० ७ ( ग. ) ०  
 द्विजाः ॥ ३० ॥ ८ ( घ. छ. घ. छ. ज. ) ०ती तथा । गु० ९ ( क. ग. घ. ट. च. छ. ) भैक्ष  
 पा० १० ( क. ख. ग. ) ०तनः १०

नाधीतविद्यो यो विप्र आचारेषु प्रवर्तते ।  
 नाऽऽचारफलमाप्नोति यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ ३७ ॥  
 नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्चान्यत्कर्म वैदिकम् ।  
 अनधीतस्य विप्रस्य सर्वं भवति निष्फलम् ॥ ३८ ॥  
 अनधीतस्य विप्रस्य पुत्रो वाऽध्ययनान्वितः ।  
 शूद्रपुत्रः स विज्ञेयो न वेदफलमश्नुते ॥ ३९ ॥  
 वेदं वेदौ तथा वेदान्वेदांश्च चतुरो द्विजाः ।  
 अधीत्य गुरुवे दत्त्वा दक्षिणां च भवेद्गृही ॥ ४० ॥  
 रूपलक्षणसंपुक्तां कन्यामुद्वाहयेत्ततः ।  
 अमातृगोत्रप्रभवामसमानार्पगोत्रजाम् ॥ ४१ ॥  
 मातृतः पञ्चमादूर्ध्वं पितृतः सप्तमात्तथा ।  
 अगोत्रकुलसंपन्नां रोगहीनां सुहृदिपिणीम् ॥ ४२ ॥  
 मातृतः पञ्चमादर्वाक्पितृतः सप्तमात्तथा ।  
 कन्यां विवाहयेद्यस्तु गुरुतल्पी भवेद्धि सः ॥ ४३ ॥  
 ब्राह्मेणैव विवाहेन दैवेनापि तथैव च ।  
 आर्पं वै केचिदिच्छन्ति धर्मकार्येषु गृहीतम् ॥ ४४ ॥  
 धारयेद्वैणवीं यष्टिमन्तर्वासस्तथोत्तरम् ।  
 यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम् ॥ ४५ ॥  
 छत्रं चोष्णीपममलं पादुके वाप्युपानहौ ।  
 रौकमे च कुण्डले नित्यं कृत्तकेशनखः शुचिः ॥ ४६ ॥  
 शुक्लाम्बरधरो नित्यं सुगन्धः प्रियदर्शनः ।  
 न जीर्णमलवद्वासा भवेद्वै विभवे सति ॥ ४७ ॥  
 ऋतुगामी भवेद्विप्रो निषिद्धतिथिवर्जितः ।  
 पञ्चचष्टम्यौ पञ्चदशीममावास्यां चतुर्दशीम् ॥ ४८ ॥  
 ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं जन्मर्क्षे च विशेषतः ।  
 आददीताऽऽवसथ्याग्निं जुहुयाज्जातवेदसम् ॥ ४९ ॥  
 वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।  
 अकुर्वाणः पतत्याशु निरयानतिभीषणान् ॥ ५० ॥  
 कुर्याद्गृहाणि कर्माणि संध्योपासनमेव च ।  
 सख्यं सामाधिकैः कुर्यादुपेयादीश्वरं सदा ॥ ५१ ॥

पापं न गृहयेद्विद्वान्न धर्मं ख्यापयेत्कचित् ।  
 वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ॥ ५२ ॥  
 वेपवान्बुद्धिसादृश्यमौचरन्विचरेत्सदा ।  
 श्रुतिस्मृत्युदितः सम्पक्खाधुर्मिर्यश्च सेवितः ॥ ५३ ॥  
 तमाचारं निषेवेत साधून्वक्ष्यामि सांप्रतम् ।  
 गङ्गापमुनयोर्मध्ये मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ ५४ ॥  
 तत्रोत्पन्ना द्विजां ये वै साधवस्ते प्रकीर्तिताः ।  
 यस्तैरनुष्ठितो धर्मः श्रुतिस्मृत्योश्च संगतः ॥ ५५ ॥  
 सदाचारः स वै प्रोक्तो देवदेवेर्न शंभुना ।  
 कुरुक्षेत्राश्च मत्स्याश्च पाञ्चालाः शूरसेनजाः ॥ ५६ ॥  
 एते देशाः पुण्यदेशाः सर्वे चान्ये च निन्दिताः ।  
 देशेष्वेतेषु निवसेद्ब्राह्मणैर्धर्मकाङ्क्षिभिः ॥ ५७ ॥  
 अत्रैव दृश्यते धर्मो नान्यत्रेत्यन्नवीद्विभिः ।  
 अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च सौराष्ट्रं गुर्जरं तथा ॥ ५८ ॥  
 आभीरं कौड्वणं चैव द्राविडं दक्षिणापथम् ।  
 अन्धं च मागधं चैव देशानेतांश्च वर्जयेत् ॥ ५९ ॥  
 नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यात्पञ्चपन्नपरायणः ।  
 शान्तो दान्तो जितक्रोधो लोभमोहदिवर्जितः ॥ ६० ॥  
 सावित्रीजाप्यनिरतः शिवभक्तिपरायणः ।  
 श्राद्धकृद्दाननिरतः क्षमायुक्तो दयालुकः ॥ ६१ ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां साक्षी यः सर्वकर्मणाम् ।  
 स्मरणान्मोक्षदः शंभुस्तस्य निन्दां विवर्जयेत् ॥ २ ॥  
 शास्त्रेषु दृश्यते शुद्धिर्महापातकिनामपि ।  
 निन्दकानां महेशस्य शुद्धिर्न खलु दृश्यते ॥ ३ ॥  
 जलं वृणं वा शाकं वा मृदं वा काष्ठमेव वा ।  
 परस्यापहरञ्जन्तुं नरकं प्रतिपद्यते ॥ ४ ॥  
 नित्ययाचनको न स्याद्याचितं नैव याचयेत् ।  
 प्राणानपहरत्येव याचकस्तस्य दुर्मतिः ॥ ५ ॥  
 ग्रहीतव्यानि पुष्पाणि देवाचनविधौ द्विजैः ।  
 नैकस्मादेव नियत्तमननुज्ञाय केवलम् ॥ ६ ॥  
 वृणं काष्ठं फलं पुष्पं प्रकाशं वै हरेद्बुधः ।  
 धर्मार्थं केवलं विप्रो ह्यन्यथा पतितो भवेत् ॥ ७ ॥  
 तिलमुद्गरवादीनां मुष्टिग्रोह्या यदि स्थितैः ।  
 शुधार्तेनान्यदा विभैर्धर्मविद्भिरिति स्थितिः ॥ ८ ॥  
 अमृतात्पारदायाञ्च तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणात् ।  
 अश्रौतधर्मचरण्यात्क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् ॥ ९ ॥  
 ज्ञानवृद्धस्तपोवृद्धो वयोवृद्ध इति त्रयः ।  
 पूर्वः पूर्वोऽभिवाद्यः स्यात्पूर्वाभावे परः परः ॥ १० ॥  
 त्रिपुण्ड्रधारी सततं ब्राह्मणः सर्वकर्मसु ।  
 भस्मनैवाग्निहोत्रस्य शिवाग्निजनितेन वा ॥ ११ ॥  
 न मूर्खैः सह संवासः पतितैर्न कदाचन ।  
 वेदनिन्दारतैर्नैव न चापीश्वरनिन्दकैः ॥ १२ ॥  
 पैशुन्यं शृण्वकैराणि विवादं वर्जयेत्सदा ।  
 धयन्तीं गां परक्षेत्रे न चाऽऽचक्षीत कस्यचित् ॥ १३ ॥  
 बहुभिर्न विरोधं च कुर्यान्न कृतिभिस्तथा ।  
 तिथिं पक्षस्य न ब्रूयान्नेक्षत्राणि न निर्दिशेत् ॥ १४ ॥  
 न पापं पापिनां ब्रूयात्तथाऽपापमपापिनाम् ।  
 सत्येन तुल्यदोषी स्यादसत्येन द्विदोषभाक् ॥ १५ ॥

यानि मिथ्याऽभिज्ञस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदनात् ।  
 तानि पुत्रान्पशून्घ्नन्ति तेषां मिथ्याऽभिज्ञंसिनाम् ॥ १६ ॥  
 ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।  
 दृष्टं विरोधनं वृद्धैर्नास्ति मिथ्याभिज्ञंसिनि ॥ १७ ॥  
 मानं मदं तथा शोकं द्वेषं च परिवर्जयेत् ।  
 \*रविवारे न कुर्वीत भृष्टभैरवभक्षणम् ॥ १८ ॥  
 धनकामो जनः सत्यं नात्र कार्या विचारणा ।  
 रविवारे तु लवणं वर्ज्यं भोजनपात्रके ॥ १९ ॥  
 तथा तैलोपमदं च धनकामेन भूतले ।  
 न कुर्यात्कस्यचित्पीडां सुतं शिष्यं च ताडयेत् ॥ २० ॥  
 न नदीषु नदीं ब्रूयात्पर्वतेषु च पर्वतम् ।  
 प्रवासे भोजने चापि न त्यजेत्सहयायिनम् ॥ २१ ॥  
 शिरोभ्यङ्गावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत् ।  
 नृं सर्पशस्त्रैः क्रीडेत् स्वानि खानि न संपृशेत् ॥ २२ ॥  
 न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ।  
 न लौकिकैः स्तवैर्देवांस्तोपयेद्ब्राह्मणैरपि ॥ २३ ॥  
 न दन्तैर्नखरोमाणि चिच्छन्द्यात्सुप्तं न बोधयेत् ।  
 न बालातपमासेवेत्प्रेतधूमं विवर्जयेत् ॥ २३ ॥  
 नाशुद्धोऽग्निं परिचरेन्न श्वेवान्कीर्तयेदपीन् ।  
 न वामहस्तेनोद्धृत्य पिवेद्वक्त्रेण वा जलम् ॥ २५ ॥  
 करेणैकेन यद्गारि पीतं तन्मदिरासमम् ।  
 विश्वेश्वरमुमाकान्तं विश्वान्तर्यामिणं विभुम् ॥ २६ ॥  
 न ब्रह्माद्यैः समं ब्रूयाच्छक्तिभिर्न च पार्वतीम् ।  
 ब्रूयाद्यदि समं शंभुं ब्रह्मविष्ण्वादिभिः सुरैः ॥ २७ ॥  
 यः कश्चित्तमसाऽऽविष्टः कदाचिन्नैव तं स्पृशेत् ।  
 सर्वस्मादधिकं ब्रूयाद्भगवन्तमुमापतिम् ॥ २८ ॥  
 तथा देवीं च गिरिजां द्विजैः श्रेयोधिभिः सदा ।  
 परस्त्रियं न भाषेत नापाज्यं याजयेद्विजाः ॥ २९ ॥

\* रविवार इत्यादि भूतल इत्यर्थं धोकद्वय वक्ष्यमाणतः जिनपुस्तकेषु नास्ति ।



न देवायतनं गच्छेत्कदाचिच्चाभदक्षिणम् ।  
 न निन्देद्योगिनः सिद्धान्त्रतिनो नो यतींस्तथा ॥ ३० ॥  
 न चाऽऽक्रामेद्गुरोश्छायां न तथोऽऽज्ञां गुरोः सदा ।  
 वक्ष्यमाणेन विधिना स्नानं कुर्यात्समाहितः ॥ ३१ ॥  
 भूमिं व्याहृतिभिः स्पृष्ट्वाः\* खनमानं च्यु चाशया । ?  
 उद्धृताऽसीति संगृह्य गन्धद्वारेति गोमयम् ॥ ३२ ॥  
 अपाचमित्यपामार्गं दूर्वां 'संगृह्य दूर्वया ।  
 जलतीरं समासाद्य शुचौ देशे समाहितः ॥ ३३ ॥  
 आदित्या इति संप्रोक्ष्य कूलं तीर्थस्य सुव्रतः ।  
 शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य गापत्या प्रोक्षयेत्ततः ॥ ३४ ॥  
 भागद्वयं स तां पश्चादेकं दिक्षु विवर्जयेत्-<sup>१</sup>  
 यत इन्द्रादिर्मन्त्रैश्च चतुर्भिस्तु यथाक्रमम् ॥ ३५ ॥  
 अवगाह्य जले पश्चात्तीरे चैवोपविश्य च ।  
 अवशिष्टेन भागेन मन्त्रैश्चालेपयेत्क्रमात् ॥ ३६ ॥  
 अक्षीभ्यामितिमन्त्रेण मुखमालेपयेद्बुधः ।  
 ग्रीवाभ्यामिति च ग्रीवां तच्छिङ्गेन तथा भुजौ ॥ ३७ ॥  
 शरीरं यज्ञमुक्त्वाऽथ हृदयं परिलेपयेत् ।  
 नाभिमानन्दनन्देति शिष्टे मूर्ध्नि विनिक्षिपेत् ॥ ३८ ॥  
 मूर्धानमितिमन्त्रेण तिलदूर्वाक्षतादिकम् ।  
 हिरण्यगृह्णमित्पुक्त्वा तीर्थं संपार्थ्यं बुद्धिमान् ॥  
 जपेच्छुद्धमतिः पश्चात्सूक्तं चैवाद्यमर्पणम् ॥ ३९ ॥  
 द्विपदां च जपेद्देवीं सर्वपापप्रणाशनीम् ।  
 इदं तु वारुणं स्नानं मन्त्रस्नानमथोच्यते ॥ ४० ॥  
 आग्नेय भस्मना स्नानं वायव्यं रजसां गवाम् ।  
 दिव्यमातपवर्षेण तच्चु कार्यमनन्तरम् ॥ ४१ ॥  
 आर्द्रेण वाससा चान्यन्मानसं शिवचिन्तनम् ।  
 स्नानानां चैव सर्वेषां मानसं स्नानमुत्तमम् ॥ ४२ ॥

\* अत्र खनिं वा च शलाकयेत्यपेक्षितमिति प्रतिभाति ।

† उक्त्वाऽथ हृदयमित्यादि हिरण्यगृह्णमित्यन्त घटचञ्जलसहितेषु पुस्तकेषु नास्ति ।

१ ( न. ख. ग. घ ) ० नो वा य० २ ( घ. ङ. च. छ ) ० याऽऽख्या गु० ३ ( घ. च. छ. ज ) महन् इ० ४ ( न. ख. ग. ) ० य. च. ता. ५ ( क. ख. ग. ) ० न्निस्तु च०

द्रुतगोपेण भूतेभ्यो बलिं भूतमस्रं विदुः ।  
 विप्रं तु भोजयेदेकं पितृनुद्दिश्य यत्नतः ॥ ५८ ॥  
 नित्यश्राद्धं तदुद्दिष्टं पितृपज्ञं प्रचक्षते ।  
 यथाशक्त्यन्नमुद्दृत्यं प्रदद्याद्ब्राह्मणाप वै ॥ ५९ ॥  
 अतिथिं पूजयेद्भक्त्या शिवभावसमन्वितः ।  
 सोऽतिथिः स्वर्गसोपानमिति देवोऽब्रवीद्भविः ॥ ६० ॥  
 प्रदद्याद्भक्तकारं वा भिक्षां च भवभावतः ।  
 अक्षयं तत्फलं ग्राहूर्भवभावो हि दुर्लभः ॥ ६१ ॥  
 वेदाभ्यासरतो नित्यं तद्विचाररतो भवेत् ।  
 ब्रह्मपज्ञः समुद्दिष्टो ब्रह्मलोकफलप्रदः ॥ ६२ ॥  
 एतान्कृत्वैव सततं मुञ्जीताऽऽश्रमैर्धर्मभिः ।  
 अन्यथा यो हि मुद्धेऽन्नं प्रेत्यं शूकरतां व्रजेत् ॥ ६३ ॥  
 यदि विश्वेश्वरे स्थाणौ भक्तिरेकैव निश्चला ।  
 किं तैः पञ्चमहायज्ञैरन्यैर्वा विविधैर्मखैः ॥ ६४ ॥ ८३६ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे स्रुतशौनकसंवादे द्विजधर्म-  
 कथने नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

**मूत उवाच**—श्राद्धं दर्शेऽथ कर्तव्यमष्टकांस्वयनद्वये ।

विपुत्रे च व्यतीपाते तीर्थेषु च विशेषतः ॥ १ ॥

परीक्ष्य ब्राह्मणान्सम्पश्येद्देवेदाङ्गपारगान् ।

विशेषाञ्छिवभक्तांश्च रुद्रजाप्यपरायणान् ॥ २ ॥

अभावे शिवभक्तानां सदाचाररतान्द्विजान् ।

भोजयेच्छुद्धया श्राद्धे शिवबुद्ध्या समाहितः ॥ ३ ॥

व्रतोपवासनिरताः सोमपाः संपत्तेन्द्रियाः ।

अग्निहोत्रपराः शान्ता बह्वृचा गुरुपूजकाः ॥ ४ ॥

त्रिणाचिकेताः शिष्याश्च त्रिमधुत्रिसुपर्णिकाः ।

मन्त्रब्राह्मणवेत्तारः पुराणस्मृतिपाठकाः ॥ ५ ॥

अध्यात्मशास्त्रनिरता ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ।

एकं वा भोजयेद्विप्रं शिवभक्तिपरायणम् ॥ ६ ॥

तेन पूता भवन्त्येव ये कैचित्पङ्क्तिरूपकाः ।

वधवन्धोपजीवी च वृषलः शूद्रपूजकाः ॥ ७ ॥

स्नात्वाऽथाऽऽचम्य विधिवत्तर्पयेच्च सुरान्पितॄन् ।  
 पुनराचम्य विधिना मार्जनं च समाचरेत् ॥ ४३ ॥  
 दद्याज्जलाञ्जलिं पश्चात्सवित्रे<sup>१</sup> रुद्ररूपिणे ।  
 ततो दर्भांसने स्थित्वा गायत्रीं जपेद्विजः ॥ ४४ ॥  
 त्रैवर्णिकानां सर्वेषां गायत्री परमा गतिः ।  
 यद्गायत्र्याः परं तत्त्वं देवदेवो महेश्वरः ॥ ४५ ॥  
 इति ज्ञात्वा जपेद्विद्वान्गायत्र्याः फलमश्नुते ।  
 यो ह्यन्यथा तु मनुते गायत्रीं शिवरूपिणीम् ॥ ४६ ॥  
 पच्यते स महाघोरे नरके कल्पसंख्यया ।  
 पादाश्चत्वारो गायत्र्या वेदाश्चत्वार एव ते ॥ ४७ ॥  
 विरञ्चिविष्णुरुद्रेशः पादानां देवताः क्रमात् ।  
 एवं ज्ञात्वा विधानेन गायत्रीं वेदमातरम् ॥ ४८ ॥  
 जपेन्महेश्वरं ज्योतिर्नित्यमेव प्रकाशते ।  
 उपतिष्ठेदथाऽऽदित्थं रुद्ररूपिणमव्ययम् ॥ ४९ ॥  
 भक्तैः स्तोत्रैश्च मन्त्रैश्च वेदेतिहाससंभवैः ।  
 पावमानानि सूक्तानि ब्रह्मपद्मसिद्धये ॥ ५० ॥  
 जपेत्समाहितो भूत्वा रुद्रांश्चैव विशेषतः ।  
 मौनेनाऽऽगत्य भवनं पूजयेच्छिवमव्ययम् ॥ ५१ ॥  
 पृथक्षरेण मन्त्रेण मानैस्तोत्र्या तथैव च ।  
 पृथक्षरात्परो मन्त्रो वेदेषु च चतुर्ष्वपि ॥ ५२ ॥  
 नास्तीत्युवाच भगवान्देवदेवः स्वयं रविः ।  
 पत्रैः पुष्पैः फलैर्वाऽपि दूर्वाभिरुदकैरपि ॥ ५३ ॥  
 नासंपूज्य महादेवं भुञ्जीत ब्राह्मणः सदा ।  
 ब्राह्मणक्षत्रियविशां कर्मिणां योगिनामपि ॥ ५४ ॥  
 गतिर्विश्वेश्वरो देवो भवो नान्य इतिश्रुतिः ।  
 कुर्यात्पञ्च महापद्मान्ग्रहस्थः श्रद्धयाऽन्वितः ॥ ५५ ॥  
 पञ्चपद्मपरित्यागादाश्रमादवहीयते ।  
 देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथाऽपरः ॥ ५६ ॥  
 मानुषो ब्रह्मयज्ञश्च पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः ।  
 कर्तव्यो वैश्वदेवरतु देवयज्ञ उदीरितः ॥ ५७ ॥

हुतशेषेण भूतेभ्यो वलिं भूतमस्रं विदुः ।  
 विप्रं तु भोजयेदेकं पितृनुद्दिश्य यत्नतः ॥ ५८ ॥  
 नित्यश्राद्धं तद्दुद्दिष्टं पितृयज्ञं प्रचक्षते ।  
 यथाशक्त्यन्नमुद्धृत्यं प्रदद्याद्ब्राह्मणाय वै ॥ ५९ ॥  
 अतिथिं पूजयेद्भक्त्या शिवभावसमन्वितः ।  
 सोऽतिथिः स्वर्गसोपानमिति देवोऽब्रवीद्रविः ॥ ६० ॥  
 प्रदद्याद्भक्तकारं वा भिक्षां च भवभावतः ।  
 अक्षयं तत्फलं प्राहुर्भवभावो हि दुर्लभः ॥ ६१ ॥  
 वेदाभ्यासरतो नित्यं तद्विचाररतो भवेत् ।  
 ब्रह्मयज्ञः समुद्दिष्टो ब्रह्मलोकफलप्रदः ॥ ६२ ॥  
 एतान्कृत्वैव सततं भुञ्जीताऽऽश्रमैर्धर्मभिः ।  
 अन्यथा यो हि भुङ्क्तेऽन्नं प्रेत्यं शूकरतां व्रजेत् ॥ ६३ ॥  
 यदि विश्वेश्वरे स्थाणौ भक्तिर्केव निश्चला ।  
 किं तैः पञ्चमहायज्ञैरन्यैर्वा विविधैर्मखैः ॥ ६४ ॥ ८३६ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीतौरे सूतशौनकसंवादे द्विजधर्म-  
 कथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सूत उवाच—श्राद्धं दर्शोऽथ कर्तव्यमष्टकांस्वयन्द्भये ।  
 विपुत्रे च व्यतीपाते तीर्थेषु च विशेषतः ॥ १ ॥  
 परीक्ष्य ब्राह्मणान्सम्यग्भेदेवेदाङ्गपारगान् ।  
 विशेषाञ्छिवभक्तांश्च रुद्रजाप्यपरायणान् ॥ २ ॥  
 अभावे शिवभक्तानां सदाचाररतान्द्विजान् ।  
 भोजयेच्छ्रद्धया श्राद्धे शिवबुद्ध्या समाहितः ॥ ३ ॥  
 व्रतोपवासनिरताः सोमयाः संयतेन्द्रियाः ।  
 अग्निहोत्रपराः शान्ता बहूचा गुरुपूजकाः ॥ ४ ॥  
 त्रिणाचिकेताः शिष्याश्च त्रिमधुत्रिमुषर्षिकाः ।  
 मन्त्रब्राह्मणवेत्तारः पुराणस्मृतिपाठकाः ॥ ५ ॥  
 अध्यात्मशास्त्रनिरता ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ।  
 एकं वा भोजयेद्विभं शिवभक्तिपरायणम् ॥ ६ ॥  
 तेन पूता भवन्त्येव ये केचित्पङ्क्तिदूषकाः ।  
 वधवन्धोपजीवी च वृषलः शूद्रघोजकाः ॥ ७ ॥

१ (क. ख. ग.) व्यचक्षणः । २ (घ. ङ. च. छ. ज.) ०५कम० । ३ (क. ख. ग.)  
 ०५ सू० । ४ (क. ख. ग.) एक च मो० । ५ (घ. ङ. च. छ. ज.) व्यावसायः ।

वेदविक्रयिणश्चैव श्रुतिविक्रयिणस्तथा ।  
 वेदविक्रयिणश्चान्ये कोपिनः कुण्डगोलकौ ॥ ८ ॥  
 कायस्था लम्बकर्णाश्च नित्यं राजोपसेवकाः ।  
 नक्षत्रतिथिवक्तारो भिषक्शास्त्रीपजीविनः ॥ ९ ॥  
 व्याधिनः काव्यकर्तारो गायकाश्चैव गोत्रिणः ।  
 वेदनिन्दारताश्चैव कृतघ्नाः पिशुनास्तथा ॥ १० ॥  
 हीनातिरिक्तदेहाथ श्राद्धे वर्ज्याः प्रयत्नतः ।  
 ब्रह्महत्यामवाप्नोति यदि स्त्रीगमनं भवेत् ॥ ११ ॥  
 अध्वानं कलहं क्रोधं पुत्रभार्यादिताडनम् ।  
 श्राद्धभोजी भवेद्यो हि तद्दिने परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥  
 मङ्गलयेत्ततः पादावर्चिते मण्डले शुभे ।  
 चतुरस्रं ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य त्रिकोणकम् ॥ १३ ॥  
 वर्तुलं चैव वैश्यस्य शूद्रस्याभ्युक्षणं स्मृतम् ।  
 उपवेश्य ततो विप्रान्दत्त्वा चैव कुशासनम् ॥ १४ ॥  
 पश्चाच्छ्राद्धस्य रक्षार्थं तिलांश्च विकिरेत्ततः ।  
 विश्वेदेवानथाऽऽरूप विश्वेदेवास इत्पृचा ॥ १५ ॥  
 शंनोदेव्या जलं क्षिप्वा सपवित्रे तु भाजने ।  
 यवान्यथोऽसीति तथा गन्धपुष्पं च निक्षिपेत् ॥ १६ ॥  
 पा दिव्या इति मन्त्रेण ऋस्तेऽप्यर्घ्यं विनिक्षिपेत् ।  
 प्रदद्याद्गन्धमाल्यादि धूपं वासांसि शक्तितः ॥ १७ ॥  
 अपसव्यं ततः कृत्वा पितृनावाहयेत्ततः ।  
 उशन्तस्त्वेति च ऋचा आवाह्य तदनुज्ञया ॥ १८ ॥  
 जपेदापन्तु न ऋचं तिलोऽसीति तिलांस्तथा ।  
 क्षिपेर्दध्यं यथापूर्वं विप्रहस्ते समाहितः ॥ १९ ॥  
 संस्रवान्प्रक्षिपेत्पात्रे न्युञ्जं चैव यथा भवेत् ।  
 पितृभ्यः स्थानमसीति ततोऽग्नौकरणं मतम् ॥ २० ॥  
 अग्नौ करिष्य इत्युक्त्वा कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञया ।  
 अन्नं घृतप्लुतं वह्नौ जुहुयात्पितृयज्ञवत् ॥ २१ ॥

अग्नेरभावाद्धिप्रस्य पाणौ होमो विधीयते ।  
 महादेवस्य पुरतो गोष्ठे वा श्रद्धयाऽन्वितः ॥ २२ ॥  
 पिण्डनिर्वपणं कृत्वा ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत् ।  
 केचिदप्येवमिच्छन्ति नैक भानोर्मतं द्विजाः ॥ २३ ॥  
 विविधं पायसं दद्याद्गक्ष्याणि सुवहून्वपि ।  
 लेह्यं चोष्यं तथा कामपुष्पमेव फलं विना ॥ २४ ॥  
 विविधान्यपि मांसानि पितॄणां प्रीतिपूर्वकम् ।  
 दत्तान्यपि निपिद्धानि श्राद्धं नैवाक्षयं भवेत् ॥ २५ ॥  
 नाश्राति यो द्विजो मांसं नियुक्तः पितृकर्मणि ।  
 स प्रेत्य नरकं याति पशुत्वं च प्रपद्यते ॥ २६ ॥  
 धर्मशास्त्रं पुराणं च तथाऽथर्वशिरस्तथा ।  
 रुद्रांश्च पौरुषं सूक्तं ब्राह्मणाञ्चावपेत्ततः ॥ २७ ॥  
 भुञ्जीरन्ब्राह्मणाः सर्वे वाग्यता घृतभोजनाः ।  
 विकिरं निक्षिपेत्पश्चाच्छेषमन्नमथावदीत् ॥ २८ ॥  
 हस्तप्रक्षालनं दत्त्वा कुर्याद्वै स्वस्तिवाचनम् ।  
 दद्याद्वै दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारद्गुदीरयेत् ॥ २९ ॥  
 दातारो नोऽभिवर्धन्तां वाजेवाजेति वै ऋचम् ।  
 जप्त्वा च ब्राह्मणान्स्तुत्वा नमस्कृत्य विसर्जयेत् ॥ ३० ॥  
 भोक्ता च श्राद्धदस्तस्यां उन्नय्यां मैथुनं त्यजेत् ।  
 स्वाध्यायं च तथाऽध्वानं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ३१ ॥  
 अध्वगो व्यसनी चैव विशेषेण ह्यनम्रिकः ।  
 आमश्राद्धं द्विजः कुर्याद्दुर्वर्त्तस्तु सदैव हि ॥ ३२ ॥  
 फलेरपि च मूलैर्वा कुर्याच्छ्राद्धं च निर्धनः ।  
 स्रान्त्वा तिलोदकैर्वाऽपि तर्पयेच्छ्रद्धया पितॄन् ॥ ३३ ॥  
 श्रद्धया तु कृते श्राद्धे भगवान्नीललोहितः ।  
 प्रीतो भवति विश्वात्मा विश्वेशो हृष्यकव्यभुक् ॥ ३४ ॥ ८७० ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशीनकसंवादे श्राद्धविधि-  
 कथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १२ ॥  
**मृत उवाच**—अथ धर्मो वनस्थानामुच्यते गृणुत द्विजाः ।  
 प्रीतो भवतु येनासौ भगवान्भगनेत्रहा ॥ १ ॥

शरीरमात्मनो दृष्ट्वा पलिताद्यैश्च हृषितम् ।  
 पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेद्द्विजोत्तमः ॥ २ ॥  
 फलमूलाशनो नित्यं पञ्चयज्ञपरायणः ।  
 अतिथिं पूजयेद्भक्त्या मत्वा सर्वं इति श्रुतिः ॥ ३ ॥  
 अष्टौ ग्रासांश्च भुञ्जीत चीरवासा भवेज्जटी ।  
 भवेन्निषवणस्त्रायी नित्यं स्वाध्यायतत्परः ॥ ४ ॥  
 दयां च सर्वभूतेषु न कुर्यान्निशि भोजनम् ।  
 वर्जयेद्द्वामजातानि पुष्पाणि च फलानि च ॥ ५ ॥  
 यदि गच्छेत्सपत्नीको ब्रह्मचार्यैव सर्वदा ।  
 चादिगच्छेद्द्वनी भार्यां प्रायश्चित्ती भवेद्द्विजः ॥ ६ ॥  
 आदिगच्छेद्भो भवेत्तस्याः स चाण्डालसमो भवेत् ।  
 सर्वभूतात्तु कम्पी स्यात्संविभागरतः सदा ॥ ७ ॥  
 परिवादं मृपेतवादं निद्रालस्यं विवर्जयेत् ।  
 शीर्णपर्णशिनो वा स्यात्कृच्छ्रैर्वा वर्तयेत्सदा ॥ ८ ॥  
 शिवपूजारतो नित्यं शिवध्यानपरायणः ।  
 एवं यो वर्तते नित्यं वानप्रस्थधर्मे द्विजः ॥ ९ ॥  
 परां गतिंमवाप्नोति देहान्ते शाश्वतं पदम् ।  
 यदा मनसि वैराग्यं जायते सर्ववस्तुषु ॥ १० ॥  
 तदा च संन्यसेद्द्विद्वाक्कन्यथा पतितो भवेत् ।  
 वेदान्ताभ्यासनिरतो दान्तः शान्तो जितेन्द्रियः ॥ ११ ॥  
 निर्ममो निर्भयी नित्यं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।  
 जीर्णकौपीनवासाः स्यान्मुण्डो नम्रोऽथवा भवेत् ॥ १२ ॥  
 त्रिदण्डी वा भवेद्द्विद्वानित्येपा वैदिकी श्रुतिः ।  
 समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ॥ १३ ॥  
 भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेत्कचित् ।  
 एकान्नादी भवेद्यस्तु कदाचिच्छम्पटो यतिः ॥ १४ ॥  
 निष्कृतिर्नैव तस्यास्ति धर्मशास्त्रेषु सर्वथा ।  
 भवेन्निषवणस्त्रायी भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥ १५ ॥  
 प्रणवं प्रजपेन्नित्यं मोक्षशास्त्रस्य चिन्तकः ।  
 वेदान्तांश्च पठेन्नित्यं तेषामर्थाश्च चिन्तयेत् ॥ १६ ॥

आत्मानं चिन्तयेद्देवमीशानं विभुमव्ययम् ।  
 अनन्तं निर्गुणं शान्तं पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ १७ ॥  
 कारणं सर्वजगतामाधारं सर्वतो मुखम् ।  
 चिद्रूपं शंकरं स्थाणुमानन्दमजरं विभुम् ॥ १८ ॥  
 प्रेरकं सर्वभूतानामेकं ब्रह्म महेश्वरम् ।  
 अप्रमेयमनाद्यन्तं स्वयंज्योतिः सनातनम् ॥ १९ ॥  
 तन्निष्ठस्तन्मयो भूत्वा योगयुक्तो महामुनिः ।  
 अचिरेणैव कालेन परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २० ॥  
 द्विजः संन्यसनादेव पापेभ्यः संममुच्यते ।  
 ज्ञानी भोक्षमवाप्नोति विराट्पदमखे रतः ॥ २१ ॥  
 इति सर्वमशेषेण चातुराश्रम्यमीरितम् ।  
 योऽनुतिष्ठेत्प्रयत्नेन तस्य शंभुः प्रसीदति ॥ २२ ॥ ८२२ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे वानप्रस्थादिधर्मकथनं  
 नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

**ऋषय ऊचुः**—कथं भगवता सूत सर्ग उक्तो विवस्वता ।  
 मन्वन्तराणि वंशाश्च तेषां च चरितं तथा ॥ १ ॥  
 प्रतिसर्गः पुनैश्वैव यथा भवति कृत्स्नशः ।  
 ब्रूहि नः सूत सकलं यथा व्यासाच्छ्रुतं त्वया ॥ २ ॥

**सूत उवाच**—शृणुध्वमृषयः सर्वे स्वेच्छालीलां महेशितुः ।  
 महादेवात्मकं सर्वं दृष्टमेतच्चराचरम् ॥ ३ ॥  
 क्षोभ्यं विश्वमिदं तेन क्षोभको भगवांश्शिवः ।  
 स संकोचविकोशाभ्यां प्रधानत्वे व्यवस्थितः ॥ ४ ॥  
 क्षोभ्यमानात्प्रधानाच्च पुंसः प्रादुरभूद्विजाः ।  
 यदेतद्विस्तृतं वीजं प्रधानपुरुपात्मकम् ॥ ५ ॥  
 महत्तत्त्वमिति प्रोक्तं बुद्धितत्त्वं तदुच्यते ।  
 बुद्ध्यादयो विशेषान्ता अव्यक्तादीश्वरेच्छया ॥ ६ ॥  
 पुरुषाधिष्ठितादेव जज्ञिरे मुनिपुङ्गवाः ।  
 अहंकारस्ततो जज्ञे तन्मात्राणि ततो द्विजाः ॥ ७ ॥

१ ( क. ख. ग. ज. ) ०२ शुद्धमा ० २ ( क. ख. ग. ज. ) ०२ शिवम् । ३ ( घ. ड. य. छ. ज. ) ०२ ब्रह्म प्रदानेन ॥ २० ॥ ८ ( क. ख. ग. ) ०२ भ्रान्ते य ० ५ ( घ. ड. य. छ. ज. )



ततो भूतानि घातानि प्रेरितानि शिवेच्छया ।  
 मनस्त्वव्यक्तजं प्राहुः प्रोक्तं तच्चोभयात्मकम् ॥ ८ ॥  
 वैकारिकादहंकारात्सर्गो वैकारिको भवेत् ।  
 तेजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवः वैकारिका दश ॥ ९ ॥  
 वैकारिकात्तेजसश्च भूतोदिशैव तामसः ।  
 त्रिविधोऽयमहंकारः कथ्यते तत्त्वचिन्तकैः ॥ १० ॥  
 भूतादेरभवत्सर्गो भूततन्मात्रसंज्ञितः ।  
 विकुर्वाणस्तु भूतोदिः शब्दमात्रं ससर्ज ह ॥ ११ ॥  
 आकाशो जायते तस्मात्तस्य शब्दो गुणो मतः ।  
 व्योम चैव विकुर्वाणं स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ॥ १२ ॥  
 \*तस्मादुत्पद्यते वायुः स्पर्शस्तस्य गुणो भवेत् ।  
 पवनश्च विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह ॥ १३ ॥  
 तेजश्चोत्पद्यते तस्माद्रूपं तस्य गुणं विदुः ।  
 तेजस्त्वेव विकुर्वाणं रसमात्रमभूत्ततः ॥ १४ ॥  
 उत्पद्यन्ते ततश्चाऽऽपो रसस्तासां गुणो मतः ।  
 विकुर्वन्त्यस्ततश्चाऽऽपो गन्धमात्रं ससर्जिरे ॥ १५ ॥  
 गन्धाच्च पृथिवी जाता गन्धस्तस्यास्तु वै गुणः ।  
 शब्दमात्रं यदाकाशं स्पर्शमात्रं समावृणोत् ॥ १६ ॥  
 द्विगुणः प्रोच्यते वायुः शब्दस्पर्शात्मकः स्मृतः ।  
 तथैव विपतो रूपं शब्दस्पर्शौ गुणावुभौ ॥ १७ ॥  
 तेजस्ततः स्यान्निगुणं सशब्दस्पर्शरूपवत् ।  
 रसमात्रं गुणाः सर्वे त्रय आद्याः सभाविशन् ॥ १८ ॥  
 आपश्चतुर्गुणास्तेन गन्धमात्रं समाविशन् ।  
 तस्मात्पञ्चगुणा भूमिर्बला भूतेषु कथ्यते ॥ १९ ॥  
 पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ।  
 महदादिविशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते ॥ २० ॥  
 तस्मिन्कार्यं च करणं संसिद्धं परमेष्ठिनैः ।  
 प्राकृतेऽण्डे विरश्चिस्तु क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥ २१ ॥

\* तस्मादुत्पद्यते इत्यादि रसमात्रमभूतत इत्यन्त घटचछसंज्ञतपुस्तकेषु न विद्यते ।

१ ( इ. च. छ. ) ०ज्ञाया २ ( इ. ) ०तादेव तु ता ३ ( क. ख. ग. ज. ) ०सर्जकः  
 वि ४ ( इ. ) ०तादि शो ५ ( घ. ड. च. छ. ज. ) ०सिद्धं यो ६ ( घ. ड. च. छ. ज. )  
 ०नः । भा ७ ( इ. ) क्षेत्रज्ञो ब्र ०

सर्वैः शरीरैः प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ।  
 आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥ २२ ॥  
 मेरुरुत्तमं भवेत्तस्य जुरागुश्चापि पर्वताः ।  
 गर्भोदकं समुद्राश्च तस्याऽऽसत्परमेष्ठिनः ॥ २३ ॥  
 विश्वं तत्राभवद्विमाः सदेवासुरमानुषम् ।  
 अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोऽण्डं समावृतम् ॥ २४ ॥  
 आपो दशगुणेनैव तेजसा वहिरावृताः ।  
 तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुनाऽऽवृतम् ॥ २५ ॥  
 आकाशेनाऽऽवृतो वायुः सं तु भूतादिनाऽऽवृतम् ।  
 महता चैव भूतादिरव्यक्तेनाऽऽवृतो महान् ॥ २६ ॥  
 एतैरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ।  
 अर्षैकप्रभवं सर्वमानुलोम्पेन लीयते ॥ २७ ॥  
 गुणाः कालवशादेव भवन्ति त्रिप्रमाः समाः ।  
 गुणसाम्ये लपो ज्ञेयो वैपम्ये सृष्टिरुच्यते ॥ २८ ॥  
 ब्रह्माण्डमेव विभेन्द्रा ब्रह्मणः क्षेत्रमुच्यते ।  
 क्षेत्रज्ञश्च स एवोक्तो विरञ्चिश्च प्रजापतिः ॥ २९ ॥  
 सदस्रकोटयः सन्ति ब्रह्माण्डास्तिर्षगूर्ध्वजाः ।  
 ब्रह्माणो हरयो रुद्रास्तत्र तत्र व्यवस्थिताः ॥ ३० ॥  
 आज्ञया देवदेवस्य महादेवस्य शूलिनः ।  
 ब्रह्माण्डानामसंख्यानां ब्रह्मविष्णुहरात्मनाम् ॥ ३१ ॥  
 उद्भवे प्रलये हेतुर्महादेव इति श्रुतिः ।  
 अनन्तशक्तिर्भगवाननन्तमहिमास्पदः ॥ ३२ ॥  
 अनन्तैश्वर्यसंपन्नो महादेवोऽम्बिकापतिः ।  
 न तस्यै करणं कार्यं क्रिया वा किञ्चित् द्विजाः ॥ ३३ ॥  
 स्वेच्छया भगवानीशः क्रीडत्यद्रिजया सह ।  
 कथितः प्राकृतः सर्गः संक्षेपान्मुनिपुङ्गवाः ॥ ३४ ॥  
 अवुद्धिपूर्वकस्त्वेव ब्राह्मी सृष्टिरधोच्यते ॥ ३५ ॥ २२७ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे प्राकृतसर्ग-  
 कथनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

मूत उवाच-असंख्यातानि कल्पानि गतानि ब्रह्मणो द्विजाः ।

सांप्रतं वर्तते यच्च वाराहमिति संज्ञितम् ॥ १ ॥

विस्तरं तस्य वक्ष्यामि शृणुष्वं मुनिपुङ्गवाः ।

शृण्वतां पापहानिः स्याच्छ्रद्धया सर्वदेहिनाम् ॥ २ ॥

एकं कल्पमहः प्रोक्तं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।

रात्रिश्च तावती प्रोक्ता कल्पमानमयोच्यते ॥ ३ ॥

चतुर्युगानां साहस्रं कल्पमानं निगद्यते ।

शतत्रयं पष्ट्यधिकं कल्पानां वर्षमुच्यते ॥ ४ ॥

चतुर्मुखस्य विभेन्द्राः परारूपं तच्छतं भवेत् ।

तदन्ते सर्वभूतानां प्रकृतौ विलयः स्मृतः ॥ ५ ॥

प्राकृतः प्रलयस्तेन कथ्यते कालचिन्तकैः ।

त्रयाणामपि देवानां प्रकृतौ विलयो भवेत् ॥ ६ ॥

पुनः कालवशात्तेषामुत्पत्तिः कथ्यते ब्रुधैः ।

कालो हि भगवाञ्शंभुर्माहादेव इति श्रुतिः ॥ ७ ॥

सृज्यन्ते बहवो रुद्रैश्चानन्ताश्च चतुर्मुखाः ।

नारायणो ह्यसंख्याता देवदेवेन शंभुना ॥ ८ ॥

संहर्ता च पुनस्तेषां कालरूपी महेश्वरः ।

परार्थं ब्रह्मणो विभ्रा अतीतमिति नः श्रुतम् ॥ ९ ॥

पौत्रकल्पमतीतं यत्तत्परार्थं द्विजोत्तमाः ।

वाराहो वर्तते कल्पो वाराहो यत्र पञ्चभूः ॥ १० ॥

आसीदेकार्णवं घोरं निर्विभागं तमोमयम् ।

एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ ११ ॥

ब्रह्मा नारायणो मूत्वा योगनिद्रां समाश्रितः ।

सुप्त्वाप सलिले तस्मिन्नीश्वरेच्छाप्रणोदितः ॥ १२ ॥

मुनयः सत्पलोकस्था देवं नारायणं प्रति ।

इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं मुनिवरोत्तमाः ॥ १३ ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनुवः ।

अयनं तस्य ताः प्रोक्तास्तेन नारायणः स्मृतः ॥ १४ ॥

१ (घ.) ०१ विद्यते । २ (घ. स. ग.) यत्तद्वारा० ३ (घ. स. घ. इ.) एतं क०  
४ (क. ग.) ०१५५५ नि० (घ. घ.) ०१५५५५ नि० ५ (घ. स. ग.) ०१५५५५ नि० । ६ (घ. स.  
ग.) ०१५५५५ नि० ७ (घ. स. ग.) ०१५५५५ नि० ८ (घ.) ०१५५५५ नि० । एवं चो०

एवं युगसहस्रान्ते योगनिद्रामपास्य वै ।  
 ब्रह्मत्वमग्रहीदेवः सृष्ट्यर्थं मुनिपुङ्गवाः ॥ १५ ॥  
 मग्नां जलान्तः पृथिवीं ज्ञात्वा देवश्चतुर्मुखः ।  
 तस्यास्तूद्धरणार्थाय वारहं रूपमास्थितः ॥ १६ ॥  
 अप्रतर्क्यमनौपम्यं रूपं भगवतः परम् ।  
 क्षणाद्रसातलं गत्वा यज्ञेशः पुरुषोत्तमः ॥ १७ ॥  
 अभ्युज्जहार धरणीं दंष्ट्रया परमेश्वरः ।  
 सनकाद्यैः स्तूयमानो भगवान्हव्यकव्यभुक् ॥ १८ ॥  
 आसीद्यथाऽवनिः पूर्वं संस्थाप्य च तथा पुनः ।  
 कल्पान्तदग्धानखिलान्पर्वतांश्च महीधरः ॥ १९ ॥  
 ततश्चिन्तयतः सृष्टिं कल्पादौ पञ्चजन्मनः ।  
 अत्रुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥ २० ॥  
 तमो मोहो महामोहस्तमिस्रं चान्धसंज्ञितः ।  
 अविद्या पञ्चपूर्वेषां प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ २१ ॥  
 पञ्चधाऽवस्थितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः ।  
 संवृतस्तमसाऽतीव वीजं त्वगिव सर्वतः ॥ २२ ॥  
 अन्तर्वहिश्रायकाशः स्तब्धो निःसंज्ञ एव च ।  
 मुख्या नगा इति प्रोक्ता मुख्यसर्गस्तु स स्मृतः ॥ २३ ॥  
 तं दृष्ट्वाऽसाधकं सर्गममन्त्रस्कमलासनः ।  
 पुनश्चिन्तयतः सर्गं तिर्यक्श्रोतोऽभ्यवर्तत ॥ २४ ॥  
 यस्य तिर्यकप्रवृत्तः स तिर्यकश्रोतस्तंतः स्मृतः ।  
 पश्चादयः समारूपाता उत्पद्यन्नाहिणश्च ये ॥ २५ ॥  
 तमप्यसाधकं दृष्ट्वा देवदेवः पितामहः ।  
 ससर्जान्यं पुनः सर्गमूर्ध्वश्रोतं तु सात्त्विकम् ॥ २६ ॥  
 देवसर्गं इति प्रोक्तः प्रकाशात्मा सुखाधिकः ।  
 पुनश्चिन्तयतोऽव्यक्तादवोक्श्रोतं स्त्वसाधकः ॥ २७ ॥  
 प्रकाशबहुलाः सर्वे तमोयुक्ता रजोधिकाः ।  
 दुःखोत्कटाः सत्त्वयुक्ता मनुष्याः परिकीर्तिताः ॥ २८ ॥

पुनश्चिन्तयतस्तस्य भूतसर्गोऽभ्यजायत ।

संविभागरताः क्रूरास्ते परिग्राहिणः स्मृताः ॥ २९ ॥

एते पञ्च समाख्याताः सर्गा देवेन भानुना ।

महतः प्रथमः सर्गो ज्ञातव्यो ब्रह्मणो द्विजाः ॥ ३० ॥

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ।

वैकारिकस्त्वृतीयस्तु प्रोक्त ऐन्द्रियको द्विजाः ॥ ३१ ॥

इत्येष प्राकृतः सर्गः संभूतो बुद्धिपूर्वकः ।

चतुर्थो मुख्यसर्गस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥ ३२ ॥

तिर्पग्योन्यस्तु यः प्रोक्तस्तिर्पग्योन्यस्तु पञ्चमः ।

तयोर्ध्वश्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ ३३ ॥

ततोऽर्वाक्श्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।

अष्टमो भौतिकः सर्गो भूतादीनां द्विजोत्तमाः ॥

नवमश्चैव कौमारः प्राकृता वैकृतास्त्वमे ॥ ३४ ॥ २६१ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे वाराहकल्प-

प्राकृतादिसर्गकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

भूत उवाच-ततः ससर्ज भगवान्देवोऽसावात्मनः सुतान् ।

सनातनं च सनकं सनन्दनमथापि च ॥ १ ॥

शंभुं सनत्कुमारं च पञ्चैतान्पद्मसंभवः ।

न सृष्टौ दधिरे बुद्धिं शिवैकध्यानतत्पराः ॥ २ ॥

\*सृष्टौ तेष्वनपेक्षेषु मोहाविष्टः प्रजापतिः ।

तपस्ततांप परमं न किञ्चित्प्रैत्यपद्यत ॥ ३ ॥

मत्ते चहुत्तिषे काले समभूत्क्रोधसुखित्तः ।

प्राणात्मकः समुद्भूतो ललाटाद्ब्रह्मणो हरः ॥ ४ ॥

केनापि हेतुना विमाः सूर्यकोटिसमप्रभः ।

निश्चक्राम ततो भित्त्वा भालं भगवतो विधेः ॥ ५ ॥

रोदयित्वाऽञ्जजन्मानं तस्माद्बुद्ध इति स्मृतः ।

अन्यानि सप्त नामानि शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ॥ ६ ॥

भवः शर्वस्तथेशानः पशूनां पतिरेव च ।

भीमश्चोश्रो महादेव इति नामानि सत्तमाः ॥ ७ ॥

\* एतच्च उज्ज्वलपुस्तकेष्विदं धीकार्थं न दृश्यते ।

१ ( ए. ) अग्योनयो ये प्रोक्तारिणो २ ( क. घ. छ. ) अत्यतिपद्यते ॥ ३ ॥ ३ ( ए. ड. घ.

च ) ०-नोदितः ॥ ११

भूमिरापोऽनलो वायुर्व्योम सूर्यश्च चन्द्रमाः ।  
 अष्टमी दीक्षितस्तत्र मूर्तिरीशस्य शूलिनः ॥ ८ ॥  
 याभिव्याप्तमिदं विश्वे विश्वस्यास्य जगन्मयः ।  
 तेन विश्वेश्वरो देव इति न्यम्ना शिवः स्मृतः ॥ ९ ॥  
 प्रजाः सृजेति निर्दिष्टश्चन्द्रमौलिर्विरञ्चिना ।  
 ससर्ज मनसा रुद्रानात्मतुल्यान्महेश्वरः ॥ १० ॥  
 नीलकण्ठांघ्रिनेत्रांश्च जटामुकुटमण्डितान् ।  
 \*रूपध्वजान्वितिरागाञ्जरामरणवर्जितान् ॥ ११ ॥  
 सर्वज्ञांशतकोटींस्तान्सर्वानुग्राहिणः परान् ।  
 दृष्ट्वा तान्विविधान् रुद्रान्विरञ्चिः प्राह शंकरम् ॥ १२ ॥  
 जरामरणनिर्मुक्तामीदृशीं मा सृजः प्रजाम् ।  
 सृजस्वान्यां सुरेशान प्रजां मृत्युसमन्विताम् ॥ १३ ॥  
 ब्रह्माणमब्रवीच्छंभुर्नास्ति मे तादृशी प्रजा ।  
 ततः प्रभृति विश्वात्मा न प्रासूत शुभाः प्रजाः ॥ १४ ॥  
 रुद्रेरात्मसमुद्भूतैः क्रीडायुक्तस्तदाऽभवत् ।  
 स्थाणुवञ्चिश्रलो यस्मारिस्थितः स्थाणुरिति स्मृतः ॥ १५ ॥  
 ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः ।  
 द्रष्टृत्वमात्मसंबोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च ॥ १६ ॥  
 अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शंकरे ।  
 स एव भगवानीशो विश्वेशो नीललोहितः ॥ १७ ॥  
 ततस्तमाह भगवान्ब्रह्मा संवीक्ष्य शंकरम् ।  
 अनुष्टुभ्य यथा मां त्वं पुत्रत्वे दत्तवान्वरम् ॥ १८ ॥  
 अर्थं तत्सफलं जातं चिन्तितं यन्मयेऽस्मितम् ।  
 एवं विश्वेश्वरं शंभुं समाभाष्य चतुर्मुखः ॥ १९ ॥  
 स्तोत्रैणानेन तुष्टाव शिरस्पाधाय चाञ्जलिम् ।  
 ब्रह्मोवाच—नमस्तेऽस्तु महादेव नमस्ते परमेश्वर ।  
 नमः शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥ २० ॥

\* वृषभजानित्यादि परानिबन्ध कसाङ्गतपुस्तके नास्ति ।

नमोऽस्तु ते महेशान नमः शान्ताय हेतवे ।  
 प्रधानपुरुषेशाय योगाधिपतये नमः ॥ २१ ॥  
 \*नमः कालाय रुद्राय महाग्रासाय शूलिने ।  
 नमः पिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमो नमः ॥ २२ ॥  
 नमस्त्रिमूर्तये<sup>१</sup> तुभ्यं ब्रह्मणो जनकार्यं च ।  
 ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने ॥ २३ ॥  
 नमो वेदरहस्यार्यं कालकालाय ते नमः ।  
 वेदान्तसारसाराय नमो वेदात्ममूर्तये ॥ २४ ॥  
 नमः शुद्धाय बुद्धाय योगिनां गुरुवे नमः ।  
 प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृत्तार्यं ते ॥ २५ ॥  
 नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः ।  
 न्यम्बकाय च देवाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥ २६ ॥  
 नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने ।  
 अनादिमलहीनार्यं ज्ञानगम्याय ते नमः ॥ २७ ॥  
 नमस्ताराय तीर्थाय नमो<sup>२</sup> योगद्धिहेतवे ।  
 नमो धर्माधिगम्याय योगगम्याय ते नमः ॥ २८ ॥  
 नमस्ते भिष्प्रपञ्चाय निराभासाय ते नमः ।  
 ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने ॥ २९ ॥  
 †त्वयैव स्रष्टमखिलं त्वज्यैव सकलं स्थितम् ।  
 त्वया संहियते विश्वं प्रधानाख्यं जगन्मय ॥ ३० ॥  
 त्वमीश्वरो महोर्देवः परं ब्रह्म महेश्वरः ।  
 परमेष्ठी शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः ॥ ३१ ॥  
 त्वमक्षरं परं ज्योतिरौकारः परमेश्वरः ।  
 त्वमेव पुरुषोऽनन्तः प्रधानं प्रकृतिस्तथा ॥ ३२ ॥  
 भूमिरापोऽनलो वायुर्व्योमाहंकार एव च ।  
 पश्य रूपं नमस्याभि भवन्तं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥

\* वसुधैव कुटुम्बकम् इत्य ध्येयो न विद्यते ।

† पञ्चतन्त्रसहितपुस्तनेष्वय श्लोको न विद्यते ।

१ ( व. छ. ) ०५ नित्यं ब्र० २ ( व. छ. घ. ) ०६ णे ज० ३ ( क. छ. ग. ) ०७ ते ।  
 ब्र० ४ ( घ. छ. घ. छ. ) ०८ कलिलाला० ५ ( व. छ. ग. ) नमो बुद्धाय बुद्धाय यो०, ६ ( ड. )  
 ०९ च ॥ २५ ॥ ७ ( घ. छ. घ. छ. ) ०१० गम्याधिदे० ८ ( छ. ग. ) ०११ य० ९ ( क. छ. ग. )  
 पर० १० १० ( व. छ. ग. ) ०१२ । १० ।

यस्य द्यौरभवन्मूर्धा पादौ पृथ्वी दिशो भुजाः ।  
 आकाशमुदरं तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम् ॥ ३४ ॥  
 संतापयति यो नित्यं स्वभाभिर्भासयन्दिशः ।  
 ब्रह्मतेजोमयं विश्वं तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥ ३५ ॥  
 हृष्यं वहति यो नित्यं रौद्री तेजोमयी तनुः ।  
 कव्यं पितृगणानां च तस्मै बह्मचात्मने नमः ॥ ३६ ॥  
 आप्याययति यो नित्यं स्वधाम्ना सकलं जगत् ।  
 पीपते देवतासंघैस्तस्मै चन्द्रात्मने नमः ॥ ३७ ॥  
 विभर्त्यशेषभूतामि योऽन्तश्चरति सर्वदा ।  
 शक्तिर्महिेश्वरी तुभ्यं तस्मै वाय्वात्मने नमः ॥ ३८ ॥  
 सृजत्यशेषमेवेदं यः स्वकर्मानुरूपतः ।  
 स्वात्मन्यवस्थितस्तस्मै चतुर्वक्त्रात्मने नमः ॥ ३९ ॥  
 यः शेते शेषशयने विश्वमावृत्य मायया ।  
 आत्मानुभूतियोगेन तस्मै विश्वात्मने नमः ॥ ४० ॥  
 विभर्ति शिरसा नित्यं द्विसप्तभुवनात्मकम् ।  
 ब्रह्माण्डं योऽखिलाधारं तस्मै शेषात्मने नमः ॥ ४१ ॥  
 यः परान्ते परानन्द पीत्वा दिव्यैकसाक्षिणम् ।  
 वृत्त्यत्यनन्तमहिमा तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥ ४२ ॥  
 योऽन्तरा सर्वभूतानां निग्नन्ती तिष्ठतीश्वरः ।  
 तं सर्वसाक्षिणं देवं नमस्ते परमात्मने ॥ ४३ ॥  
 यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु ।  
 कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै व्योमात्मने नमः ॥ ४४ ॥  
 यं विनिद्रां यतश्वासाः सतुष्टाः समदांशिनः ।  
 ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै ज्योगात्मने नमः ॥ ४५ ॥  
 यस्य भासा विभातीदं तदहं तमसः परम् ।  
 तत्त्वं सदा निराकारं चिद्रूपं पारमेश्वरम् ॥ ४६ ॥  
 \* यया संतरते मायां योगी सक्षीणकल्मषः ।  
 अपरान्तामपर्यन्तां तस्मै विद्यात्मने नमः ॥ ४७ ॥

\* गजमजिनपुस्तकपुराण श्लोको नास्त ।



नित्यानन्दं निराधारं निष्कलं परमं शिवम् ।  
 प्रपद्ये परमात्मानं भवन्तं परमेश्वरम् ॥ ४८ ॥  
 एवं स्तुत्वा महादेवं ब्रह्मा तद्भावभाषितः ।  
 प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥ ४९ ॥  
 ततस्तस्य महादेवो नित्ययोगमनुत्तमम् ।  
 ऐश्वर्यं ब्रह्मसद्भावं वैराग्यं च ददौ हरः ॥ ५० ॥  
 काराभ्यां सुशुभाभ्यां च उपस्पृश्य महेश्वरः ।  
 व्याजहार महादेवः सोऽनुग्रह्य पितामहम् ॥ ५१ ॥  
 यत्त्वयाऽभ्यर्धितो ब्रह्मन्पुत्रत्वेऽहं मया कृतम् ।  
 त्वमिदानीं मयाऽऽदेशात्सृजस्व विविधाः प्रजाः ॥ ५२ ॥  
 त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन्ब्रह्मविष्णुहरारूपया ।  
 सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽहं न संशयः ॥ ५३ ॥  
 स त्वं ममाग्रतः पुत्रः सृष्टिहेतोर्विनिर्मितः ।  
 ममैव दक्षिणादङ्गाद्रामाङ्गात्पुरुरोत्तमः ॥ ५४ ॥  
 ममैव हृदयाद्बुद्धः संजातः कौमरूपधृक् ।  
 ब्रह्मविष्णुहरारूपानां यः परः परमेश्वरः ॥ ५५ ॥  
 ते महान्तं महादेवं ब्रह्मज्ञानन्ति स्वरयः ।  
 एवं ब्रह्माणमाभाष्य दत्त्वा च विविधान्वरान् ॥ ५६ ॥  
 अन्तर्हितो महादेवः षडग्रतः पञ्चजन्मनः ।  
 अनुग्रहात्ततस्तस्य तस्माज्ज्ञानोदयो भवेत् ॥ ५७ ॥  
 ततश्च पाशविच्छित्तिः शिव एव भवेत्ततः ।  
 नश्यन्ति व्याधयस्तस्य गलगण्डग्रहादयः ॥ ५८ ॥  
 ऐहिकीं लभते सिद्धिं चिरंजीवित्वमेव च ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ५९ ॥ १०२० ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे हरोत्पत्त्यादि-  
 कथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

ऋषय ऊचुः—कथं स भगवाञ्शंभुः सर्वस्याऽऽद्योऽपि सन्निभुः ।  
 चतुर्मुसस्य पुत्रत्वमगमत्केन हेतुना ॥ १ ॥

१ ( क. स. ग. ) नित्य योग २ ( घ. इ. ) भ्या तु गुणो ३ ( क. ख. ग. ) व्याहृदः ।  
 ४ ( क. ख. ग. ) ताल् ५ ( क. ख. ग. ) त मा महादेव इति प्रो ६ ( क. ख. ग. )  
 ७ त्रयोविंश

दक्षिणाङ्गमवो ब्रह्मा महादेवस्य झूलिनः ।  
 कथं तत्प्रयोनित्वं विरञ्चैरिति नो वद ॥ ३ ॥  
**मृत उवाच**-आसीदेकार्णवे घोरे नष्टे वै सचराचरे ।  
 देवाश्च दानवाश्चैव मुनयो मनवस्तथा ॥ ३ ॥  
 निर्विद्यन्ते तदा तस्मिन्संजाते प्रतिसंचरे ।  
 नारायणो महायोगी शेते तस्मिन्स्तमोपये ॥ ४ ॥  
 योगनिद्रां समासाद्य शेषाहिशयने द्विजाः ।  
 उद्धृतं पङ्कजं तस्य नामो भगवतो हरेः ॥ ५ ॥  
 दिव्यगन्धसमोपेतं शतयोजनविस्तृतम् ।  
 तस्यैव शयनस्थस्य दिव्यं वर्षशतं गतम् ॥ ६ ॥  
 ब्रह्मा जगाम तं देशं यत्राऽऽस्ते पुरुषोत्तमः ।  
 समुत्थाप्य च तं ब्रह्मा करेण मधुसूदनम् ॥ ७ ॥  
 मायया मोहितो ब्रह्मा तमुवाच सुरेश्वरम् ॥ ७ ॥  
 अस्मिन्नेकार्णवे घोरे शेते कोऽत्र भवानहो ।  
 ब्रह्मीत्युक्तेऽब्रवीद्विष्णुर्ब्रह्माणं तेजसां निधिः ॥ ८ ॥  
 न जानासि कथं मूढ मामन्तर्पार्मिणं विमुम् ।  
 सर्वस्याऽऽद्यं सुरश्रेष्ठं जानीहीत्यब्रवीद्विभुः ॥ ९ ॥  
 एवमुक्त्वा पुनश्चक्री जानन्नपि पितामहम् ।  
 को भवानिति तं प्राह ब्रह्मा हरिमथाब्रवीत् ॥ १० ॥  
 अहं वै सर्वभूतानामाद्यः सर्वजगत्पतिः ।  
 ब्रह्माणं मां परं देवं जानीहि पुरुपर्यभ ॥ ११ ॥  
 चराचरात्मकं विश्वं मयि तिष्ठति सर्वदा ।  
 मय्येव विलयन्ते पुनरेव न संशयः ॥ १२ ॥  
 एवं पितामहेनोक्तो भगवान्कमलापातिः ।  
 प्रविष्टो ब्रह्मणो देहं तत्र लोकान्ददर्श सः ॥ १३ ॥  
 विस्मितः कमलाकान्तो निर्गतश्च विधेर्मुखात् ।  
 सहस्रशीर्षो पुरुषः पुनर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥ १४ ॥  
 विधे त्वमपि भदेहं प्रविश्याथु विलोकय ।  
 चराचरात्मकाल्लोकान्सदेवासुरमानुषान् ॥ १५ ॥

ततो विरिञ्चिर्भगवानुदरं कमलापतेः ।  
 प्रविश्य भुवनान्सर्वान्दृष्ट्वाऽभृद्विस्मितो विधिः ॥ १६ ॥  
 नापश्यन्निर्गमेद्वारं पिहितानि च चक्रिणा ।  
 ततोऽसौ नाभिपद्मस्य तालमार्गमविन्दत ॥ १७ ॥  
 तेन मार्गेण निर्गत्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।  
 रजे पद्मजमध्यस्थो देवदेवः पितामहः ॥ १८ ॥  
 तमब्रवीद्ब्रह्मविदां ब्रह्मणमभितर्षतिः ।  
 लीलार्थमेतत्सकलं पितामह कृतं मया ॥ १९ ॥  
 न मात्सर्यात्सुरश्रेष्ठ द्वाररोधो मया कृतः ।  
 त्वमेव जगतो मान्यः सर्वस्पाऽऽद्यः पितामहः ॥ २० ॥  
 पुत्रत्वे त्वामहं याचे देहि मे कमलासन ।  
 पद्मयोनिरिति ख्यातिं मत्प्रियार्थं गमिष्यसि ॥ २१ ॥  
 ततः स्वयंभूविश्वादिश्चक्रिणे वरमुत्तमम् ।  
 दत्त्वा प्रहर्षमगमत्सर्वभृतात्मको विभुः ॥ २२ ॥  
 ततस्तमब्रवीद्विष्णुं नाऽऽवाभ्यां विद्यते परम् ।  
 त्वन्मयं भन्मयं सर्वमेका मूर्तिर्द्विधा स्थिता ॥ २३ ॥  
 एवं निर्गदितो विष्णुर्ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।  
 विरञ्चयं प्रतिज्ञा ते निष्फलैव भविष्यति ॥ २४ ॥  
 किं न पश्यसि विश्वेशं स्वयंज्योतिः सनातनम् ।  
 सर्वात्मकमुमाकान्तमनादिनिधनं परम् ॥ २५ ॥  
 गच्छाऽऽवाभ्यां परं देवमधिकं शरणं विधे ।  
 एवं हरेर्निर्गदितं श्रुत्वा ब्रह्मा तमब्रवीत् ॥ २६ ॥  
 आवाभ्यामधिकः कश्चिद्विद्येतेति मुधा हरे ।  
 भापसे निद्रयाऽऽविष्टस्त्यज मोहं महामते ॥ २७ ॥  
 \* विष्णुरुवाच—मेवं विधे यदज्ञात्वा परं भावं महेश्वरे ।  
 अस्तीति नान्यथाऽहं ते ब्रवीमि कमलासन ॥ २८ ॥  
 मोहितात्मा न संदेहो मापया परमेष्ठिनः ।  
 मायी विश्वात्मको रुद्रो मायागक्तिस्तु शांकरौ ॥ २९ ॥

\* पद्मजमध्यस्थो देवदेवः पितामहः इति विष्णुरुवाचोक्तिः नास्ति ।

१ (घ.) ०मस्थान पि० २ (ख ग घ च. छ. ज.) युतिम् । ली० ३ (घ इ. च. छ. ज.) ०मेकमु० ४ (घ. ख ग.) ०शयति वि० ५ (क ख ग घ) ०श्वम् । नास्ती० ६ (घ.) ०८ । नास्तीति न्य० ।

यस्मात्सर्वमिदं ब्रह्मन्विष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम् ।  
 महाभूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं संप्रसूयते ॥ ३० ॥  
 सर्वैश्वर्येण संपन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम् ।  
 सर्वैर्मुमुक्षुभिर्व्येयः शंभुराकाशमध्यगः ॥ ३१ ॥  
 योऽग्रे त्वां विदधे पुत्रं तव वेदांश्च दत्तवान् ।  
 यत्प्रसादात्त्वया लब्धं प्राजापत्यमिदं पदम् ॥ ३२ ॥  
 एको बहूनां जन्तूनां निष्क्रियाणां च सत्क्रियाः ।  
 य एकं बहुधा बीजं करोति स महेश्वरः ॥ ३३ ॥  
 जीवैरेभिरिमाँल्लोकान्सर्वानेको य ईशते ।  
 य एको भगवान् रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ॥ ३४ ॥  
 सदा जनानां हृदये संनिविष्टोऽपि यः परैः ।  
 अलक्ष्यो लक्षयन्विश्वमधितिष्ठति सर्वदा ॥ ३५ ॥  
 यस्तु कालात्मयुक्तानि कारणान्यपि लीलया ।  
 अनन्तशक्तिरेकात्मा भगवानधिंतिष्ठति ॥ ३६ ॥  
 यस्य शंभोः परा शक्तिर्भावगम्या मनोहरा ।  
 निर्गुणा स्वगुणैरेव निगूढा निष्कला शिवा ॥ ३७ ॥  
 एष देवो महादेवो विज्ञेयः सर्वदा जनैः ।  
 न तस्य परमं किञ्चित्पदं समधिगम्यते ॥ ३८ ॥  
 अयमादिरनाद्यन्तः स्वभावादेव निर्मलः ।  
 अनन्तः परिपूर्णश्च स्वेच्छाधीनश्चराचरः ॥ ३९ ॥  
 उत्तरोत्तरभूतानामुत्तरश्च निरुत्तरः ।  
 अनन्तमहिमो भूमिरपरिच्छिन्नवैभवं ॥ ४० ॥  
 अनेन चित्रकृत्पेन प्रथमं सृज्यते जगत् ।  
 अन्तकाले पुनश्चेदमस्मिन्प्रलयमेष्यति ॥ ४१ ॥  
 दृश्यश्च पतितैर्भूद्वैर्दुर्जनैरपि कुत्सितैः ।  
 भक्तैरन्तर्बहिश्चापि पूज्यः संभोग्य एव च ॥ ४२ ॥  
 तदीयं त्रिविधं रूपं स्थूलं सूक्ष्मं ततः परम् ।  
 अस्मदाद्यैः सुरैर्दृश्यं स्थूलं सूक्ष्मं तु योगिभिः ॥ ४३ ॥

१ (घ. ड. च. छ.) ०धन्त्रद्वय० २ (क. ख. ग.) सपूर्णं ना० ३ (घ.) ०भे  
 मां पि० ४ (क. ख. ग. ज.) परम् । ५ (घ. ड. च. छ.) ०णा म स० ६ (छ.)  
 ०त्रियः । ७ (घ. ड. च. छ.) ०ताभिः का० ८ (घ. ड. च. छ. ज.) ०रेवा  
 ५५मा । ९ (क. ख. ग. घ.) ०नारमा । नि० १० (क. ख. ग.) ०मा ना० ११ (क.  
 ख. ग.) ०दुर्जनैः १२ (क. ख. ग. घ.) ०माय्य ए०

ततः परं तु यन्नित्यं ज्ञानमानन्दमव्ययम् ।  
 तन्निष्ठैस्तत्परैर्भक्तैर्दृश्यते ब्रतमास्थितैः ॥ ४४ ॥  
 बहुनाऽत्र किमुक्तेन ब्रह्मन्सर्वेश्वरे ज्ञावे ।  
 भक्तिरेव सदा कार्या यया युक्तो विमुच्यते ॥ ४५ ॥  
 प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसंभवः ।  
 यथेहाङ्कुरतो बीजं बीजतो वा यथाऽङ्कुरः ॥ ४६ ॥  
 तस्य प्रसादलेशेन पशोः पाशपरिक्षयः ।  
 तस्मात्पशुपतिः शंभुः पशवस्त्वस्मदादयः ॥ ४७ ॥  
 सर्वेषां मुक्तिदः शंभुस्तेषां भावानुद्धपतः ।  
 गर्भस्थो मुच्यते कश्चिज्जायमानस्तथा परः ॥ ४८ ॥  
 बालो वा तरुणो वाऽथ वृद्धो वा मुच्यते परः ।  
 तिर्यग्योनिगतः कश्चिन्मुच्यते नारकी परः ॥ ४९ ॥  
 शपरस्तूदरप्राप्तो मुच्यते स्वपदक्षयात् ।  
 कश्चित्क्षीणपदो भूत्वा पुनरावर्त्य मुच्यते ॥ ५० ॥  
 कश्चिदूर्ध्वगतस्तस्मिन्स्थित्वा स्थित्वा विमुच्यते ।  
 तस्मान्नैकप्रकरणं नाराणां मुक्तिरिष्यते ॥ ५१ ॥  
 ज्ञानभावानुद्धपेण प्रसादेनैव निर्वृतिः ।  
 त्वमेका भगवन्मूर्तिरन्या नारायणी परा ॥ ५२ ॥  
 रौद्री तृतीया कथिता स्वगत्संहारकारिणी ।  
 एतासां प्रेरकः शंभुः स्वे स्वे कार्ये चतुर्मुख ॥ ५३ ॥  
 निर्गुणोऽपि गुणाध्यक्षः स्वतन्त्रैश्वर्यविग्रहः ।  
 तमीश्वरं महादेवं न पश्यसि कथं विधे ॥ ५४ ॥  
 दिव्यं ददामि ते चक्षुर्येन पश्यसि तं शिवम् ।  
 विष्णोर्भगवतो ब्रह्मा दिव्ये चक्षुरवाप्य तु ॥ ५५ ॥  
 अपश्यत्स महादेवं प्रत्यक्षं पुरतः स्थितम् ।  
 ब्रह्मा लब्ध्वा परं ज्ञानमैश्वरं निर्गुणं परम् ॥ ५६ ॥  
 तमेव शरणं गत्वा संस्तूय विविधैः स्तवैः ।  
 प्रीतो भूत्वा महादेवश्चतुर्मुखमथाब्रवीत् ॥ ५७ ॥

**ईश्वर उवाच**—स्तोत्रैर्वहुविधैर्भक्त्या तोपितोऽहं विधे त्वया ।

मुक्तो भविष्यसि क्षिप्रं मत्सम्पन्नं न संशयः ॥ ५८ ॥

मयैव छेष्टः छेष्टार्थं त्वमेव च जनार्दनः ।

वरं ददामि ते ब्रह्मन्वरयस्व यथेप्सितम् ॥ ५९ ॥

एवं शंभोर्निगदितं श्रुत्वा चैव पितामहः ।

विष्णुं निरीक्ष्य पुरतः स्थितमार्हं महेश्वरम् ॥ ६० ॥

**ब्रह्मोवाच**—भगवन्देवदेवेश सर्वज्ञ गिरिजापते ।

त्वामेव पुत्रमिच्छामि त्वया वा सदृशं सुतम् ॥ ६१ ॥

त्वन्मायामोहितः शंभो न वेत्ति त्वां परं शिवम् ।

नमामि तव पादाब्जं योगिनां भवभेषजम् ॥ ६२ ॥

श्रुत्वा विरञ्चैर्वचनं देवदेवः पिनाकधृक् ।

ब्रह्माणमब्रवीत्पुत्रं समालोक्याथ चक्रिणम् ॥ ६३ ॥

प्रार्थितं यच्चया ब्रह्मंस्तत्करिष्यामि पुत्रक ।

अहमंशेन भविता पुत्रंस्तव पितामह ॥ ६४ ॥

ज्ञानं मद्भिषयं क्षिप्रं भविष्यति तवानघ ।

सृज त्वं मत्प्रसादेन चराचरमिदं जगत् ॥ ६५ ॥

एष योगीश्वरः शार्ङ्गो ममैवांशो न संशयः ।

साहोऽयं भविता ब्रह्मन्ममाऽऽदेशात्तवानघ ॥ ६६ ॥

एवं दत्त्वा वरं शंभुर्ब्रह्मणे द्विर्जसत्तमाः ।

अथाब्रवीद्दृषीकेशं प्राञ्जालं पुरतः स्थितम् ॥ ६७ ॥

वरं वरय दास्यामि तव नारायणावप्यं ।

नाऽऽवाभ्यां विद्यते भेदो मच्छक्तिस्त्वं न संशयः ॥ ६८ ॥

त्वन्मयं मन्मयं सर्वमव्यक्तं पुरुषात्मकम् ।

ज्ञानज्ञेयात्मकं विश्वं त्वन्मयं मन्मयं हरे ॥ ६९ ॥

ज्ञाताऽहं ज्ञानरूपस्त्वं मन्ताऽहं त्वं मतिर्हरे ।

प्रकृतिस्त्वं सुरश्रेष्ठ पुरुषोऽहं न संशयः ॥ ७० ॥

त्वं चन्द्रमा अहं सूर्यः शर्वरी त्वमहं दिनम् ।

त्वमेव माया विश्वस्य मायाऽहं परमो विभो ॥ ७१ ॥

\* ब्रह्मोवाचात् घट उद्यमानतपुस्तकेषु नास्ति ।

( ४८. न. ४४. ज. ) मू. : २ ( ज. ) ०५ पर. व. ॥ ६० ॥ ३ ( ४ ) ०५५  
 ( ४. ५. ५ ) ०५५५-५५५५ भा. ५५ ०५५५ ( ५. ५ ) ०५५५ ५५५५ ( ५. ५  
 ०५५५ ॥ ७१ ॥

एवं शंभोर्वचः श्रुत्वा वामुदेवो निरञ्जनः ।

अब्रवीत्परमात्मानं मातृदेवं द्विजोत्तमाः ॥ ७२ ॥

**विष्णुरुवाच**—निश्चला त्वयि मे भक्तिर्भवत्वव्यभिचारिणी ।

वैरैः किमन्यैर्भगवन्करोस्मि सूरपूजित ॥ ७३ ॥

एवमस्त्वित्यथाऽऽभाष्य समालिङ्ग्य च शाङ्गिणम् ।

पालयैतन्ममाऽऽदेशादित्युक्त्वाऽन्तर्हितो हरः ॥ ७४ ॥

अभवद्ब्रह्मणः पुत्रो यथा देवत्रिलोचनः ।

तथा सर्वमशेषेण कथितं मुनिपुङ्गवाः ॥ ७५ ॥ १०९५ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे ब्रह्म-

पत्रयोनित्वादिकथनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

**ऋषय ऊचुः**—कथं भगवती गौरी शंकरार्धशरीरिणी ।

परब्रह्मात्मिका नित्या परमाऽऽकाशमध्यगा ॥ १ ॥

सर्वशक्तिमयी शान्ता निर्गुणा निरुपद्रवा ।

आदिमध्यान्तरहिता सर्वोपाधिविवर्जिता ॥ २ ॥

स्वभाभिर्भासयन्तीदं विश्वमेतत्सुरेश्वरी ।

नित्यानन्दा निरातङ्गा निर्विभागा निरञ्जना ॥ ३ ॥

पृथक्शरीरमकरोत्कथ सा परमेश्वरी ।

वयं तच्छ्रोतुमिच्छामः सूत वक्तुमिहार्हसि ॥ ४ ॥

**सूत उवाच**—विश्वेश्वरान्महादेवाद्द्वरं लब्ध्वा पितामहः ।

प्रजाः ससर्ज भगवान् व्यवर्धन्त ताः प्रजाः ॥ ५ ॥

दुःस्वितोऽभूत्तदा ब्रह्मा प्रजा दृष्ट्वा तु दुर्बलाः ।

मेनेऽकृतार्थमात्मानं प्रादुर्भूतस्ततो हरः ॥ ६ ॥

ब्रह्माणमब्रवीच्छंभुर्ज्ञातं त्वद्दुःखकारणम् ।

सर्वतः शर्मणे यत्र भविष्यति तवानघ ॥ ७ ॥

क्रियतां वै तथेत्पुक्त्वा कर्तुं समुपचक्रमे ।

अर्धनारीश्वरो देवः स्वयं विश्वेश्वरः शिवः ॥ ८ ॥

नारीभागान्महादेवः ससर्ज पृथग्वीश्वरीम् ।

ब्रह्मात्मिकां परां शक्तिं कोटिबालार्कभासुराम् ॥ ९ ॥

न तस्या विद्यते जन्म जातेति किल भाति या ।  
 परं भावं न जानन्ति यस्या ब्रह्मादयः सुराः ॥ १० ॥  
 यस्यास्तु शक्तिभिर्वाच्या ब्रह्माण्डानां च कोटयः ।  
 भर्तुरङ्गाद्विभक्तेव दृष्टा साऽथ विरञ्चिना ॥ ११ ॥  
 अत्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा विश्वेश्वरौ पितामहः ॥ १२ ॥  
**ब्रह्मोवाच**—त्वां नमामि शिवां शान्तामीश्वरार्थशरीरिणीम् ।  
 अनाद्यनन्तविभवां मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥ १३ ॥  
 जन्ममृत्युजरातीर्तां जन्ममृत्युजरापहाम् ।  
 क्षेत्रज्ञशक्तिनिलयां परमाकाशमध्यगाम् ॥ १४ ॥  
 ब्रह्मेन्द्रविष्णुनमित्तामष्टमूर्त्यङ्घ्रिनीप्रजाम् ।  
 प्रधानपुरुषातीर्तां सावित्रीं वेदमातरम् ॥ १५ ॥  
 ऋग्यजुःसामनिलयामृज्वां कुण्डलिनीं पराम् ।  
 विश्वेश्वरीं विश्वमयीं विश्वेश्वरपतिव्रताम् ॥ १६ ॥  
 विश्वसंहारकर्णीं विश्वमायाप्रवर्तिनीम् ।  
 सर्गस्थित्यन्तकरिणीं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणीम् ॥ १७ ॥  
 पाहि मां देवदेवेशि शरणागतवत्सले ।  
 नान्या गतिर्महेशानि मम त्रैलोक्यवन्दिते ॥ १८ ॥  
 त्वं माता मम कल्याणि पिता सर्वेश्वरः शिवः ।  
 सृष्टोऽहं त्रिपुरघ्नेन सृष्ट्यर्थं शंकरमिये ॥ १९ ॥  
 विविधाश्च प्रजाः सृष्टा न वृद्धिमुपयान्ति ताः ।  
 ततः परं प्रजाः सर्वा मैथुनप्रभवाः किल ॥ २० ॥  
 संवर्धयितुमिच्छामि कृत्वा सृष्टिमतः परम् ।  
 शक्तीनां खलु सर्वासां त्वत्तः सृष्टिः प्रवर्तते ॥ २१ ॥  
 नैव सृष्टं त्वया पूर्वं शक्तीनां यत्कुलं शिवे ।  
 सर्वेषां देहिनां देवि सर्वशक्तिप्रदायिनी ॥ २२ ॥  
 त्वमेव नात्र सन्देहस्तस्मात्त्वं वरदा भव ।  
 मम सृष्टिविवृद्धयर्थमंशेनैकेन शान्वते ॥ २३ ॥  
 मम पुत्रस्य दक्षस्य पुत्री भवै श्रुचिस्मिते ।  
 प्रार्थिता वै तदा देवी ब्रह्मणा मुनिपुङ्गवा ॥ २४ ॥

१ (क. ख. ग. घ.) ०श्वरौ प्राण० २ (घ. ङ. च. छ. ज.) ०मिता तथा मू० ३ (क. ख. ग.) याम स्वा दे० ४ (घ.) ०या सर्वे । ५ (ङ.) ०म शक्तिदि० ६ (क. ख. ग. ज.) ०त्र सुश्रार । प्रा०



एकां शक्तिं भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जाऽऽत्मसमप्रभाम् ।  
 आह तां प्रहसन्प्रेक्ष्य देवीं विश्वेश्वरो हरः ॥ २५ ॥  
 ब्रह्मणो वचनादेवि कुरु तस्यै यथेप्सितम् ।  
 आदाप शिरसा शंभोराज्ञां सा परमेश्वरी ॥ २६ ॥  
 अभवद्दक्षदुहिता स्वेच्छया ब्रह्मरूपिणी ।  
 पुनराद्या परा शक्तिः शंभोर्देहं समाविशत् ॥ २७ ॥  
 अर्धनारीश्वरो देवो विभातीति हि नः श्रुतिः ।  
 ततः प्रभृति विप्रेन्द्रा मैथुनप्रभवाः प्रजाः ॥ २८ ॥  
 एवं वः कथिता विप्रा देव्याः संभूतिरुत्तमा ।  
 पठेद्यः शृणुयाद्वाऽपि संततिस्तस्य वर्धते ॥ २९ ॥ ११२४ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे गौरीपृथ-  
 कशरीरत्वादिकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥  
**मूत उवाच**—हिरण्यगर्भः शिवयोर्लब्ध्वा वरमनुत्तमम् ।  
 असृजद्भगवान्ब्रह्मा मरीच्यादीनकल्मषान् ॥ १ ॥  
 मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।  
 दक्षमात्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजन्मनसा विभुः ॥ २ ॥  
 देवासुरमनुष्यांश्च पितृंश्चापि प्रजापतिः ।  
 असृजत्क्रमशः सर्वानन्धकारे च राक्षसान् ॥ ३ ॥  
 गन्धर्वान्स तथा नागान्यक्षांश्चापि सहस्रशः ।  
 असृजन्मुखतो विप्रान्बाहुभ्यां क्षत्रियान्विभुः ॥ ४ ॥  
 ऊरुद्वयात्तथा वैश्यान्पादाच्छूद्रान्ससर्ज ह ।  
 छन्दांसि वेदान्यज्ञांश्च कल्पसूत्रमतः परम् ॥ ५ ॥  
 वेदाङ्गानि ततः सृष्ट्वा मैथुनप्रभवामतः ।  
 सृष्टिं कर्तुं मूर्तिचक्रे देवदेवः पितामहः ॥ ६ ॥  
 स्वयमप्यर्धतो नारी त्वर्धेन पुरुषोऽभवत् ।  
 अर्धेन नारी या तस्माच्छतरूपाऽभ्यजायत ॥ ७ ॥  
 स्वायंभुवं मनुं ब्रह्मा चार्धेन वपुषाऽसृजत् ।  
 शतरूपां च या देवी तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥ ८ ॥

१ (क. स. श.) ०र्मध्ये सस० २ (घ. ङ. च. छ ) ०स्य ममेप्सि० (ज.) ०स्य मयोप्स०  
 ३ (क. स. ग. त ) ०न्धर्वांश्च त० ४ (घ.) मनश्चक्रे । ५ (घ. ङ. ज ) ०पा तु या ।

अन्वपद्यत भर्तारं मनुं स्वायंभुवं द्विजाः ।  
 प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायंभुवात्सृष्टौ ॥ ९ ॥  
 महात्मानौ महावीर्यौ शतरूपा व्यजीजनत् ।  
 द्वे कन्ये लक्षणोपेते द्वाभ्यां छष्टिरवर्धत ॥ १० ॥  
 आकृतिश्च प्रसूतिश्च रुचये प्रथमां ददौ ।  
 प्रसूतिं चैव दक्षाय स्वयं देवो मनुर्विराट् ॥ ११ ॥  
 चतस्रो विंशतिः कन्याः प्रसूत्यां संबभूवुरे ।  
 धर्माय प्रददौ दक्षः श्रद्धाद्या वै त्रयोदश ॥ १२ ॥  
 ददौ स भृगवे ख्यातिं सतीं देवाय शूलिने ।  
 मरीचये च संभूतिं स्मृतिमङ्गिरसे तथा ॥ १३ ॥  
 पुलस्त्याय ददौ प्रीतिं पुलहाय तथा क्षमाम् ।  
 संततिं क्रतवे चैव अनसूयां तथाऽत्रये ॥ १४ ॥  
 वसिष्ठाय ददावूर्जां स्वधां पितृगुणाय च ।  
 पावकाय तथा स्वाहां ददौ दक्षः प्रजापतिः ॥ १५ ॥  
 भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्नारायणप्रिया ।  
 देवौ धाताविधातारौ मेरोर्जामातरौ शुभौ ॥ १६ ॥  
 आयतिर्वियतिश्चैव मेरोः कन्ये महात्मनः ।  
 जभ्वनुस्तयोः पुत्रौ प्राणश्चाऽऽद्यश्च कथ्यते ॥ १७ ॥  
 मृकण्डुरथ तत्पुत्रो मार्कण्डेयां मृकण्डुतः ।  
 अभूद्भेदशिरा नाम प्राणस्य मुनिसत्तमाः ॥ १८ ॥  
 मरीचरयि संभूतिः पौर्णमासमसूयत ।  
 कन्याचतुष्टयं चैव श्रद्धादीनां द्विजोत्तमाः ॥ १९ ॥  
 कदमं चाम्बरीपं च पुलहात्सुपुत्रे क्षमा ।  
 दुर्वाससं तथा सोम दत्तात्रेयं च योगिनम् ॥ २० ॥  
 अनसूया तु सुपुत्रे पुत्रानत्रैरकल्पपोत् ।  
 सिनीवालीं कुहू चैव राकामनुमतिं तथा ॥ २१ ॥  
 स्मृतिश्चाङ्गिरसः पुत्रीः सूते लक्षणसंयुताः ।  
 प्रीत्यां पुलस्त्यादभवदत्तो निर्मानवैः सुतः ॥ २२ ॥  
 पूर्वजन्मनि योऽगस्त्यः ख्यातः स्वायंभुवेऽन्तरे ।  
 पुत्राणां पष्टिसाहस्रं संततिः सुपुत्रे क्रतोः ॥ २३ ॥

बालखिलया इति ख्याताः सर्वे ते चोर्ध्वरेतसः ।  
 वसिष्ठश्च तथोर्जायां सप्त पुत्रानजीजनत् ॥ २४ ॥  
 रजो गोत्रोऽर्ध्वबाहुश्च सवनश्चानघस्तथा ।  
 सुतपाः शुक्र इत्येते पुण्डरीका च कन्यका ॥ २५ ॥  
 ब्रह्मणस्तनयो वह्निर्योऽसौ रुद्रात्मकः स्मृतः ।  
 तस्मात्स्वाहा मुताल्लेभे त्रीनुदारान्गुणाधिकान् ॥ २६ ॥  
 पावकः पवमानश्च शुचिरेतेऽग्रपत्नयः ।  
 निर्मथ्यः पवमानश्च वैच्युतः पावकः स्मृतः ॥ २७ ॥  
 सूर्ये तपति यो वह्निः शुचिरग्निरिहेष्यते ।  
 बभूवुः संततौ तेषां चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ २८ ॥  
 पावकाद्याप्तपश्चैते चत्वारिंशत्तथा नव ।  
 यज्ञेषु भागिनः सर्वे तथा सर्वे तपस्विनः ॥ २९ ॥  
 रुद्रार्चनपराः सर्वे त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः ।  
 अयज्वानश्च यज्वानः पितरो ब्रह्मणः सुताः ॥ ३० ॥  
 अग्निष्वात्ता बर्हिषदो द्विधा तेषां व्यवस्थितिः ।  
 स्वधाऽनुसुपुवे सेभ्यः कन्ये द्वे लोकविश्रुते ॥ ३१ ॥  
 मेनां च धारिणीं तत्र योगमार्गरते उभे ।  
 मेना हिमवतः सूते मैनाकं क्रीञ्चमेव च ॥ ३२ ॥  
 गौरीं च गङ्गां च ततः कन्ये द्वे लोकमातरौ ।  
 मेरोस्तु धारिणी सूते मन्दरं चारुकन्दरम् ॥ ३३ ॥  
 महादेवभियतमं नानाधातुविचित्रितर्म ।  
 धारिणी सुपुवे वेलां नियतिं चाऽऽपतिं तथा ॥ ३४ ॥  
 सागरात्सुपुवे वेला सासुद्रीं नाम नामतः ।  
 प्राचीनबर्हिषा सा च दश पुत्रानजीजनत् ॥ ३५ ॥  
 प्राचेतस इति ख्याताः सर्वे स्वायंभुवेऽन्तरे ।  
 भवशापादभूत्पुत्रो येषां दक्षः प्रजापतिः ॥ ३६ ॥

१ ( क. ख. ग. ज. झ. ) ० गुताः पावकाः स्मृताः ॥ २७ ॥ २ ( घ. ङ. छ ) ० अग्निहे ०  
 ३ ( क. ख. ) ० पति । ४ ( ज. ) ० भूव सततिहेषा । ५ ( ड. छ. ) सुराः ॥ ३० ॥ ६ ( घ.  
 ख. ग. ज. ) च धरणीं चैव यो ७ ( क. ख. ग. ज. झ ) ० स्तु धरणा । ८ ( घ. ख. ग. ज.  
 झ ) ० ५ । धरणी ।

एषा दक्षस्य कन्यानां संततिः कथिता मया ।

अथेदानीं मनोः पुत्रसंततिं कथयामि वः ॥ ३७ ॥ ११६१ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे मरीच्यादि-  
सर्गदक्षकन्यासंततिकथनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

**सूत उवाच**—उत्तानपादस्य सुतो भुवो नाम महामनाः ।

आराध्य परमं देवं नारायणमनामयम् ॥ १ ॥

निर्ममो निरहंकारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः ।

प्रसादात्तस्य देवस्य प्राप्तवान्स्थानमुत्तमम् ॥ २ ॥

भुवस्य पुत्राश्चत्वारः सृष्टिर्धन्यस्तथा परः ।

हर्षः शंभुर्महात्मानो वैष्णवाः प्रथितौजसः ॥ ३ ॥

छाया पञ्च सुतान्सूते सृष्टेर्धर्मपरायणान् ।

रिपुं रिपुंजयं विप्रं वृषलं वृकतेजसम् ॥ ४ ॥

रिपोर्भार्या तु चूहती प्रसूते चक्षुषं सुतम् ।

सूते पुष्करिणीं पुत्रं चक्षुषश्चाक्षुषं मनुम् ॥ ५ ॥

तद्वंशजा असंख्याता अङ्गकतुशिवादयः ।

अङ्गाद्वेनस्ततो वैन्यस्तस्मात्पृथुरिति स्मृतः ॥ ६ ॥

रुंयातः स पृथिवीपालो येन दुग्धा वसुंधरा ।

न तत्समो नृपः कश्चिद्विद्यते पृथिवीतले ॥ ७ ॥

वासुदेवार्चनरतो वासुदेवपरायणः ।

तपसाऽऽराध्य गोविन्दं गोवर्धनगिरौ शुभे ॥ ८ ॥

भीतस्तमग्रवीद्विष्णुः पृथुं मुनिवरोत्तमाः ।

मत्प्रसादेन राजपे पुत्रौ तव भविष्यतः ॥ ९ ॥

सार्वभौमो महात्मानो मद्भक्तौ पितृवत्परो ।

एवं लब्धवरो राजा देवेशे पुरुपोत्तमे ॥ १० ॥

आस्थाय परमां भक्तिं भगवद्वाचमाश्रितः ।

पृथोर्भार्या महाभागा कालेन सुपुत्रे सुतौ ॥ ११ ॥

शिक्षण्डिनं हविर्धानं सुशीलञ्च शिक्षण्डिनः ।

श्वेताश्वतरनामानं शिवध्यानैकतत्परम् ॥ १२ ॥

१ ( इ. ) शंभुनेः । आ० २ ( छ. ) शंभुने नारायणपरा० ३ ( ग. घ. छ. ) ०णा-  
त् । रि० ४ ( घ. इ. ) शृत्त्वं । ५ ( क. ख. छ. ) शृत्त्वेण । ६ ( क. ख. ग. ज. इ. ) विष्णुः । ७ ( घ. इ. छ. ) ०वशात्परा० ८ ( घ. ख. ग. ज. इ. ) ०न शिवेण ।

उपास्य लब्धवांस्तस्मात्सुशीली योगमैश्वरम् ।

ऋषय ऊचुः-सुशीलेन कथं राज्ञा प्राप्तं ज्ञानमनुत्तमम् ॥ १३ ॥

वयं तच्छ्रोतुमिच्छामो ब्रूहि सूत महामते ॥ १४ ॥

सूत उवाच-योऽसौ शिखण्डिनः पुत्रो ब्रह्मचर्याश्रमे रतः ।

अधीत्य विधिवद्वेदान्परं वैराग्यर्मास्थितः ॥ १५ ॥

विचारः श्रेयसे तस्य कदाचित्समभूद्विजाः ।

प्रवृत्तं च निवृत्तं च कर्म यद्विविधं मतम् ॥ १६ ॥

तयोरात्यन्तिकी मुक्तिर्मम केन भविष्यति ।

इति संचिन्त्य मनसा जगाम हिमवद्विरिम् ॥ १७ ॥

तत्र धर्मवनं नाम मुनिसिद्धैर्निषेवितम् ।

अपश्यद्योगिभिर्जुष्टं महादेवकृतालयम् ॥ १८ ॥

यत्र सिद्धा महात्मानो मरीच्याद्या महर्षयः ।

नारायणश्च भगवांस्तथा चान्ये सुरासुराः ॥ १९ ॥

समाराध्य महादेवं सिद्धिं प्राप्ता ह्यनेकशः ।

यत्र मन्दाकिनी गङ्गा राजते ह्यघहारिणी ॥ २० ॥

अपश्यदाश्रमं तस्यास्तीरे योगीन्द्रसेवितम् ।

मन्दाकिनीजले तत्र स्नात्वाऽभ्यर्च्य महेश्वरम् ॥ २१ ॥

महादेवकथायुक्तैः स्तुत्वा स विविधैः स्तवैः ।

ध्यायमानः क्षणं तत्र स्थितो विश्वेश्वरं शिवम् ॥ २२ ॥

श्वेताश्वतरनामानमथापश्यन्महामुनिम् ।

महापाथुपतं शान्तं जीर्णकौपीनवाससम् ॥ २३ ॥

भस्मोद्भूलितसर्वाङ्गं त्रिगुण्डूलिलकान्वितम् ।

अभिवन्द्य मुनेः पादौ शिरसा प्राञ्जलित्यपः ॥ २४ ॥

अब्रवीत्तं मुनिश्रेष्ठं सर्वभूतानुकम्पिनम् ।

अद्य धन्यः कृतार्थोऽस्मि सफलं जीवितं मम ॥ २५ ॥

तपांसि सफलान्येव जातानि तव दर्शनात् ।

भवामि तव शिष्योऽहं रक्ष संसारजाद्रयात् ॥ २६ ॥

योग्यता मम चेदस्ति शिष्योऽहं भवितुं तव ।

सोऽनुगृह्याथ पुत्रत्वे राजानं मुनिपुङ्गवाः ॥ २७ ॥

कारयित्वा स संन्यासं ददौ योगमनुत्तमम् ।

यत्तत्पाशुपतं योगमन्त्याश्रममिति श्रुतम् ॥ २८ ॥

गुह्यं तत्सर्ववेदेषु वेदत्रिद्विरनुष्ठितम् ।

अनुग्रहान्मुनेस्तस्य सोऽगि पाशुपतोऽभवत् ॥ २९ ॥

वेदाभ्यासरतः शान्तो भस्मनिष्ठो जितेन्द्रियः ।

संन्यासविधिमाश्रित्य सुशीलो मुक्तिमान्भवेत् ॥ ३० ॥ १२९१ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे छतशौनकसंवाद उत्तानपादसंतत्यादि-

कथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

**सूत उवाच**—स्वपंभुवा समादिष्टः पूवं दक्षः प्रजापतिः ।

प्रजाः सृजेति सर्गादौ ससर्ज च सुरासुरान् ॥ १ ॥

प्रजापतेर्वीरणस्य कन्याऽसिक्रीति विश्रुता ।

पाष्टिं दक्षोऽसृजत्कन्या असिकन्यां वै प्रजापतिः ॥ २ ॥

ददौ च दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।

सप्तविंशतिं सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥ ३ ॥

द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते ।

द्वे चैवाङ्गिरसे तद्ददौ दक्षः प्रजापतिः ॥ ४ ॥

साध्या विश्वा च संकल्पा मुहूर्ता च हरुन्धती ।

मरुत्वती वसुभानुर्लम्बा जामिनि ता दश ॥ ५ ॥

धर्मस्य पद्मपस्त्वेतास्तासं संततिरुच्यते ।

साध्या वभूवुः साध्यायां विश्वायां विश्वदेवताः ॥ ६ ॥

संकल्पायास्तु संकल्पो मुहूर्तास्तु मुहूर्तजाः ।

अरुन्धत्यास्त्वरुन्धत्यां मरुत्वत्यां मरुत्वतः ॥ ७ ॥

वसोस्तु वसवः प्रोक्ता भानोस्ते भानवः स्मृताः ।

लम्बायां धोपनामानो नागर्वीथीस्तु जामिजाः ॥ ८ ॥

ज्योतिष्मन्तस्त्रयो देवा व्यापकाः सर्वतो दिशम् ।

वसवस्ते समारूपाताः सर्वभूतहितैपिणः ॥ ९ ॥

आपो नलश्च सोमश्च ध्रुवश्चैवानिलोऽनलः ।

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥

१ ( घ. ड. च. छ. ) ०न्वे भक्तिभाप्रवे० २ ( घ. ) ०नेर्वैरस्य । ३ ( घ. ) ०नेस्तु भा० । ४ ( क. ख. घ. ङ. ) धोपना० ५ ( घ. ) ०नेपितु जा० ( क. छ. ) नापितु जा०

ध्रुवस्य पुत्रः कालः स्यात्सर्वलोकभयंकरः ।  
 विश्वकर्मा प्रभासस्य धर्मस्यैषा तु संततिः ॥ ११ ॥  
 अदितिश्च दितिश्चैव दनुरित्परा मता ।  
 अरिष्टा सुरसा प्रोक्ता स्वधा सुरभिरेव च ॥ १२ ॥  
 विनता च तथा ताम्ना कद्रूः क्रोधवशा त्विरा ।  
 मुनेश्च पत्नयस्त्वेताः कश्यपस्य द्विजोत्तमाः ॥ १३ ॥  
 अंशुर्धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा ।  
 विवस्वान्सविता पूषा अंशुमान्विष्णुरेव च ॥ १४ ॥  
 तुषिता नाम ते पूर्वं चालुपस्पान्तरे मनोः ।  
 आदित्या अदितेः पुत्राः प्रोक्ता वैवस्वतेऽन्तरे ॥ १५ ॥  
 पुत्रद्वयं दितिः सूते कश्यपान्मुनिपुङ्गवात् ।  
 हिरण्यकशिपुं त्वेकं हिरण्याक्षमनन्तरम् ॥ १६ ॥  
 हिरण्यकशिपुर्योऽसौ ब्रह्मणो वरदपितः ।  
 शक्राद्या देवताः सर्वास्तेन दैत्येन बाधिताः ॥ १७ ॥  
 ब्रह्माणं शरणं गत्वा प्रोचुः प्राञ्जलयः सुराः ।  
 देवा ऊचुः—देवदेव जगन्नाथ चतुर्मुख सुरोत्तम ॥ १८ ॥  
 हिरण्यकेन दैत्येन शस्त्रास्त्रैः सूदिता वयम् ।  
 दाराश्चापहृतास्तेन वज्रादीन्यायुधानि च ॥ १९ ॥  
 त्रायस्वास्मान्भयत्रस्ताश्शरणं नान्यदस्ति नः ।  
 एवं सुरैर्निगदितं श्रुत्वा चैव पितामहः ॥ २० ॥  
 देवैः सह ययौ तूर्णं यत्राऽऽस्ते विष्णुरव्ययः ।  
 संस्तूय विविधैः स्तोत्रैरब्रवीत्कमलासनः ॥ २१ ॥  
 ब्रह्मोवाच—हिरण्यकशिपुर्देव मद्दरेणातिगर्वितः ।  
 बाधते सकलान्देवान्मुनीन्निर्धूतकल्मषान् ॥ २२ ॥  
 यस्तं हनिष्यति क्षिप्रं न तं पश्यामि माधव ।  
 त्वमेव हन्ता तस्येति मत्वा वयमुपागताः ॥ २३ ॥  
 हन्तुमर्हसि तं शीघ्रं देवानां कार्यसिद्धये ।  
 श्रुत्वा नारायणो वाक्यमीरितं त्रिदिवीकसाम् ॥ २४ ॥

नरस्वार्धतनुं कृत्वा सिंहस्वार्धतनुं तथा ।  
 त्रिसिंहरूपी भगवान्हिरण्यकशिपोः पुरे ॥ २५ ॥  
 आविर्बभूव भगवान्देवो नारायणः प्रभुः ।  
 सुञ्चनादं महाघोरमसुराणं भयंकरम् ॥ २६ ॥  
 हिरण्यकशिपुदंष्ट्रा त्रिसिंहमतिभीषणम् ।  
 वधाय प्रेषयामास प्रह्लादादीन्महासुरान् ॥ २७ ॥  
 प्रह्लादश्चानुह्लादश्च संह्लादो ह्लाद एव च ।  
 हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ॥ २८ ॥  
 नरसिंहेन ते सार्धं युयुधुर्दानवास्तदा ।  
 प्रह्लादः प्राहिणोद्ग्राह्यमद्यं तं नरकेसरिम् ॥ २९ ॥  
 वैष्णवाद्यमनुह्लादः कौमारं च तथाऽपरः ।  
 प्रादिणोद्धाद आग्नेयं तथा चान्ये महासुराः ॥ ३० ॥  
 चत्वार्यर्ध्याणि संप्राप्य भगवन्तं त्रकेसरिम् ।  
 वभूवुस्तानि भग्नानि यथा वज्राहता हुमाः ॥ ३१ ॥  
 गृहीत्वा चतुरः पुत्रान्हस्ताभ्यां नरकेसरिः ।  
 चिक्षेप गगनाद्गमौ गृहीत्वैवं पुनः पुनः ॥ ३२ ॥  
 एवं तान्व्यधितान्दंष्ट्रा हिरण्यकशिपुः स्वयम् ।  
 जाज्वल्यमानः कोपेन ययौ यत्र त्रकेसरिः ॥ ३३ ॥  
 विनिवृत्तोऽथ संग्रामात्प्रह्लादो दैत्यराट् ततः ।  
 ज्ञात्वा तु भगवद्भावं त्रिसिंहस्वार्धितौजसः ॥  
 ध्यात्वा नारायणं देवं वारयामास दानवान् ॥ ३४ ॥  
 एष नारायणो योगी परमात्मा सनातनः ।  
 ध्यातव्यो न तु योद्धव्यो भवद्भिरिति निश्चितम् ॥ ३५ ॥  
 पुत्रोदितमनाहृत्प हिरण्यकशिपुः पुनः ।  
 युयुधे हरिणा सार्धं यावद्वर्षशतत्रयम् ॥ ३६ ॥  
 अथ विश्वात्मको विष्णुः क्रोधसंरक्तलोचनः ।  
 नस्त्रैर्विदारयामास हिरण्यकशिपुं तदा ॥ ३७ ॥ १२२८ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे सुरासुर-  
 सप्रथादिकथनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

१ (प. द. उ.) ०शान्देवो नारायणः प्रभुः ॥ अ. ७ (प.) भगवत्कर्म ॥ २६ ॥ २ (द. प.) ०शान्देवो ॥ २७ ॥ ३ (क. ल. ग. न.) ०शान्देवो ॥ २८ ॥



\*मूत उवाच—हते हिरण्यकशिपो मह्नादो दैत्यसत्तमः ।  
 हिरण्याक्षं महाबाहुं राज्ये समभियोजयत्(?) ॥ १ ॥  
 सोऽपि देवाभ्रणे जित्वा स्वर्गात्ते वै पलायिताः ।  
 हिरण्याक्षो महादेवं तपसाऽऽराध्य चान्तकम् ॥ २ ॥  
 लभे पुत्रं महाबाहुं सर्वाभरनिपूदनम् ।  
 हिरण्याक्षभयादेवाः शाङ्गिणं शरणं गताः ॥ ३ ॥  
 दृष्ट्वाऽथ भगवान्देवान्हिरण्याक्षवधाय वै ।  
 वाराहं रूपमास्थाय हिरण्याक्षो निपूदितः ॥ ४ ॥  
 हते तस्मिन्हिरण्याक्षे मह्नादो वैष्णवाग्रणीः ।  
 त्यक्त्वा तु तामसीं वृत्तिं स्वकीयं राज्यमास्थितः ॥ ५ ॥  
 ततः कदाचिद्देवानां मापया मोहितोऽभवत् ।  
 कंचन ब्राह्मणं दृष्ट्वा क्रुशार्द्धं गृहमागतम् ॥ ६ ॥  
 अवज्ञामकरोदैत्यः शप्तस्तेनाग्रजन्मना ।  
 बलं यस्य समाश्रित्य दैत्य मामवमन्यसे ॥ ७ ॥  
 भक्तिर्विनश्यतु क्षिप्रं तव देवे जनार्दने ।  
 इति शक्या यथी विप्रः स्वाश्रमं मुनिपुङ्गवाः ॥ ८ ॥  
 अथ दैत्यपतिर्युद्धमकरोद्विष्णुना सह ।  
 पितुर्वधमनुस्मृत्य देवाश्चान्ये विनिर्जिताः ॥ ९ ॥  
 अनुग्रहाद्भगवतः पूर्वस्मादैत्यराट् पुनः ।  
 त्यक्त्वा मायामयं सर्वं शाङ्गिणं शरणं ययौ ॥ १० ॥  
 अभिपिच्यान्धकं राज्ये योगयुक्तोऽभवत्स्वयम् ।  
 अथ देवो मह्नादेवः शरण्यः सर्वदेहिनाम् ॥ ११ ॥  
 केनापि हेतुना भिक्षामकरोद्ब्राह्मणैः सह ।  
 संस्थाप्य भेन्द्रे देवीं गिरिजां गिरिजापतिः ॥ १२ ॥  
 सनारायणकान्देवानकरोत्पार्श्वगाञ्छिवः ।  
 स्त्रीरूपधारिणो देवाः सेवन्ते पार्वतीं तदा ॥ १३ ॥  
 संस्थाप्य नन्दिग्रमुत्थानसंख्यातान्गणेश्वरान् ।  
 भैरवं च समादिश्य नन्दिनं द्वारदेशतः ॥ १४ ॥

\* कक्षगमिहितपुरतकेषु सूत उवाचेति पदद्वय नास्ति ।

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो मन्दरं चान्धकामुरः ।  
 आहर्तुकामः शर्वाणीं तं दृष्ट्वा कालभैरवः ॥ १५ ॥  
 ताडयामास जूलेन पपात भुवि मूर्च्छितः ।  
 पुनरुत्थाय वेगेन गदात्मादाय दैत्यराट् ॥ १६ ॥  
 भैरवं ताडयामास तथा चान्यान्गणेश्वरान् ।  
 दृष्ट्वा तदद्भुतं पुद्गं विष्णुर्दानवमर्दनः ॥ १७ ॥  
 अष्टजच्छक्तयोः दिव्यास्ताभिर्दित्यः पराजितः ।  
 ततो वधाप भगवान् रुद्रो मन्दरपर्वतम् ॥ १८ ॥  
 प्राप्तो यत्र स्थिता देवी देवैः सह गणेश्वरैः ।  
 दृष्ट्वा विश्वेश्वरं देवी शीघ्रं परमया मुदा ॥ १९ ॥  
 ननाम शिरसा भक्त्या भर्तुश्चरणपङ्कजम् ।  
 प्रणम्य दण्डवद्विष्णुं यद्भुक्तं तत्रयवेदयत् ॥ २० ॥  
 श्रुत्वा तद्विस्मितो भूत्वा देव्या सह वरासने ।  
 उपविष्टस्तदा सर्वे देवाः प्राञ्जन्त्यैः स्थिताः ॥ २१ ॥  
 अधास्मिन्नन्तरे प्राप्तो हिरण्यनयनात्मभूः ।  
 युयुधे स सुरैः सार्धं मातृभिश्च गणैः सह ॥ २२ ॥  
 तेन ते निर्जिता देवाः शक्राद्याः सह मातृभिः ।  
 युद्घं तदद्भुतं दृष्ट्वा शार्ङ्गां शंकरमघवीत् ॥ २३ ॥  
 यथाऽसौ हन्यते दैन्यस्तथोपायं कुरु प्रभो ।  
 एवं हरेर्वचः श्रुत्वा शंकरः कालभैरवम् ॥ २४ ॥  
 वधाप प्रेषयामास दैत्येन्द्रस्य वन्दीपसः ।  
 ततः स भैरवः शंभोः शिवस्याऽऽज्ञां विधाय च ॥ २५ ॥  
 आदाय सहता शूलं कर्षी दैत्यस्य संहरत् ।  
 शूलप्रेण विनिर्भिक्ष ननर्त स्वात्मन्दीन्यपा ॥ २६ ॥  
 शूलप्रे स्थापिते दैत्ये ब्रह्माद्या मुनयस्तदा ।  
 अस्तुवन्विधिः स्तोत्रैर्दृष्टो लोकस्तदाऽभवत् ॥ २७ ॥

**अन्धक उवाच**-नमामि मुग्धा भगवन्तमेकं समाहिता यं विद्वेरीशतत्त्वम् ।  
 पुरातनं पुण्यमनन्तरूपं कालं कवि योगविपोगहेतुम् ॥ २८ ॥

\* भय दृष्ट्वा तदाहर्तुकामरेषु शरणं शतं प्रथमविभक्तान् पदं वसेत् । तत्र हितायार्थं  
 ध्यात्वा बोधय । भाष्यं १ वृ ।

१ ( पृ २, प. ) ७५५ देवि ( ११ देव २१० ) २ ( पृ ३ ) ७५५ देव ॥ २१ ॥ ३ ( पृ ४ )  
 ७५५ देव ॥ २२ ( पृ. ) ७५५ देव ॥ २३ ( पृ. ) ७५५ देव ॥ २४ ( पृ. ) ७५५ देव ॥

दंष्ट्राकरालं दिवि वृत्त्यमानं हुताशवक्त्रं ज्वलनार्कैरूपम् ।  
 सहस्रपादाक्षिशरोभियुक्तं भवन्तमेकं प्रणमामि रुद्रम् ॥ २९ ॥  
 जयादिदेवांमरपूजिताङ्घ्रे विभागहीनामलतत्त्वैरूपम् ।  
 त्वमग्निरेको बहुधा विभुज्यसे वाद्यादिभेदैरखिलात्मरूपः ॥ ३० ॥  
 त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।  
 त्वं पश्यसीदं परिपास्यजस्रं त्वमन्तको योगिगणाभिजुष्टः ॥ ३१ ॥  
 एकान्तरात्मा बहुधा निविष्टो देहेषु देहादिविशेषहीनः ।  
 त्वमात्मतत्त्वं परमार्थशब्दं भवन्तमाहुः शिवमेव केचित् ॥ ३२ ॥  
 त्वमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रमानन्दरूपं प्रणवाभिधानम् ।  
 त्वमीश्वरो वेदविदेषु सिद्धः स्वार्थभुवोऽशेषविशेषहीनः ॥ ३३ ॥  
 त्वमिन्द्ररूपो बर्हणोऽग्निरूपो हंसः प्राणो मृत्युरन्नाधियज्ञः ।  
 प्रजापतिर्भगवानेकरूपो नीलश्रीवस्तूयसे वेदविद्धिः ॥ ३४ ॥  
 नारायणस्त्वं जगतामनादिः पितामहस्त्वं प्रपितामहेश्च ।  
 वेदान्तगुह्योपनिषत्सु गीतः सदाशिवस्त्वं परमेश्वरोऽसि ॥ ३५ ॥  
 नमः परस्तात्तमसः परस्मै परात्मने पञ्चपरान्तराय ।  
 त्रिमूर्त्यतीताय निरञ्जनाय सहस्रशक्त्यासनसंस्थिताय ॥ ३६ ॥  
 त्रिमूर्त्येऽनन्तपरात्ममूर्त्ये जगन्निवासाय जगन्प्रयाय ।  
 नमो ललाटापितलीचनाय नमो जनानां हृदि संस्थिताय ॥ ३७ ॥  
 कर्णोन्द्रहाराय नमोऽस्तु तुभ्यं मुनीन्द्रसिद्धार्चितपादपद्म ।  
 ऐश्वर्यधर्मासनसंस्थिताय नमः परान्ताय भवोद्भवाय ॥ ३८ ॥  
 सहस्रचन्द्रार्कसमूहमूर्त्ये नमोऽग्निचन्द्रार्कत्रिलोचनाय ।  
 नमोऽस्तु सोमायनमध्यमाय नमोऽस्तु देवाय हिरण्यवाहवे ॥ ३९ ॥  
 नमोऽस्तिगुह्याय गुहान्तराय वेदान्तविज्ञानविनिश्चिताय ।  
 त्रिकालहीनामलधामधान्त्रे नमो महेशाय नमः शिवाय ॥ ४० ॥  
 स्तवेनानेन भगवान्मीतो भूत्वाऽथ भैरवः ।  
 अवरोह्य च गूलाग्राहुवाच परमेश्वरः ॥ ४१ ॥  
 त्वपाऽहं स्तोत्रवर्षेण तोपितो दैत्यपुङ्गव ।  
 प्रीतोऽस्मि तव दास्यामि गाणपत्यं हि दुर्लभम् ॥ ४२ ॥  
 नन्दीश्वरसमो वत्स भृङ्गी नाम गणो भव ।  
 एवं लघ्वरो दैत्यः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ ४३ ॥

१ (घ. इ. ङ. ज) ० वा यजनादधिपन्न वि० २ (घ. ङ. ग.) ० रूपः । त्व० ३ (घ. ङ. ग.) विद्युन्म० ४ (घ. ङ.) ० कृष्णाग्नि० । ५ (घ. ङ. ग.) ० मयिः इत्थ० ६ (घ. इ. ङ.) ० इतराम् । त्व० ७ (घ. इ. ङ. ज) ० अरनात्त० ८ (घ.) ० अन्तराय ॥ ३८ ॥

नीलकण्ठस्त्रिनेत्रश्च वृषकेतुर्जटाधरः ।  
 तं दृष्ट्वा देवताः सर्वाः हर्षनिर्भरमानसाः ॥ ४४ ॥  
 तुष्टुवुर्गणराजं तं भैरवस्य समीपगम् ।  
 अथ शंभोः समीपस्थां देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम् ॥ ४५ ॥  
 संस्तूय सर्वभावेन शरणागतवत्सलाम् ।  
 पुत्रत्वे जगृहे दैत्यं प्रीतिन मनसा शिवा ॥ ४६ ॥  
 ततोऽनुज्ञां महेशस्य लब्ध्वाऽसौ कालभैरवः ।  
 मातृभिः सह विश्वात्मा पाताले स्वपुरं ययौ ४७ ॥  
 \*विष्णोर्भगवती मूर्तिर्यत्राऽऽस्ते तामसी परा ।  
 अथ तां भैरवो दृष्ट्वा मुदा तां परिपस्वजे ॥ ४८ ॥  
 एकैव मूर्तिरभवत्तयोर्भैरवशाङ्किणोः ।  
 कालाभिर्भैरवो योऽसौ स एव बृहदिः स्वयम् ॥ ४९ ॥  
 भगवान्बृहदरिरोऽसौ स एव किल भैरवः ।  
 बृहरेः पूजनान्नूनं प्रीतो भवति भैरवः ॥ ५० ॥  
 पूजनाद्भैरवस्यैव बृहदिः पूजितो भवेत् ।  
 ये पश्यन्ति तयोर्भेदं मायया मोहिता जनाः ॥ ५१ ॥  
 निरये ते विपच्यन्ते यावदाभूतसंश्रुवम् ॥ ५२ ॥  
 तस्मात्पूज्या सदा मूर्ती रुद्रनारायणात्मिका ।  
 प्रीता भूत्वा भगवती भवत्यज्ञानहारिणी ॥ ५३ ॥  
 एवं संक्षेपतः प्रोक्तो मयाऽन्धकवधो द्विजाः ।  
 प्रादुर्भावो भैरवस्य तस्य चैव पराक्रमः ॥ ५४ ॥  
 इमं यः पठतेऽध्यायं महादेवस्य संनिधौ ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवस्यानुचरो भवेत् ॥ ५५ ॥ १२८३ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसीरे सूतशौतकसंवादे हिरण्यस्त-  
 वधादिकथनं नामोत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥  
 सूत उवाच—हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रहादो दैत्यसत्तमः ।  
 अन्धके निहते दैत्ये तत्र राज्ये स्थितः स्वयम् ॥ १ ॥  
 कृत्वा स मृचिरं कालं राज्यं परमधार्मिकः ।  
 राज्ये विरक्तो मतिमौञ्शमादिगुणसंयुतः ॥ २ ॥

\* यद्दृष्ट्वा तत्रैव तत्रैव शोके न विपते ।

राज्ये मतिमतां श्रेष्ठो ह्यभिषिच्य विरोचनम् ।  
 तपोवनं गतः सोऽथ वासुदेवपरायणः ॥ ३ ॥  
 विरोचनश्च निहतो देवदेवेन चक्रिणा ।  
 वलिस्तस्याभवत्पुत्रो दैत्यो धर्मपरायणः ॥ ४ ॥  
 बद्ध्वा नीतः स पातालं देवदेवेन चक्रिणा ।  
 वाणासुरस्तस्य सुतो भक्तो विश्वेश्वरे शिवे ॥ ५ ॥  
 दत्तं भगवता तस्मै गाणपत्यमनुत्तमम् ।  
 तारश्च शम्बरश्चैव कपिलः शंकरस्तथा ॥ ६ ॥  
 स्वर्भानुर्दृषपर्वा च वाणस्यैते सुता द्विजाः ।  
 कश्यपात्सुरसा जज्ञे खेचरान्मुनिपुङ्गवाः ॥ ७ ॥  
 अनन्ताद्याः काद्रवेया वलिनो बलवत्तराः ।  
 गन्धर्वाञ्जनयामास तथाऽरिष्टा तु कश्यपात् ॥ ८ ॥  
 विनता जनयामास विख्यातौ गरुडारुणौ ।  
 पश्वादीन्स्थावरान्तांश्च तथाऽन्यान्सुपुत्रुर्द्विजाः ॥ ९ ॥  
 स्थावराञ्जङ्गमांश्चैव समुत्पाद्याथ कश्यपः ।  
 पुनः संतानवृद्धयर्थं तताप परमं तपः ॥ १० ॥  
 तपःप्रभावात्संभूतौ वत्सरश्चासितः सुतौ ।  
 नैध्रुवो वत्सराज्जातो रैभ्यश्चैव महामतिः ॥ ११ ॥  
 सुमेधा सुपुत्रे पुत्रान्नैध्रुवान्कुण्डपापिनः ।  
 अस्मितादेकपर्णायां समभूद्देवलो मुनिः ॥ १२ ॥  
 आराध्य देवलः शंभुं परां सिद्धिमवाप्तवान् ।  
 शाण्डिल्यो देवलाज्जात एतेऽपत्यास्तु काश्यपाः ॥ १३ ॥  
 तृणविन्दुस्तु राजर्षिः कन्यामिलविलाभिधाम् ।  
 पुलस्त्याप ददौ तस्यां विश्रवाः समजायत ॥ १४ ॥  
 पुष्पोत्कटा तथा वाका कैकसी देववर्णिनी ।  
 चतस्रः पत्नयस्तस्य पौलस्त्यस्य महात्मनः ॥ १५ ॥  
 कुबेरो देववर्णिन्यां कैकस्यां रावणस्तथा ।  
 कुम्भकर्णः शृपेणस्ता तथैव च विभीषणः ॥ १६ ॥  
 पुष्पोत्कटायामभवंद्ययः पुत्राश्च कन्यकाः ।  
 महोदरः महस्तश्च महापार्श्वस्तथाऽपरः ॥ १७ ॥

तथा कुम्भनसी कन्या तस्य विश्रवसो द्विजाः ।  
 त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वो महाबलः ॥ १८ ॥  
 वाकायामभवन्पुत्रा रक्षसाः क्रूरकारिणः ।  
 भूता मृगाः पिशाचाश्च सर्वे वै दंष्ट्रिणस्तथा ॥ १९ ॥  
 पौलस्त्या इति ते सर्वे मरीचेः कश्यपः सुतः ।  
 भृगोः सकाशादभवच्छुक्रो देत्यगुरुर्महान् ॥ २० ॥  
 प्राप्ता संजीविनी विद्या येन शुक्रेण धीमता ।  
 महादेवं समाराध्य पुरा वदरिकाश्रमे ॥ २१ ॥  
 जारामरणनिर्मुक्तो वज्रकायो महामुनिः ।  
 योगाचार्य इति ख्यातः प्रसादाद्द्विरिजापतेः ॥ २२ ॥  
 अनसूया तु सृपुवे क्रमात्पुत्रत्रयं द्विजाः ।  
 दत्तात्रेयं चन्द्रमसं तथा दुर्वाससं मुनिम् ॥ २३ ॥  
 आत्रेया इति ते ख्याता निरपत्यस्तथा क्रतुः ।  
 वसिष्ठाय ददौ कन्यां नारदो मुनिपुङ्गवाः ॥ २४ ॥  
 अरुन्धतीमरुन्धत्यां शक्तिर्नाम वभूव ह ।  
 शक्तेः पराशरस्तस्मात्कृष्णद्वैपायनां मुनिः ॥ २५ ॥  
 द्वैपायनाच्छुक्रो जज्ञे पञ्च पुत्राः शुकस्य ते ।  
 भूरिश्रवाः प्रभुः शंभुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः ॥ २६ ॥  
 कन्या कीर्तिमती नाम वंश एते प्रकीर्तिताः ।  
 कश्यपाददितिल्लेभे भास्करं तेजसाऽधिकम् ॥ २७ ॥  
 संज्ञा राज्ञी प्रभा छाया भानोर्भार्याः स्मृतास्त्विमाः ।  
 सूते सूर्यान्मनुं संज्ञा यस्य वंशोऽभवन्नृपाः ॥ २८ ॥  
 यमं च यमुनां चैव राज्ञीरेवंतमेव च ।  
 प्रभा प्रभातमादित्याच्छाया सावर्णिमेव च ॥ २९ ॥  
 शनिं च तर्पतीं चैव विष्टिं चैव यथाक्रमम् ।  
 इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ॥ ३० ॥  
 नरिष्यन्तश्च नाभागो ह्यरिष्टः करुषस्तथा ।  
 वृषध्वजो महातेजा नव वैवस्वताः समाः ॥ ३१ ॥  
 इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च कन्या एतास्त्रयः(?) स्मृताः ।  
 इक्ष्वाकौश्चाभवत्पुत्रो विकुक्षिरिति विश्रुतः ॥ ३२ ॥

तस्य पुत्रशतं त्वासीत्ककुत्स्थो ज्येष्ठ ईरितः ।  
 तस्मात्सृषोधनो जज्ञे पृथुस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ ३३ ॥  
 विश्वकस्तस्य पुत्रोऽभूदमकस्तस्य वै सुतः ।  
 तस्मोच्छर्यातिरभवद्युवभाश्वश्च तत्सुतः ॥ ३४ ॥  
 श्रावस्तिस्तस्य पुत्रोऽभूच्छ्रावस्ती येन निर्मिता ।  
 तस्मात्कुवलयः खयातो धुन्धुमारिस्ततोऽभवत् ॥ ३५ ॥  
 धुन्धुमारेख्यः पुत्रा दृढाश्वद्या महौजसः ।  
 दृढाश्वस्य च दायादो हरिश्चन्द्रस्ततोऽभवत् ॥ ३६ ॥  
 रोहितस्तस्य पुत्रोऽभूद्रोहितस्यापि तत्सुतः ।  
 धुन्धुस्तस्माद्भूत्पुत्रो धुन्धोः पुत्रौ बभूवतुः ॥ ३७ ॥  
 सुदेवो विजयश्चैव कुरुको विजयात्समृतः ।  
 वृकोऽथ कुरुकाज्जज्ञे तस्माद्वाहुरभूत्सुतः ॥ ३८ ॥  
 सगरस्तस्य पुत्रोऽभूत्पौत्रस्तस्यांशुमान्समृतः ।  
 तस्य पुत्रो दिलीपस्तु तस्माज्जज्ञे भगीरथः ॥ ३९ ॥  
 प्रीतोऽभूत्तपसा शंभुर्ददौ वरमनुत्तमम् ।  
 गङ्गां बभार शिरसा रक्षार्थं जगतां हरः ॥ ४० ॥  
 दशायुतानां वर्षाणि द्विसहस्रं शतद्वयम् ।  
 महादेवाद्धरं लब्ध्वा राज्यं कृत्वा भगीरथः ॥ ४१ ॥  
 विरक्तो राज्यभोगेभ्यो विश्वं मत्वेन्द्रजालवत् ।  
 जाबालं समनुप्राप्य यत्तज्ज्ञानं शिवात्मकम् ॥ ४२ ॥  
 मुनेरनुग्रहाल्लब्ध्वा परां सिद्धिं गतो नृपः ।  
 श्रुतस्तस्याभवत्पुत्रो नाभागस्तत्सुतोऽभवत् ॥ ४३ ॥  
 सिन्धुद्वीपस्ततो जज्ञे अयुतायुस्ततोऽभवत् ।  
 ऋतुपर्णस्तु तत्पुत्रः सुधामा तत्सुतोऽभवत् ॥ ४४ ॥  
 यस्मै दत्तं भगवता गोणपत्पमनुत्तमम् ।  
 कल्माषपादस्तत्पुत्रः क्षेत्रजस्तत्सुतोऽश्मकः ॥ ४५ ॥  
 ऋषेर्वसिष्ठाद्विप्रेन्द्रान्कलस्तत्सुतोऽभवत् ।  
 नकुलस्याभवत्पुत्रो नाम्ना शतरथो नृपः ॥ ४६ ॥

अभूद्विल्विलस्तस्माद्बृद्धशर्मा ततोऽभवत् ।  
 तस्माद्विश्वसहो नाम खट्वाङ्गस्तत्सुतोऽभवत् ॥ ४७ ॥  
 दीर्घबाहुस्ततो जज्ञे रघुस्तस्याभवत्सुतः ।  
 रघोरजस्तु विख्यातो राज्ञा दशरथस्ततः ॥ ४८ ॥  
 तस्य पुत्राश्च चत्वारो धर्मज्ञा लोकविश्रुताः ।  
 रामोऽथ भरतश्चैव तृतीयो लक्ष्मणः स्मृतः ॥ ४९ ॥  
 चतुर्थश्चैव शत्रुघ्नो रामो नारायणः स्वयम् ।  
 धर्मज्ञः सत्यसंकल्पो महादेवपरायणः ॥ ५० ॥  
 सीता तस्याभवद्भार्या पार्वत्यंगसमुद्भवा ।  
 जनकेन पुरा गौरीं तपसा तोषिता यतः ॥ ५१ ॥  
 जनकाय ददौ शंभुः भीतो धनुरनुत्तमम् ।  
 तद्धनुर्भञ्जयामास जनकस्य गृहे स्थितम् ॥ ५२ ॥  
 दृष्ट्वा पराक्रमं तस्य रामस्य गुणशान्धिनः ।  
 जनकः प्रददौ तस्मै सीतां ब्रह्मविदां वरः ॥ ५३ ॥  
 पित्रा कृतोऽभिषेकार्थं रामो राज्यस्य वै यदा ।  
 वारयायास कैकेयी तदा राज्ञः प्रिया वधुः ॥ ५४ ॥  
 राजंस्त्वया वरो दत्तः पूर्वमेव यतः प्रभो ।  
 राजानं मत्सृतं तस्माद्भरतं कर्तुमर्हसि ॥ ५५ ॥  
 इति तस्या वचः श्रुत्वा राज्ञे तमभिषिच्य सः ।  
 प्रेषयामास तं रामं वनं प्रति सलक्ष्मणम् ॥ ५६ ॥  
 वनं गत्वा निवसतो भार्या दृष्ट्वाऽथ राक्षसः ।  
 रावणो नाम पौलस्त्यो नीत्वा लङ्कां पुनर्ययौ ॥ ५७ ॥  
 अदृष्ट्वा तां ततः सीतां दुःखितौ रामलक्ष्मणौ ।  
 सख्यं वानरराजेन गत्वा दाशरथी-द्विजाः ॥ ५८ ॥  
 सुग्रीवस्य सखा वीरो हनुमान्नाम वानरः ।  
 गत्वाऽथ रावणपुरीमपश्यज्जनकात्मजाम् ॥ ५९ ॥  
 अश्रुपूर्णक्षणां सीतामिन्दीवरनिभाननाम् ।  
 विश्वासाय ददौ तस्यै रामस्यैवाङ्गुलीपकम् ॥ ६० ॥  
 दृष्ट्वाऽङ्गुलीपकं सीता प्रहृष्टा च तदाऽभवत् ।  
 ममाश्वास्य ततः सीतां प्रययौ राघवान्तिकम् ॥ ६१ ॥



रामस्तमागतं दृष्ट्वा प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ।  
 श्रुत्वा तद्बचनाद्दृत्तं युद्धार्थं कृतनिश्चयः ॥ ६२ ॥  
 सेतुं कृत्वाऽथ रक्षोभिर्पुद्गे कृत्वा महामनाः ।  
 निदहत्य रावणं रामो भ्रातृभिः सह सुव्रतः ॥ ६३ ॥  
 भानयामास तां सीतामशोकवनमध्यगाम् ।  
 प्रतिष्ठाप्य महादेवं सेतुमध्येऽथ राघवः ॥ ६४ ॥  
 लब्धवान्परमां भक्तिं शिवे शिवपरोक्रमः ।  
 रामेश्वर इति ख्यातो महादेवः पिनाकधृक् ॥ ६५ ॥  
 तस्य दर्शनमंत्रिण ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।  
 अभिपिक्तस्ततो राज्ये रामो राजीवलोचनः ॥ ६६ ॥  
 पालयन्पृथिवीं सर्वां धर्मेण मुनिपुङ्गवाः ।  
 अयजद्देवदेवेशमश्वमेधेन शंकरम् ॥ ६७ ॥  
 तस्य प्रसादात्स्वपदं प्राप्तवानथ राघवः ।  
 एवं संक्षेपतः प्रोक्तं रामस्य चरितं मया ॥ ६८ ॥  
 इदं विस्तरतो विभ्राः प्रोक्तं वाल्मीकिना पुनः ।  
 कुशश्चैको लवश्चान्यः पुत्रौ रामस्य सुव्रतौ ॥ ६९ ॥  
 सत्यसन्धौ महावीर्यौ महादेवपरायणौ ।  
 अतिथिश्च कुशाज्जज्ञे निषधस्तत्सुतोऽभवत् ॥  
 नलस्तस्याभवत्पुत्रो नभस्तस्याभवत्सुतः ॥ ७० ॥  
 ततश्चन्द्रावलोकेश्च तारार्पीडस्ततोऽभवत् ।  
 ततश्चन्द्रगिरिर्नाम भानुजित्तत्सुतोऽभवत् ॥ ७१ ॥  
 एते सर्वे ऋषाः प्रोक्ता इक्ष्वाकुकुलसंभवाः ।  
 धर्मात्मानो महासच्चाः कीर्तिमन्तो दृढव्रताः ॥ ७२ ॥  
 इमं यः पठते नित्यमिक्ष्वाकोर्वंशमुत्तमम् ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥ ७३ ॥ १३५६ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे मह्यदराज्यारोह-  
 णादीक्ष्वाकुकुलसंभवनृपमालिकान्तकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३॥  
**सूत उवाच**-ऐलः पुरुवरवाश्वासीद्राजा परमधार्मिकः ।  
 उर्वेश्यां जनयामास पृष्ट् पुत्रान्प्रथितौजसः ॥ १ ॥

आयुर्मायुरमायुश्च विश्वायुश्च ततः परः ।  
 शतायुश्च श्रुतायुश्च पुढेते देवयोनयः ॥ २ ॥  
 आयोः पञ्च स्रुताः ख्याताः स्वर्भानुतनपात्मजाः ।  
 ज्येष्ठस्तेषामभूत्पुत्रो नहुपो लोकविश्रुतः ॥ ३ ॥  
 उत्पन्नाः पितृकन्यायां नहुपात्पञ्च स्रुतवः ।  
 विरजायां मुनिश्रेष्ठा ययातिरिति विश्रुतः ॥ ४ ॥  
 द्वे च भार्ये ययातेस्तु प्रथमा शुक्रकन्यका ।  
 देवयानीति विख्याता द्वितीया वृषपर्वणः ॥ ५ ॥  
 स्रुताऽस्रुतस्य शर्मिष्ठा तयोर्वक्ष्यामि संततिम् ।  
 देवयानी तु स्रुते यदुं तुर्वस्रुमेव च ॥ ६ ॥  
 ब्रुह्मं चारुं च पुरुं च शर्मिष्ठा स्रुते स्रुतान् ।  
 अभिषिच्य पुरुं राज्ञा पवीयांसमनिन्दितम् ॥ ७ ॥  
 वैराग्ययुक्तो मतिमान्ययातिः प्रययौ वनम् ।  
 योऽयं प्रसिद्धः शतजिघदोः सम्भवत्स्रुतः ॥ ८ ॥  
 द्वैहयः शतजित्पुत्रो धर्मस्तस्य स्रुतः स्मृतः ।  
 धर्मनेत्रैः स्रुतस्तस्य धनकस्तत्स्रुतोऽभवत् ॥ ९ ॥  
 धनकस्ये तु दायादः कृतवीर्यो मदायशाः ।  
 फार्तवीर्यैः क्रतामिश्र कृतवर्मा तथा परः ॥ १० ॥  
 फार्तवीर्यस्य वपतेः पुत्राणां च शतं त्वभूत् ।  
 तत्र पञ्च महात्मानः शूरसेनादयो वृषाः ॥ ११ ॥  
 महादेवाल्लध्ववरा महादेवपरायणाः ।  
 जपध्वजस्तु मतिमान्नारायणपरायणः ॥ १२ ॥  
 जपध्वजस्य दायादास्तालजङ्घा इति स्मृताः ।  
 तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रः सर्वे ते पादवाः स्मृताः ॥ १३ ॥  
 विश्रुतस्तस्य दायादस्तस्य पत्नी पतिव्रता ।  
 रममाणस्तया राजा कदाचिद्यमुनात्तटे ॥ १४ ॥  
 अपश्यदुर्वशीं तत्र वीणावादनलालसाम् ।  
 उर्वशीमववीद्राजा स्मरबाणेन पीडितः ॥ १५ ॥

त्वयाऽहं रन्तुमिच्छामि त्वं मां रन्तुमिहाहंसि ।  
 सा वृषस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तं मदनोपमम् ॥ १६ ॥  
 क्रीडमाना तदा तेन चिरकालं सहोर्वशी ।  
 गते वर्षसहस्रे तु विरक्तः कामभोगतः ॥ १७ ॥  
 आहोर्वशीं गमिष्यामि स्वपुरीमिति विश्रुतः ।  
 भोगेनैतावता नालमवोचदिति सा पुनः ॥ १८ ॥  
 न गन्तव्यं त्वया राजन्स्थातव्यं प्रीतये मम ।  
 अब्रवीत्तां ततो राजा पुरीं गत्वा यशस्विनीम् ॥ १९ ॥  
 आगमिष्याम्यहं क्षिप्रमहं परिसरं तव ।  
 प्राप्नानुज्ञस्ततो राजा जगाम स्वपुरीं प्रति ॥ २० ॥  
 दृष्ट्वा पतिव्रतां भार्यामभवद्भयविह्वलः ।  
 चेष्टितं तस्य सा ज्ञात्वा महिम्ना स्वेन भामिनी ॥ २१ ॥  
 मा भैपीरिति तं ग्राह भर्तारं सा पतिव्रता ।  
 न दोषस्तव राजेन्द्र सर्वं कामस्य चेष्टितम् ॥ २२ ॥  
 कामेन स्वर्गमाप्नोति कामेन नरकं ततः ।  
 विधिना सेविषः कामः स्वर्गदः श्वभ्रमन्यथा ॥ २३ ॥  
 तस्मात्त्वया नरपते विधिं हित्वा स सेवितः ।  
 तस्मात्पापं महज्जातं कुरु पापविशोधनम् ॥ २४ ॥  
 भार्यानिगदितं श्रुत्वा स्यौ कण्वाश्रमं प्रति ।  
 ज्ञात्वा तद्गुणान्च्छुद्धिं जगाम हिमवद्विरम् ॥ २५ ॥  
 मार्गंऽपश्यत्सं गन्धर्वं विश्वावसुमारिन्दमम् ।  
 सकान्तं क्रीडमानं तं शोभितं दिव्यमालया ॥ २६ ॥  
 दृष्ट्वा मालां स राजेन्द्रः सस्माराप्सरसं तदा ।  
 उर्वश्या एव योग्यैषा माला नान्यस्य कस्पचित् ॥ २७ ॥  
 एवं संचिन्त्य मनसा मालाभाहर्तुमुद्यतः ।  
 तेन सार्धं महद्युद्धं गन्धर्वेण वृषोत्तमः ॥ २८ ॥  
 कृत्वा गृहीत्वा तां मालां जगामाप्सरसं प्रति ।  
 अन्विष्यमाणः सकैलां वभ्राम स वसुंधराम् ॥ २९ ॥

वनानि पर्वतोन्द्हीपाञ्चोकान्सर्वानशेषतः ।  
 अटित्वाऽपि च नापश्यदुर्वशीं राजपुङ्गवः ॥ ३० ॥  
 अनुग्रहान्महेशस्य या तिरोऽप्यस्ति खेचरी ।  
 भ्रममाणो महर्लोकं सोऽपश्यन्नारदं मुनिम् ॥ ३१ ॥  
 यथावदभिवाद्याथ लज्जितः पार्श्वगोऽभवत् ।  
 पृष्ठा तु कुशलं राज्ञो नारदो मुनिपुङ्गवः ॥ ३२ ॥  
 अत्रवीन्नारदं राजा चोर्वशीदर्शनोत्सुकः ।  
 भगवन्नागतः कस्माद्दृष्टा वाऽस्ति हि तेन तु ॥ ३३ ॥  
 अस्ति चेच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रवीतु ब्रह्मणः सुतः ।  
 राज्ञो मनोगतं सर्वं विज्ञाय भगवान्मुनिः ॥ ३४ ॥  
 यथावत्कुशलं तस्य नारदेस्तं तथाऽब्रवीत् ।  
 यत्राऽऽसीदुर्वशी देवी मेरोर्दक्षिणदेशतः ॥ ३५ ॥  
 सरश्च मानसं नाम तत्राहं मेदिनीपते ।  
 विरञ्चैः कार्यमुद्दिश्य गत्वा पुनरिहागतः ॥ ३६ ॥  
 गमिष्यामि पुनस्तत्र यत्राऽऽस्ते सत्यलोकपः ।  
 इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं राजाऽनुज्ञाय नारदम् ॥ ३७ ॥  
 तं प्रदेशं गतस्तूर्णं तत्रापश्यत्स चोर्वशीम् ।  
 मालां निवेदयामास सा तथाऽलंकृताऽभवत् ॥ ३८ ॥  
 रभमार्णस्तया सार्धं गतं बर्षशतं पुनः ।  
 कदाचित्तमपृच्छत्सा राजानं मुनिपुङ्गवाः ॥ ३९ ॥  
 स्वकीयं नगरं गत्वा भवता तत्र किं कृतम् ।  
 ब्रूहि राजन्महाबाहो यद्यस्मि तव वल्लभा ॥ ४० ॥  
 इति पृष्टस्तया राजा प्रोवाच तदशेषतः ।  
 तस्पर्शितमथाऽऽकर्ण्य राजानं प्रत्यभाषत ॥ ४१ ॥  
 इत ऊर्ध्वं मया सार्धं स्थातव्यं नैव सुव्रत ।  
 शापं दास्यति ते कण्वो भार्या तव ममानघ ॥ ४२ ॥  
 तथा चोक्तोऽपि तन्बद्ध्या न तत्याज ह उर्वशीम् ।  
 ज्ञात्वाऽथ तस्य निर्वन्धमकरोदात्मनस्तनुम् ॥ ४३ ॥

१ ( क. ख. ग. ) ०११११०१ २ ( क. ख. ग. ज. ) ०११११०१ ॥ ३२ ॥ ३ ( य.   
 द. घ. ) ०११११०१ यथावदभिवाद्य च । भ० । ४ ( घ. ड. छ. ज. ) तत्रतः ॥ ३३ ॥ ५ ( घ. )   
 ०११११०१ ६ ( क. ख. ग. ज. ) ०११११०१ ७ ( क. ख. ग. ) ०११११०१ ८ ( य.   
 द. घ. छ. ज. ) ०११११०१

वलिभिः पलिताकीर्णां तां दृष्ट्वा राजसत्तमः ।  
 तत्क्षणाद्दुर्वशीं त्यक्त्वा तपसे कृतनिश्चयः ॥ ४४ ॥  
 द्वादशाहान्यभूद्राजा कन्दमूलफलाशनः ।  
 तावत्कालं च वाय्वाशी.ततः कण्वाश्रमं ययौ ॥ ४५ ॥  
 दृष्ट्वा मुनिवरं शान्तं शिवध्यानैकतत्परम् ।  
 प्रणम्य दण्डवद्भक्त्या प्राञ्जलिः पार्श्वसंस्थितः ॥ ४६ ॥  
 यद्वृत्तमात्मनः सर्वं मुनेः सर्वं न्यवेदयत् ।  
 मुनिर्विदित्वा तत्पापमब्रवीत्पापशोधनम् ॥ ४७ ॥  
 मुनिना प्रेषितो राजा गत्वा वाराणसीं पुरीम् ।  
 स्नात्वा संतर्प्य जाह्नव्यां दृष्ट्वा विश्वेश्वरं शिवम् ॥ ४८ ॥  
 मुक्तोऽसावेनसो राजा जगाम स्वपुरीं तदा ।  
 वसूनि ब्राह्मणेभ्यश्च दत्त्वा राज्यमपालयत् ॥ ४९ ॥  
 उर्वश्यां विश्रुताज्जाताः सप्त पुत्रा महौजसः ।  
 क्रोष्टोर्यदुंसुतस्याऽऽसन्वंश्याः सत्कीर्तिशालिनः ॥ ५० ॥  
 शृणुध्वं तान्मुनिश्रेष्ठा मुख्यानेव न चापरान् ।  
 उर्वोर्वशे क्रथः ख्यातो विदर्भः कोशलस्तथा ॥ ५१ ॥  
 ख्यातो महाभोजस्ततः परः ।  
 यवाकचैव सत्यकः सात्यकिस्ततः ॥ ५२ ॥  
 सुपेशश्च सुभोजो नरवाहनः ।  
 ह्युको देवकश्चैव श्रीदेवो देवसुव्रतः ॥ ५३ ॥  
 उग्रसेनश्च कंसश्च वसुदेवो महायशाः ।  
 उग्रसेनस्य कन्यायां देवक्यां वसुदेवतः ॥ ५४ ॥  
 भृगोः शापवशाद्द्विष्णुः संभृतस्त्रिदशेश्वरः ।  
 रोहिणी नाम या परनी वसुदेवस्य शोभना ॥ ५५ ॥  
 तस्यां संकर्षणो जातो योऽनन्तः शेषसंज्ञितः ।  
 षोडश स्त्रीसहस्राणि पत्नयो माधवस्य याः ॥ ५६ ॥  
 ताम् जाता ह्यसंख्याताः प्रद्युम्नप्रमुखाः सुताः ।  
 कृष्णोऽपि देवकीसन्तुः परमात्मा सनातनः ॥ ५७ ॥  
 कृतकृत्योऽपि योगात्मा मापावी विश्वभुक्स्वयम् ।  
 तथाऽपि पूजयत्येवं भगवन्तमुमापतिम् ॥ ५८ ॥

लिङ्गे सर्वात्मके मत्वा महादेवं पिनाकिनम् ।  
 वरांश्च विविधालेब्ध्वा तस्माद्देवान्महेश्वरात् ॥ ५९ ॥  
 भजेपस्त्रिषु लोकेषु देवदेवो जनार्दनः ।  
 न कृष्णादाधिकस्तस्मादस्ति माहेश्वराग्रणीः ॥ ६० ॥  
 तस्मान्तत्पूजनाच्छंभुर्भवत्येव सुपूजितः ।  
 हरेरवज्ञाकरणाद्भवेदीशः पराङ्मुखः ॥ ६१ ॥  
 तस्मात्पूज्यः सदा शार्ङ्गो महादेवपरायणैः ।  
 तद्भक्तैश्च विशेषेण प्रीतये गिरिजापतेः ॥ ६२ ॥  
 एष वः कथितो वंशो यदोः संक्षेपतो द्विजाः ।  
 सर्वेषापक्षयकरः पठतां शृण्वतां भवेत् ॥ ६३ ॥ १४१२ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशीनकसंवादे पुरुषदुवंश-  
 कथनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥  
 मन्वन्तराणि वक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ।  
 मनवः पठतीतास्ते सप्तमो वर्तते किल ॥ १ ॥  
 तेषां स्वार्थंभुवस्त्वाद्यस्ततः स्वारोचिपः स्मृतः ।  
 उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥ २ ॥  
 स्वार्थंभुवं तु कल्पादावन्तरं कथितं मया ।  
 स्वारोचिपेऽन्तरे देवास्तुपिता नाम ते स्मृताः ॥ ३ ॥  
 विपश्चिन्नाम देवेन्द्र ऋषीन्वक्ष्यामि सांप्रतम् ।  
 ऊर्जस्तम्भस्तथा प्राणो दान्तोऽथ ऋषभस्तथा ॥ ४ ॥  
 तिमिरः शार्वरीवांश्च सप्तैत ऋषयः स्मृताः ।  
 उत्तरे त्वन्तरे देवाः सृधामानो द्विजोत्तमाः ॥ ५ ॥  
 प्रतर्दनाः शिवाः सत्पास्ततश्च वशवर्तिनः ।  
 एतेषां च गणाः प्रोक्ता भवद्वादशभिर्गणैः ॥ ६ ॥  
 सुदान्तिर्नाम देवेन्द्रो महाबलपराक्रमः ।  
 रजो गोत्रोऽर्ध्वाहुश्च सवनश्चानघस्तथा ॥ ७ ॥  
 सुतपाः शुकनामाऽथ सप्तैत ऋषयः स्मृताः ।  
 मत्प्रांश्च सृधियश्चैव तामसस्यान्तरे सुराः ॥  
 ज्योतिर्धर्मः पृथुः कल्पश्रेत्राग्निः सवनस्तथा ॥ ८ ॥

\* इतरे त्वन्तर इत्यादि सवनधानपरुषेयन्तं सार्धेषां इत्यं पठ्यन्तमत्रिषु पुस्तकेषु नास्ति ।

पीवरश्च समारुघाताः सप्तैत ऋषेयो मताः ।  
 स्याच्छिविर्नाम देवेन्द्रः सिद्धचारणसेवितः ॥ ९ ॥  
 देवराज्यं परित्यज्य परं वैरह्यमाश्रितः ।  
 ज्ञात्वैवाशाश्वतं सर्वं बृहरपतिमधाव्रवीत् ॥ १० ॥  
 भगवान्कं करोमीदं राज्यं तुच्छैस्सुखं यतः ।  
 कैवल्यं लभते केन तन्मे ब्रूहि गुरो स्फुटम् ॥ ११ ॥  
**बृहस्पतिरुवाच**—अस्त्यनन्तगुणावासः परानन्दैकविग्रहः ।  
 ध्यातः कैवल्यदः पुंसां महादेवो न चापरः ॥ १२ ॥  
 मोहपाशनिबद्धानां महामोहात्मतां हरेत् ।  
 स्मरणान्मोचकस्तेषामुमापतिरिति श्रुतिः ॥ १३ ॥  
 यद्ब्रह्म परमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम् ।  
 सर्वानुग्राहिणं शंभुं तमाशु शरणं व्रज ॥ १४ ॥  
 स ज्योतिषां परं ज्योतिरानन्दं तमसः परम् ।  
 न यस्मादधिकं किञ्चित्तत्त्वं विद्धि शांकरम् ॥ १५ ॥  
 तं जानीहि परं ब्रह्म विश्वात्मानं महेश्वरम् ।  
 तदात्मकतया सर्वं जानीह्यसुरसूदन ॥ १६ ॥  
 आत्मानं ये हि मन्यन्ते विभिन्नं त्रिपुरद्विषः ।  
 ते पश्यन्त्येव तं देवं नाऽऽवर्तन्ते पुनः पुनः ॥ १७ ॥  
 सर्वस्मादधिकः शंभुः परमात्मा महेश्वरः ।  
 इति ये निश्चितधियः कृतार्थास्ते सुरार्थिणः ॥ १८ ॥  
 दर्शनं तस्य काङ्क्षन्ते हरिब्रह्मादयः सुराः ।  
 योगिनो नियन्तात्मानस्तमीशं शरणं व्रज ॥ १९ ॥  
 महदादिविशेषान्तं जगद्यस्मिन्न्यं ब्रजेत् ।  
 पुनरुत्पद्यते यस्मात्तं जानीहि पिनाकिनम् ॥ २० ॥  
 लीलाविलसितं यस्य विश्वमेतच्चराचरम् ।  
 तदभावाच्च विलयस्तं जानीहि महेश्वरम् ॥ २१ ॥  
 यस्याऽऽज्ञया स्थितो ब्रह्मा जगज्जननकर्मणि ।  
 हरिश्च पालने रुद्रः संहारे च स श्लेभृत् ॥ २२ ॥

१ ( घ. ) ०यः स्मृताः । स्या० । २ ( घ. ड. ज. ) ०छतर य० । ३ ( घ. ड. झ. ज )  
 ०ति ते नि० । ४ ( क. ख. ग. ) ०स्ते न मंशयः ॥ १८ ॥ ५ ( घ. ) ०ति पिनाकिनम् ॥ २१ ॥  
 ६ ( क. ख. ग. ) ०रभृत् ॥ २२ ॥

यस्य प्रसादलेशेन मर्त्या मरणधामिणः ।  
 भवन्त्येव हि तेऽमर्त्या भजन्ते वृषभध्वजम् ॥ २३ ॥  
 क्षणं मुहूर्तमथवा ध्यातः संपूजितः स्मृतः ।  
 प्रददात्पाशु कैवल्यं यस्तं भज महेश्वरम् ॥ २४ ॥  
 तस्यैव मूर्तपस्तिस्त्रो ब्रह्मविष्णुहरा इति ।  
 सर्गैरक्षागुणलपैस्तमीशं शरणं ब्रज ॥ २५ ॥  
 यस्यान्तःस्थानि भूतानि येनेदं भ्राम्यते जगत् ।  
 ब्रह्मेति च जगुर्वेदास्तं रुद्रं शरणं ब्रज ॥ २६ ॥  
 यज्ञैर्य इज्यते देवो मुक्तये वेदवादिभिः ।  
 कर्मणां फलदस्तेषां शरणं ब्रज तं हरम् ॥ २७ ॥  
 ये विनिद्रा जितश्वासा ध्यायन्ति क्षीणकर्मिणः ।  
 तेषां प्रजापते पत्तत्तत्त्वं विद्धि च शांकरम् ॥ २८ ॥  
 भङ्गानरज्ज्वा बद्धानां मनुष्यादिशरीरिणाम् ।  
 महादेवादृते नान्यं शक्र पश्यामि मोक्षकम् ॥ २९ ॥  
 तस्मात्त्वं तपसा शक्र समाराधय शंकरम् ।  
 प्रसन्नो दास्यति पदं तव कैवल्यमुत्तमम् ॥ ३० ॥  
 एवं गुरोर्निगदितं श्रुत्वा सुरपतिस्तदा ।  
 समाराधयितुं देवं ययौ वदरिकाश्रमम् ॥ ३१ ॥  
 तत्र गत्वा जयी भूत्वा भस्मनिष्ठो जितेन्द्रियः ।  
 मन्दाकिनीजले स्नात्वा भस्म चैवाभिमन्त्र्य च ॥ ३२ ॥  
 अग्निरित्यादिमन्त्रैश्च समुद्धृत्य च विग्रहम् ।  
 पूजयामास देवेशं पुष्पैः पत्रैर्मनोहरैः ॥ ३३ ॥  
 शैवीं विद्यां जपन्नास्ते शिवध्यानैकतत्परः ।  
 एवं गतानि वर्षाणि सहस्राणि चतुर्विंश ॥ ३४ ॥  
 तपसा देवराजस्य प्रसन्नोऽभूत्ततः शिवः ।  
 माह त्रिपुरहा शक्रं वरं गृहि शतक्रतो ॥ ३५ ॥  
 तपसाऽनेन तीव्रेण प्रसन्नोऽहं तवानघ ।  
 ईप्सितं ते प्रदास्यामि तव यद्यपि दुर्लभम् ॥ ३६ ॥  
 मयि प्रसन्नं न हरे न किञ्चिदपि दुर्लभम् ॥ ३७ ॥



एवं शंभोर्वचः श्रुत्वा स्तुत्वा तं विविधैः स्तवैः ।  
 कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणम्यऽऽर्हं महेश्वरम् ॥ ३८ ॥  
**इन्द्र उवाच**—भगवन्कृतकृत्योऽस्मि भवतो दर्शनाच्छिव ।  
 अलमन्यैर्वरैः शंभो भक्तिर्भवतु मे त्वयि ॥ ३९ ॥  
 तैव भक्त्यमृतास्वादपरानन्दस्य देहिनः ।  
 भवेत्कष्टं कुतः शंभो पूर्णकामो यतो हि सः ॥ ४० ॥  
 तावदेवास्थिरं चेतः परिभ्रमति वस्तुषु ।  
 न यावन्त्वयि देवेश भक्तिर्भवति देहिनः ॥ ४१ ॥  
 तावदेव भवाम्भोधिर्दुस्तरौ देहिनां हर ।  
 तव पादाम्बुजे भक्तिः परा यावन्न लभ्यते ॥ ४२ ॥  
 तावत्पतति संसारगते जन्तुः पुनः पुनः ।  
 यावन्न तव कारुण्यलेशो भवति शंकर ॥ ४३ ॥  
 संसारविपवृक्षो यः सर्वतोऽतिभयंकरः ।  
 तव भक्तिकुठारेण च्छिद्यते नान्यथा शिव ॥ ४४ ॥  
 इति शक्रवचः श्रुत्वा कारुण्यादवलोक्य तम् ।  
 समुत्स्पृश्य तु पाणिभ्यां गाणपत्यं ददौ शिवः ॥ ४५ ॥  
 विरञ्चिप्रमुखा देवा जायन्ते कर्मगौरवात् ।  
 प्रलये च विनश्यन्ति भवन्ति च पुनः पुनः ॥ ४६ ॥  
 स्वर्गं गत्वा गताः श्वर्गं तिर्यक्त्वं च मनुष्यताम् ।  
 पुनर्विरञ्चयादिपदमेवं चक्रपरंपरा ॥ ४७ ॥  
 शंभोर्गणेश्वरा ये च नाऽऽवर्तन्ते भवे पुनः ।  
 भोगान्यथेप्सितान्भुक्त्वा शंभोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४८ ॥  
 स्वेच्छाविप्रहिणः सर्वे स्वेच्छाचारा गणेश्वराः ।  
 शिवेन सह ते भोगान्भुक्त्वा यान्ति शिवं पदम् ॥ ४९ ॥  
 एवं दत्त्वा वरं शंभुर्गाणपत्यं सुदुर्लभम् ।  
 सुरराजाय शिवये तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ॥ ५० ॥  
 गाणपत्यं वरं लब्ध्वा शिविर्भगवतो द्विजाः ।  
 आज्ञया तस्य देवस्य जगाम स्वपुरीं ततः ॥ ५१ ॥  
 महादेवार्चनरतो महादेवकथारतः ।  
 स्थित्वा मन्वन्तरं तत्र चण्डो नाम गणोऽभवत् ॥ ५२ ॥

वृषध्वजत्रिनेत्रश्च जटाजूटेन्दुमण्डितः ।

शुद्धस्फटिकसंकाशशत्रुबाहुद्विगुलभृत् ॥ ५३ ॥

अक्षमालाधरः स्वर्गीसर्वेपामभयप्रदः ।

द्वीपिचर्माम्बरधरः सर्वाभुरणभूषितः ॥

रराज शांकरपदे नन्दीश्वर इवापरः ॥ ५४ ॥

एतद्धः कथितं सर्वं शिवेस्तु चरितं द्विजाः ।

सर्वपापक्षयकरं सर्वसिद्धिप्रदं व्रणाम् ॥ ५५ ॥

श्रद्धया ये पठन्तीदं शिवेस्तु चरितं द्विजाः ।

प्राप्नुवन्त्यश्वमेधस्य फलमित्यग्रवीद्विभिः ॥ ५६ ॥ १४७५ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे शिविनामधेय-  
देवेन्द्रचरितकथनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

मृत उवाच-विभुर्नामा भवेदिन्द्रो रैवतस्यान्तरे द्विजाः ।

वैकुण्ठाद्याः स्मृता देवा गणाश्चत्वार ईरिताः ॥ १ ॥

हिरण्यरोमा विश्वश्रीरुध्वंवाहुस्तथैव च ।

ऐन्द्रवाहः सुवाहुश्च पर्जन्यश्च महामुनिः ॥ २ ॥

सप्तैत ऋषयः प्रोक्ताः प्रियव्रतकुलोद्भवाः ।

मनोजव. सुरेन्द्रोऽभूच्चाक्षुषेऽप्यन्तरे द्विजाः ॥ ३ ॥

आपोः प्रसूता भावाद्याः कथिता देवतागणाः ।

सुमेधो विरजाश्चैव हविष्मानुत्तमो बुधः ॥ ४ ॥

भत्रिनामा सहिष्णुश्च सप्तैत ऋषयः स्मृताः ।

पुत्रो विवस्वतो विषा मनुर्ववस्वतः स्मृतः ॥ ५ ॥

संप्रतं वर्तते योऽसौ तत्र देवान्त्रयीम्यहम् ।

मरुद्गणास्तथाऽऽदित्या रुद्राश्च वसवः स्मृताः ॥ ६ ॥

पुरंदरस्तु देवेन्द्रो बभुवासुरदर्पहा ।

वसिष्ठः कश्यपश्चात्रिजमदग्निश्च गौतमः ॥ ७ ॥

विश्वामित्रो भरद्वाजः सप्तैत ऋषयो मताः ।

मन्वन्तराप्यतीतानि वर्तमानं मया द्विजाः ॥ ८ ॥

कथितान्यथ वक्ष्यामि शृणुध्वं प्रतिसंचरम् ।

चतुर्धा कथितः सोऽपि पुराणेऽस्मिन्द्विजोत्तमाः ॥ ९ ॥

नित्यो नैमित्तिकश्चैव प्राकृतात्यन्तिकौ तथा ।  
 योऽयं भूतक्षयो लोके नित्यं नित्यस्तु स स्मृतः ॥ १० ॥  
 कल्पान्ते यस्तु संहारो नैमित्तिक ईहोच्यते ।  
 महदाद्यं विशेषान्तं स सदा याति संक्षयम् ॥ ११ ॥  
 प्राकृतः प्रतिसर्गोऽयं कथ्यते मुनिभिर्द्विजाः ।  
 आत्यन्तिकैस्तु प्रलयो ज्ञानादेवै स जायते ॥ १२ ॥  
 तच्च ज्ञानं महेशस्य भक्तिलभ्यमिति श्रुतिः ।  
 चतुर्युगसहस्रान्ते संप्राप्ते भूतसंक्षये ॥ १३ ॥  
 अनावृष्टिस्ततस्तीव्रा जायते शतवार्षिकी ।  
 वृक्षगुल्मलताः सर्वाः पृथिव्यां यान्ति संक्षयम् ॥ १४ ॥  
 गभस्तिमाली भगवानथ सप्तथोऽभवत् ।  
 रश्मिभिः सागराम्भांसि तदा पिबति भास्करः ॥ १५ ॥  
 दीप्ताश्च रश्मयस्तेन भवन्ति मुनिपुङ्गवाः ।  
 भवन्ति सूर्याः सप्तैते सर्वतो रश्मिसंकुलाः ॥ १६ ॥  
 तेषां रश्मिप्रतापेन दग्धा भवति मेदिनी ।  
 द्वीपैश्च पर्वतैः पार्थ सागरैश्च द्विजोत्तमाः ॥ १७ ॥  
 सूर्यतेजोभिर्दग्धानां भूतानां च परस्परम् ।  
 एकत्वमुपजातानामग्निरेकस्तेतोऽभवत् ॥ १८ ॥  
 ज्वालाभिरखिलं विश्वं त्रिर्दहत्याशु पावकः ।  
 स दग्ध्वा पृथिवीं सर्वां रुद्रतेजोविजृम्भितः ॥ १९ ॥  
 दिवं दग्ध्वाऽथ पातालं दन्दहीति द्विजोत्तमाः ।  
 उत्तिष्ठन्ति शिखास्तस्य शतयोजनमायताः ॥ २० ॥  
 तेजसा तस्य कालाग्नेरग्निः संवर्तकः स्वयम् ।  
 दग्ध्वा स चतुरो लोकान्सपक्षोरगराक्षसान् ॥ २१ ॥  
 तप्तायःपिण्डवत्सर्वं जगदेतत्प्रकेशते ।  
 उत्तिष्ठन्ते ततो मेघास्तडिद्भिश्च समन्ततः ॥ २२ ॥

१ (घ. द. च. छ. ज.) ०श्याहोके । २ (घ. द. च. छ. ज.) उद्देह्यते । ३ (घ. ख. ग.) ०जाः ।  
 अस्तौ ४ (घ. ट.) ०रक्ष मणौ ५ (क. ख. ग. ज.) ०स्तु निलौ ६ (घ.) ०प्र प्रताणौ  
 ७ (घ. ख. ग.) गण । ८ (क. ख. ग.) ०क्षयुगमलौ ९ (घ. ख. ग. ज.) ०स्तदाऽभवत् ।  
 १० (घ. छ. छ. ज.) दिव्य दौ ११ (घ. ख. ग.) ०वातिनम् । २०

संवर्तकोपमाः सर्वे नानावर्णा भयंकराः ।  
 जायन्ते भास्कराद्दोरु राविणो मुनिपुङ्गवाः ॥ २३ ॥  
 ततो वर्षं प्रमुञ्चन्ति तिन्दुभिर्गजसंनिभैः ।  
 ब्रह्मणा प्रेरिता वृष्टिर्जापले शतवार्षिकी ॥ २४ ॥  
 जलोच्चैर्नाशमायान्ति तदा कल्पान्तपावकाः ।  
 द्वीपैश्च पर्वतैर्युक्ता पृथिवी पूर्यते जलैः ॥ २५ ॥  
 विंलीयते धरा चैव सर्वा एव द्विजोत्तमाः ।  
 तस्मिन्नेकार्णवे घोरे देवदेवः प्रजापतिः ॥ २६ ॥  
 योगनिद्रां समास्थाय शेते ध्यायन्महेश्वरम् ।  
 एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो मुनिपुङ्गवाः ॥ २७ ॥  
 अतः शृणुध्वं वक्ष्यामि प्राकृतः प्रलयो यथा ।  
 कालाग्निरुद्रो भगवान्परार्धद्वितये गते ॥ २८ ॥  
 ब्रह्माण्डं भस्मसात्कृत्वा ताण्डवं नात्यमास्थितः ।  
 पीत्वा तत्परमानन्दं समालोक्य गिरीन्द्रजाम् ॥ २९ ॥  
 एका सा परमा शक्तिर्नित्या हैमवती शिवा ।  
 एक एव महादेवस्तपोर्भेदो न विद्यते ॥ ३० ॥  
 तिष्ठत्येका तदा तस्मिन्नेक एव महेश्वरः ।  
 पार्वत्या परया शक्त्या नान्यः कश्चिदिति श्रुतिः ॥ ३१ ॥  
 सहस्रशीर्षां पुरुषः सहस्रौकृतिरीश्वरः ।  
 सहस्रनयनो देवः सहस्रचरणः शिवः ॥ ३२ ॥  
 सहस्रबाहुर्विंशत्तमा त्रिशूली दीप्तलोचनः ।  
 दंष्ट्राकरालवदनः परब्रह्मतनुः शिवः ॥ ३३ ॥  
 दग्ध्वा ब्रह्मादिकं विश्वं स्वतेजस्पधितिष्ठति ? ।  
 पृथिवी विलयं याति स्वगुणैरप्यु संयुता ॥ ३४ ॥  
 जलमग्नौ लयं याति वापौ तेजश्च लीयते ।  
 व्योम्नि वायुर्लयं याति भूतादी व्योम लीयते ॥ ३५ ॥  
 इन्द्रियाणि च सर्वाणि तेजसे यान्ति संक्षयम् ।  
 वैकारिके देवगणाः प्रलयं यान्ति सत्तमाः ॥ ३६ ॥

१ ( क. ख. ग. ) मयानकाः । जाण २ ( क. ख. ग. ) वनिमत्तमः ॥ २३ ॥ ३ ( क. ख. ग. ) धराश्चैव विंलीयते तदा वृष्ट्या शिवा ४ ( घ. ङ. च. छ. ) ० गिगिमत्तम् । ५ ( घ. ङ. च. छ. ज. ) एषा सा । ६ ( घ. ङ. च. छ. ज. ) ० मयस इतीश्वर ७ ( घ. ङ. ) ० मयाऽपि ७ । ८ ( घ. ) ० नित मयनाः ॥ ३६ ॥

अहंकारो लयं याति महति त्रिविधश्च यः ।  
 महत्तत्त्वं लयं याति विरञ्चौ मुनिपुङ्गवाः ॥ ३७ ॥  
 अव्यक्ते निलयस्तस्य ब्रह्मणः पद्मजन्मनः ।  
 एवं भूतैश्च तत्त्वानि संदृत्य भगवाञ्शिवः ॥ ३८ ॥  
 आस्ते स भगवानेको न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ।  
 इच्छया पार्वतीशस्य प्रलयो नान्यथा द्विजाः ॥ ३९ ॥  
 ब्रह्मादीनां पुनः सृष्टिरित्याहुस्तत्त्वंदर्शिनः ।  
 तस्यैव शक्तयस्तिस्त्रो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ४० ॥  
 सर्वस्मादधिकस्ताभ्यः शूलपाणिरिति श्रुतिः ।  
 एकमेव महादेवं वदन्ति बहुधा जनाः ॥ ४१ ॥  
 ब्रह्माणं शाङ्गिणं रुद्रं वायुमिन्द्रं रविं शशिम् ? ।  
 अग्निं यमं च वरुणं जनं भेददृशो जनाः ॥ ४२ ॥  
 तत्तद्रूपं समास्थाय भगवानेव शंकरः ।  
 फलं ददाति सर्वेषां सर्वशक्तिमयः शिवः ॥ ४३ ॥  
 तस्मात्सर्वान्परित्यज्य यजेदेकं महेश्वरम् ।  
 आदिमध्यान्तरहितं निर्गुणं तमसः परम् ॥ ४४ ॥  
 क्रमेण लभ्यतेऽन्येषां मुक्तिराराधने द्विजाः ।  
 आराधयन्महेशं तं तस्मिञ्जन्मनि मुच्यते ॥ ४५ ॥  
 एष वः कथितो विप्रः पथावत्प्रतिसंचरः ।  
 यदीरितं भगवता किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ४६ ॥ १०२१ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरि सूतशौनकसंवादे नित्यनैमित्तिक-  
 प्राकृतात्पन्तिकप्रतिसंचरकथनं नाम त्रयविंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

**ऋषय ऊचुः**—सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशा मन्वन्तराणि च ।

वंशानुचरितं चैव श्रुतं सर्वमशेषतः ॥ १ ॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामश्चरितं त्रिपुरद्विपः ॥ २ ॥

पुराणि त्रीणि भगवान्ददाह स कथं पुरा ।

लीलपैवेपुणैकेन सूत नो वद कौतुकम् ॥ ३ ॥

... स. ग. ) अनिसत्तमा. ॥ ३७ ॥ २ ( क. स. ग. ) ०२२वादिगः । ३ ( छ  
 ड. छ ) वन्दन्ति । ४ ( क. स. ग. ) ०३ मित्र च । ( ज. ) ०३मिन्द्र च । ५ ( क. स. ग. )  
 ( क. ) म ते ददृशुर्जनाः ॥ ४२ ॥ ६ ( घ. ड. च. छ. ज. ) ०३ सर्वं परि ७ ( घ. ड. च. छ. ज. ) ०३ रेवं मण  
 ४ छ. ज. ) ०३ च प्र ९ ( क. ल. ग. ) वशो मण १० ( घ. ड. ) ०३ त्रिं नि ० ।

मृत उवाच-शृणुध्वमृषयः सर्वे चरितं शूलपाणिनः ।

यथेरितं भगवता सूर्येण मनवे पुरा ॥ ४ ॥

शृण्वतां सर्वपापघ्नं सर्वदुष्टनिवारणम् ।

यत्तत्सर्वापदां हन्तु श्रोत्रफीपुपमुत्तमम् ॥ ५ ॥

तारको नाम यो दैत्यो निहतः शक्तिपाणिना ।

आसन्मुतात्रयस्तस्य त्रैलोक्यैश्वर्यदापिताः ॥ ६ ॥

विद्युन्माली तारकाक्षः कमलाक्षो महाबलः ।

तेपुस्तपो मेहाघोरं दानवाः मियकाङ्क्षया ॥ ७ ॥

यमैश्च नियमैर्युक्ता बभूवुरनिलाशनाः ।

प्रीतश्चतुर्मुखस्तेषां प्रददौ वरमुत्तमम् ॥ ८ ॥

देवासुराणां सर्वेषामवध्यत्वं द्विजोत्तमाः ।

पुनस्तैरमरेशत्वं याचितः पद्मसंभवः ॥ ९ ॥

वैरमन्यं दैत्यवर्षा वृणीध्वं मनसेप्सितम् ।

दास्यामि तदहं क्षिप्रमिति ब्रह्माऽब्रवीत्पुनः ॥ १० ॥

अद्भुवंस्ते विचार्यैवं मिथः कमलसंभवम् ।

पुराणि त्रीणि लोकेषु रचयित्वा वयं सदा ॥ ११ ॥

त्रील्लोकान्विचरिष्यामस्त्वत्तो लब्धवरा विभो ।

ततो वर्षसहस्रे तु समेष्यामः परस्परम् ॥ १२ ॥

एकीभावं गमिष्यन्ति पुराणि च सुरोत्तम ।

यदा समेतान्येतानि यो हन्याद्भगवंस्तदा ॥ १३ ॥

एकैवेपुणा देव स नो मृत्युर्भविष्यति ।

एवमस्त्विति तानुक्त्वा ब्रह्माऽन्तर्धानमाप्तवान् ॥ १४ ॥

तेषां मयस्तु क्रमशश्चक्रे त्रीणि पुराण्यथ ।

पृथिव्यामप्यसं त्वासीद्भ्राजतं गगनाङ्गणे ॥ १५ ॥

स्वर्गे तु काञ्चनमयमसुराणां पुरं द्विजाः ।

विस्तारायामतस्तेषां योजनानां शतं भवेत् ॥ १६ ॥

आपसं यत्पुरं दिव्यं विद्युन्मालेस्तदाऽभवत् ।

राजतं तारकारूपस्य कमलारूपस्य काञ्चनम् ॥ १७ ॥

मयस्य तु गृहं रम्यं पुरेषु त्रिषु विस्तृतम् ।

तत्राऽऽस्ते दानवः श्रीमान्देवदानवपूजितः ॥ १८ ॥

रम्यं पुरत्रयं रेजे त्रैलोक्यमिव चापरम् ।  
 विमानैः सूर्यसंकाशैः समन्तात्परिशोभितम् ॥ १९ ॥  
 गजवाजिसमाकीर्णं गोपुराहीलमण्डितम् ।  
 सिद्धचारणगन्धर्वैर्दिव्यस्त्रीभिर्विराजितम् ॥ २० ॥  
 रहस्यायतनैर्दिव्यैरग्निहोत्रैर्गृहे गृहे ।

वेदाध्ययनसंपन्नैः समन्ताद्गुपशोभितम् ॥ २१ ॥  
 सर्वाः पतिव्रतास्तत्र दानवानां स्त्रियो द्विजाः ।  
 महादेवार्चनेरतैर्दानवैरुपशोभितम् ॥ २२ ॥  
 तेषां तपःप्रभावेन शक्राद्यास्तनुतां गताः ।  
 दृष्ट्वा देवास्तदैश्वर्यं पुराणां द्विजसत्तमाः ॥ २३ ॥  
 देवास्तत्तेजसा दग्धा विष्णुं गत्वेदमब्रुवन् ।

देवा ऊचुः—देवदेव जगन्नाथ त्रैलोक्यस्याभयप्रदं ॥ २४ ॥

पुरत्रयासुरभयाद्भवांस्त्रातुमिहार्हति ।  
 एवं सुराणां वचनं श्रुत्वा दानवमर्दनः ॥ २५ ॥  
 गोविन्दश्चिन्तयामास किं कार्यमिति चेतसा ।  
 हन्तव्यास्ते कीथं दैत्या महादेवपरायणाः ॥ २६ ॥  
 हरतेजोभिर्निर्दग्धपापास्तेऽत्र न संशयः ।  
 त्रैलोक्यमपि यो हत्वा महादेवपरःपणः ॥ २७ ॥  
 कस्तं निहन्ता त्रैलोक्ये विना शंभोरनुग्रहात् ।  
 शंभुप्रसादलेशेन ख्यातोऽस्मि भुवनत्रये ॥ २८ ॥  
 ब्रह्मा चं देवा दैत्याश्च सिद्धाश्च मुनयस्तथा ।  
 मनवो राक्षसाः सर्पा गन्धर्वाः पितरश्च ये ॥ २९ ॥  
 मातरो गुह्यका भृताः पिशाचा मानवास्तथा ।  
 भगवन्तं महादेवमसंपृज्य जगत्रये ॥ ३० ॥  
 सिद्धिमिच्छन्ति ये मूढास्ते स्युर्दुःखस्य भाजनम् ।  
 तस्मात्तमीशमुप्रेण यज्ञेनेष्ट्वा सुरोत्तमम् ॥ ३१ ॥  
 हन्तव्या दानवा नूनमित्युक्त्वा कमलापतिः ।  
 मेरोरुत्तरतो गत्वा यज्ञेनाथ सदाशिवम् ॥ ३२ ॥

१ (क. ल. ग.) ०नरैर्दोष २ (घ. ड.) ०लोकायामम ३ (घ. ड.) ०गुण्यय ४ (क. ल. ग. ड.) ०नवस्त ५ (क. ल. ग.) ०व्याज यो मृग म भवेत् ६ (घ. ड. छ. ज.) ०तमाः ॥ ३१ ॥ ७ (क. ल. ग.) ०तो म वा ।

इष्टा वै रुद्रभागेन ततो भूता विनिर्गताः ।  
 नानापुधकराः सर्वे त्रैलोक्यदहनप्रभाः ॥ ३३ ॥  
 भूर्तास्तान्प्रस्थितान्दृष्ट्वा देवो नारायणोऽब्रवीत् ।  
 गत्वा पुरत्रयं शीघ्रं दग्ध्वा हत्वा महासुरान् ॥ ३४ ॥  
 निःशेषानसुरान्कृत्वा पुनरागन्तुमर्हथ ।  
 अथ विष्णोर्वचः श्रुत्वा भूतघृन्दा महाबलाः ॥ ३५ ॥  
 हारं प्रणम्य प्रययुस्तन्नियोगात्पुरत्रयम् ।  
 भूता भयंकरा दृष्ट्वा अयुतायुतकोटयः ॥ ३६ ॥  
 पुरत्रयमनुप्राप्य बभूवुर्नष्टचेतसः ।  
 पराजितास्ततो भूता दैत्यैः सन्मार्गंवातेभिः ॥ ३७ ॥  
 पुनरभ्येत्य शक्राद्या देवं नारायणं विभुम् ।  
 अद्युर्वाहाहि भगवन्नित्जिता भयविह्वलाः ॥ ३८ ॥  
 चिन्तयामास तान्दृष्ट्वा शक्रादीन्विष्णुरव्ययः ।  
 भविष्यति कथं कार्यं देवानामिति सुव्रताः ॥ ३९ ॥  
 नाभिचारेण नाशोऽस्ति धर्मिष्ठानां महात्मनाम् ।  
 एते दैत्या महाभागाः सत्यव्रतपरायणाः ॥ ४० ॥  
 श्रौतस्मार्तक्रियानिष्ठा महादेवार्चने रताः ।  
 मायया मोहयित्वैव निहन्तव्या महासुराः ॥ ४१ ॥  
 हनिष्ये त्रिपुरं सर्वमिति संचिन्त्य चेतसा ।  
 असृजन्मायिनं शार्ङ्गं स्वात्मदेहान्मुनीश्वराः ॥ ४२ ॥  
 दृष्टप्रत्यपकृच्छ्राद्यं ददौ विष्णुः सुविस्तरम् ।  
 यस्मिञ्शरीरमेवाऽऽत्मा नास्ति पारत्रिकी गतिः ॥ ४३ ॥  
 संघातश्चेतयत्येव सुराया भेदशक्तिवत् ।  
 अपहृत्य परद्रव्यं कामस्तेनैव सेव्यते ॥ ४४ ॥  
 शार्ङ्गं तदुपदिश्यैव त्रिपुरं प्रति सुव्रताः ।  
 प्रेषयामास तं विष्णुः सोऽपि माधी तदा ययौ ॥ ४५ ॥  
 पुरत्रयं भविष्याथ दानवा मोहितास्तदा ।  
 तत्पञ्चैवैदिकं कर्म भवे भक्ति च शाश्वतीम् ॥ ४६ ॥

१ (क. ल. म. घ. ङ. ज.) दृष्ट्वा । २ (घ. ङ.) अर्जुननिः । ३ (क.) ०५ । अस्मात्  
 (घ. ङ.) ०५ । सर्वमथा । ४ (घ.) यस्मिञ्शरीरे । ५ (घ. ङ. ल. ङ. ञ.) अनागत इति ।  
 ६ (क. घ. ङ.) अन्वृत्ति ।



पातिव्रत्यं विहायैव स्वैरिण्यश्च स्त्रियस्तदा ।  
 नारदोऽपि ययौ तत्र स्वशिष्यैः सहितो मुनिः ॥ ४७ ॥  
 मायारूपं समास्थाय नियोगाच्चक्रिणो द्विजाः ।  
 स्त्रियो दृष्टफलार्थिन्यो दैत्या दृष्टफलार्थिनः ॥ ४८ ॥  
 बभूवुरुपदेशेन नारदस्य महात्मनः ।  
 पापण्डमार्गभूयिष्ठा वेदमार्गविवर्जिताः ॥ ४९ ॥  
 शिवार्चनपरिभ्रष्टाः संजाता दानवास्तदा ।  
 एवं स भगवान्विष्णुर्मायारूपधरो विभुः ॥ ५० ॥  
 अधर्मबहुलं कृत्वा त्रिपुरं मुनिपुङ्गवाः ।  
 महादेवमनुग्रह्य शरणं सर्वदेहिनाम् ॥ ५१ ॥  
 तुष्टाव स्तोत्रवर्षेण भगवन्तं सनातनम् ।  
 दण्डवत्प्रणिपत्याऽऽह जले स्थित्वा समाहितः ॥ ५२ ॥  
 नमः सर्वात्मने तुभ्यं शंकरायातिहारिणे ।  
 रुद्राय नीलकण्ठाय कद्रुद्राय प्रचेतसे ॥ ५३ ॥  
 गतिस्त्वं सर्वदाऽस्माकं नान्यदेवारिमर्दन ।  
 त्वमादिस्त्वमनादिस्त्वमनेन्तश्चाक्षयः प्रभुः ॥ ५४ ॥  
 प्रकृतिः पुरुषः साक्षाद्द्रष्टा हर्ता जगद्गुरुः ।  
 ज्ञाता नेता जगत्प्रस्मिन्द्विजादीन्द्विजवत्सैलः ॥ ५५ ॥  
 वरदो वाङ्मयो वाच्यो वाच्यवाचकवर्जितः ।  
 ध्येयो मुक्त्यर्थमीशानो योगिभिर्योगवित्तमैः ॥ ५६ ॥  
 ह्युपुण्डरीकक्षुपिरे योगिनां संस्थितं सदा ।  
 वदन्ति सूरयः सन्तं परब्रह्मस्वरूपिणम् ॥ ५७ ॥  
 भवन्तं तत्त्वमित्याहुस्तेजोराशिं परात्परम् ।  
 परमात्मानमित्याहुरस्मिञ्जगति यद्विभो ॥ ५८ ॥  
 दृष्टं श्रुतं स्थितं सर्वं जायमानं जगद्गुरो ।  
 अणोरल्पतरं प्राहुर्महतोऽपि महत्तरम् ॥ ५९ ॥  
 सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशरोमुखम् ।  
 महादेवमनिर्देश्यं सर्वज्ञं त्वामनामयम् ॥ ६० ॥

१ ( घ. ट. छ. ज. ) व्यैक शीघ्र २ ( घ. ट. छ. ज. ) उत्तरदाय ३ ( घ. छ. ग. )  
 अन्वदेशो ४ ( घ. ) अन्तो दृष्टो ५ ( घ. ) अस्मिन्गो ६ ( क. छ. ग. ) उत्तर ॥ ५५ ॥  
 ७ ( घ. छ. ग. ) उत्तर ८ ( घ. ) अं रिपय प्रगर्तो ।

विश्वरूपं विरूपाक्षं सदाशिवमनुत्तमम् ।  
 कोटिभास्करसंकाशं कोटिशीतांशुसंनिभम् ॥ ६१ ॥  
 कोटिकालाग्निसंकाशं पौंड्रशात्मकभीश्वरम् ।  
 भवर्तकं जगत्पस्मिन्प्रकृतेः प्रपितामहम् ॥ ६२ ॥  
 वदन्ति वरदं देवं सर्वावासं स्वयंभुवम् ।  
 श्रुतपः श्रुतिसारं त्वां श्रुतिसारविदश्च ये ॥ ६३ ॥  
 अष्टष्टमस्माभिरनेकमूर्ते द्विधा कृतं यद्भवेत्ता नु लोके ।  
 तदेव दैत्यासुरभूसुराश्च देवासुराः स्थावरजङ्गमाश्च ॥ ६४ ॥  
 पाहि नान्या गतिः शंभो विनिहत्यासुरान्क्षणात् ।  
 मायया मोहिताः सर्वे दैत्यास्ते परमेश्वर ॥ ६५ ॥  
 यथा तरङ्गाः शफरीसमूहा युध्यन्ति(?) चान्योन्यमपां निधौ तु ।  
 जटाश्रयादेव जटीकृताश्च सुरासुरास्तद्विजये हि सर्वे ॥ ६६ ॥  
**भूत उवाच**—य इमं प्रातरुत्थाय श्चिभूत्वा पठेन्नरः ।  
 गृणुयाद्वा स्तवं पुण्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥  
 एवं स्तुतो महादेवो रुद्रजाप्येन चक्रिणा ।  
 नन्दिदत्तकरः शंभुः स्वयं वचनमब्रवीत् ॥ ६८ ॥  
**ईश्वर उवाच**—युष्मत्कार्यं मया ज्ञातं विष्णोर्भाषाबलं तथा ।  
 त्रिपुरे चैव यद्बृहत्तमसुराणां सुरोत्तमाः ॥ ६९ ॥  
 सर्वे गतसमाचारा वेदधर्मुर्विनिन्दकाः ।  
 दानवास्ते पतो जातास्तस्माद्ब्रह्मया मया तथा ॥ ७० ॥  
 एवमुक्त्वा महादेवः सोमः स्कन्देर्न नन्दिना ।  
 गणेश्वरैश्च सहितो दिव्यं भवनमाविशत् ॥ ७१ ॥  
 अथ ब्रह्मादयो देवा द्वारमाश्रित्य तुष्टुवुः ।  
 ततो गणाग्रणीर्नन्दी शूलहस्तो विनिर्गतः ॥ ७२ ॥  
 आह्वया देवदेवस्य तं दृष्ट्वा देवतागणाः ।  
 तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैरभीष्टार्थप्रदायिनम् ॥ ७३ ॥  
 ववर्षुः पुष्पवर्षाणि नन्दिनो मूर्ध्नि खेचराः ।  
 नियोगाद्ब्रह्मिणः सर्वे नन्दी तुष्टस्तदाऽभवत् ॥ ७४ ॥ १५९५ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे विद्युन्मालि-  
 तारकाक्षकमलाक्षतपञ्चादिकथनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

१ ( क. ग. प. म. ) यद्ब्रह्मशा २ ( घ. ) व्रतो नु लो ३ ( क. ख. ग. म. ) ०के । तमेव ।

४ ( घ. ड. ) ०न निमित्तः । ग ० ५ ( छ. ज ) ०न्दितः । ग ० ६ ( फ ख ग. प्र ड. ज. झ ) मर्षुः सुरै ०

मृत उवाच—अथ नन्दीश्वरः प्राह ब्रह्मादीन्परया मुदा ।  
 ससारार्थं रथं शंभोः सशरं कर्तुमर्हथ ॥ १ ॥  
 रथाह्वतो महादेवस्त्रिपुरं संहारिष्यति ।  
 अथ देवाधिदेवस्य निर्मितो विश्वकर्मणा ॥ २ ॥  
 रथः परमशोभाढ्यः सर्वदेवमयः शिवः ।  
 सूर्यचन्द्रौ स्मृतौ चक्रे अरयः शशिनः कलाः ॥ ३ ॥  
 स्रक्षमारा द्वादशादित्या नेम्यः षट्पतवः स्मृताः ।  
 अन्तरिक्षमभूत्तस्य पुष्करं मुनिपुङ्गवाः ॥ ४ ॥  
 मन्दरश्चाभवन्नीडं कृवरं कथयामि वः ।  
 उदयाद्रिस्तथाऽस्ताद्रिरधिष्ठानमथोच्यते ॥ ५ ॥  
 मेरुः केसरशैलश्च वेगः संवत्सरः स्मृतः ।  
 अयने भेखले प्रोक्ते चक्रयोर्मुनिपुङ्गवाः ॥ ६ ॥  
 मुहूर्ता बन्धुराः शस्ता रथस्य द्विजसत्तमाः ।  
 घोणा काष्ठाश्च विज्ञेया अक्षदण्डः क्षणा द्विजाः ॥ ७ ॥  
 कुधा निमेषाः कथिताः कलाश्चैव लवाः स्मृताः ।  
 चौर्वरूथमभूत्तस्य स्वर्गमोक्षावुभौ ध्वजौ ॥ ८ ॥  
 दण्डौ च कर्मवैराग्यौ मखा दण्डाश्रयाः स्मृताः ।  
 संधयो दक्षिणास्तस्य युगाक्षौ गृणुत द्विजाः ॥ ९ ॥  
 अर्थकामौ द्विजश्रेष्ठा ईषादण्डस्तथोच्यते ।  
 अव्यक्तमिति यत्प्रोक्तं बुद्धिस्तस्यैव विद्वलः ॥ १० ॥  
 अहंकारो भवेत्कोणो भूतानि बलमुत्तमम् ।  
 भूषणानीन्द्रियाणि स्युरर्धं च गतिरुत्तमा ॥ ११ ॥  
 वेदोस्तस्य हयाः प्रोक्ताः षडङ्गानि च भूषणम् ।  
 धर्मशास्त्राणि भीमांसा पुराणं न्याय एव च ॥ १२ ॥  
 बाणाश्रयाक्षयाश्चैव(?) मन्त्रा घण्टा इहेरिताः ।  
 रथंतरं च च्छन्दांसि दिशः पादा रथस्य ताः ॥ १३ ॥  
 सरितां पतयस्तस्य रथकम्बलिकाः स्मृताः ।  
 गङ्गाद्याः सरितः शुभ्राः सर्वाभरणभूषिताः ॥ १४ ॥

सर्वाः स्त्रीरूपधारिण्यश्चामराग्रकराः शुभाः ।  
 सप्ताऽऽवहाद्याः सोपानाः सारधिर्भगवानजः ॥ १५ ॥  
 प्रतोदः प्रणवस्तस्य शैलेन्द्रः कार्मुकं तथा ।  
 ज्या भुजंगाधिपः श्रीमान्घण्टा वै भारती स्मृता ॥ १६ ॥  
 इषुस्तस्याभवद्विष्णुर्यमः शल्यं द्विजोत्तमाः ।  
 शरस्य तैक्ष्ण्यं कालाग्निरेवं देवमयो स्यः ॥ १७ ॥  
 अथाऽऽरुरोह भगवान्दिव्यं रथमनुत्तमम् ।  
 स्तूयमानो महादेवो मुनिसंघैर्मुनीश्वराः ॥ १८ ॥  
 स्वकार्यविघ्नकर्तारं देवं दृष्ट्वा विनायकम् ।  
 संपूज्य भक्ष्यभोज्यैश्च फलैश्च विविधैः शुभैः ॥ १९ ॥  
 उण्ढेरैर्मौदकैश्चैव पुण्यैर्दीपैर्मनोहरैः ।  
 एवं संपूज्य भगवान्पुरं दग्धुं जगाम ह ॥ २० ॥  
 शंभोरग्रे ययुर्देवास्तेषामग्रे गणेश्वराः ।  
 तेषामग्रेसरो नन्दी सर्वलोकनमस्कृतः ॥ २१ ॥  
 विमानं कोटिसूर्याभिमारुह्य मुनिपुङ्गवाः ।  
 दैत्यान्ग्रहन्तुं शैलादिस्त्वरेण प्रययौ तदा ॥ २२ ॥  
 समन्तात्प्रययुर्देवाः सायुधाश्च सवाहनाः ।  
 लोकपालास्तथा सिद्धा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ २३ ॥  
 मुनयः शंसितात्मानो मातरुः लोकमातरः ।  
 समन्ताद्देवदेवस्य कृताञ्जलिपुटा ययुः ॥ २४ ॥  
 पुष्पवर्षाणि ववृषुः खेचराश्चरणास्तथा ।  
 भृङ्गी पुरत्रयं हन्तुं लक्षकोटिगणैर्वृतः ॥ २५ ॥  
 जगाम शङ्कुकर्णश्च गोकर्णश्च महाबलः ।  
 कुन्ददन्तो महाकालो द्विण्डी मुण्डी गणेश्वरः ॥ २६ ॥  
 शतजिह्वः सहस्राक्षो वीरभद्रो महाबलः ।  
 शिवाख्यो विशिखश्चैव तथा पञ्चशिखो महान् ॥ २७ ॥  
 शतास्यष्टङ्कहस्तश्च पिशाचीशः पिनाकघृक् ।  
 एते चान्ये च बहवो गणानां लक्षकोटयः ॥

१ ( क. ख. ग. ) भक्ष्यभोज्येण २ ( क. ख. ग. ज. ) ऽकेर्दिव्यैः पुं ३ ( क. ख. ग. ज. ) ऽनोरमैः । एण ४ ( घ. ङ. ) ऽदिः स्वरेण ५ ( क. ख. ग. घ. ) ऽहारायो वीण ६ ( घ. ङ. ए. ) ऽशावाध वि०

समन्तात्परिवार्येशं त्रिपुरं हन्तुमुद्यताः ॥ २८ ॥  
 अथ विरञ्चिपुरारिविभावसुप्रभृतिभिर्नतपादसरोरुहः ।  
 सह तदा हि जगाम तयाऽर्चया सकललोकहिताय पुरत्रयम् ॥ २९ ॥  
 दग्धुं समर्थो मनसा क्षणेन चराचरं सर्वमिदं त्रिशूली ।  
 किं त्वत्र दग्धुं त्रिपुरं पिनाकी स्वयं गतस्तत्र गणैश्च सार्धम् ॥ ३० ॥  
 रथेन किं चेपुवरेण तस्य गणैश्च शंभोस्त्रिपुरं दिधक्षतः ।  
 पुरत्रयं दग्धुमल्लक्ष्मणेः किमेतदित्पाहुरजेन्द्रमुख्याः ॥ ३१ ॥  
 मन्ये च तूनं भगवान्पिनाकी लीलार्थमेतत्सकलं प्रहर्तुम् ।  
 व्यवस्थितश्चेति तथाऽन्यथा चेदाढम्बरेणास्य फलं किमेतत् ॥ ३२ ॥  
 अथ पाणौ समादाय धनुर्देवो महेश्वरः ।  
 शरं सन्धाय वेगेन त्रिपुरं समचिन्तयत् ॥ ३३ ॥  
 तस्मिन्काले पुष्ययोगे पुराप्येकत्वमाययुः ।  
 तदा समभवद्विप्रा देवानां तुमुलो महान् ॥ ३४ ॥  
 देवाश्च मुनयः सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम् ।  
 नष्टतुर्यक्षगन्धर्वाश्चारणाः सिद्धकिंनराः ॥ ३५ ॥  
 अथान्नवीन्महादेवं ब्रह्मा लोकपितामहः ।  
 पुष्ययोगस्त्वनुप्राप्तो भगवन्पार्वतीपते ॥ ३६ ॥  
 पुराणीमानि देवेश पृथग्भावं न यान्ति वै ।  
 योगेऽस्मिन्नेव भगवन्त्रिपुरं दग्धुमर्हसि ॥ ३७ ॥  
 देवाश्च दैत्या देवेश समास्तव महेश्वर ।  
 धर्मात्मानः सुरा यस्मात्पापात्मानोऽसुरास्तथा ॥ ३८ ॥  
 तस्माल्लीलां विहायैव भगवन्विश्वपूजित ।  
 त्रैलोक्यस्य हितार्थाय त्रिपुरं दग्धुमर्हसि ॥ ३९ ॥  
 अथावैक्षत देवेशः पुरत्रयमवज्ञया ।  
 भस्मसादभवद्विप्राः प्रभावात्परमेष्ठिनः ॥ ४० ॥  
 अथान्नवल्लुपेन्द्राद्या भगवन्तमुमापतिम् ।  
 कृताञ्जलिपुटाः सर्वे स्तुवन्तोऽस्य रथे स्थिताः ॥ ४१ ॥  
 दग्धं यद्यपि देवेश त्रिपुरं वीक्षणात्प्रभो ।  
 देवानां कार्पासिद्धयर्थं शरं मौक्तुमिहार्हसि ॥ ४२ ॥

अथ ज्यां धनुषो मृज्य(?) प्रहसन्भगनेत्रहा ।  
 मुमोच बाणं वेगेन त्रिपुरं भस्मसादभूत् ॥ ४३ ॥  
 ये तत्रेशाननिरता दैत्याः क्षपितकल्मषाः ।  
 शिवलोकं गताः सर्वे शिदस्यानुग्रहाद्विजाः ॥ ४४ ॥  
 विरञ्चिप्रमुखा देवा मुनयः सिद्धकिंनराः ।  
 ववन्दिरे महादेवं दण्डवत्प्रणिपत्य ते ॥ ४५ ॥

**मृत उवाच**—एवं विश्वेश्वरो देवो भगवान्पार्वतीपतिः ।  
 ब्रह्मादिभ्यो वरं दत्त्वा मन्दरं प्रययौ शिवः ॥ ४६ ॥  
 ततो देवाः प्रमुदिताः स्वं स्वं धाम ययुद्विजाः ।  
 निर्वैराः स्वस्थमनसः शिवस्यानुग्रहात्स्थिताः ॥ ४७ ॥  
 एवं संक्षेपतः प्रोक्तं दग्धं भगवता यथा ।  
 त्रिपुरं मुनिशार्दूलाः पुण्याख्यानमनुत्तमम् ॥ ४८ ॥  
 यः पठेदिदमाख्यानं महादेवस्य संनिधौ ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीपते ॥ ४९ ॥  
 लक्ष्मीं विद्यां यशः पुत्रानन्दारांश्च लभते नरः ।  
 अन्यांश्च प्राप्नुयात्कामाञ्छ्रद्धया मुनिपुङ्गवाः ॥ ५० ॥ १६४५ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरै स्तशौनकसंवादे शिवरथ-  
 त्रिपुरदाहकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

**ऋषय ऊचुः**—गाणपत्यं कथं लब्धमीश्वरादुपमन्युना ।  
 क्षीरोदधिः कथं लब्धो ह्येतदारूपातुमर्हसि ॥ १ ॥  
**मृत उवाच**—उपमन्युरिति ख्यातो योऽसौ धौम्याग्रजो मुनिः ।  
 महादेवाल्लब्धेश्वरो द्वितीय इव पण्डुस्यः ॥ २ ॥  
 क्रीडमानो महाभागः कदाचिन्मातुलाश्रमे ।  
 तस्यैव च गृहे पीतं क्षीरं तेनोपमन्युना ॥ ३ ॥  
 अग्रवीन्मातरं बालः पुनरेत्य स्वमाश्रमम् ।  
 मातर्ममाद्य तद्देहि क्षीरं स्वादुत्तरं ततः ॥ ४ ॥

\* कसपुस्तके ये मध्य एव ध्रुवो न दृश्यन्ते ।

तन्माता दुःखिता भूत्वा पुत्रमालिङ्ग्य सादरम् ।  
 वीजान्यथ समादाय पिष्ट्वा सा कलभाषिणी ॥ ५ ॥  
 पुत्राय प्रददौ क्षीरं सामपूर्वं च कृत्रिमम् ।  
 मात्रा दत्तं ततः पीत्वाऽप्यः स मुनिपुङ्गवाः ॥ ६ ॥  
 मातः पयस्त्वया दत्तं नैतदित्यत्रवीद्वचः ।  
 अश्रुपूर्णेक्षणं दृष्ट्वा पुत्रं माता सुदुःखिता ॥ ७ ॥  
 नेत्रे संमार्ज्यं हस्ताभ्यां पुत्रं प्रतीदमत्रवीत् ।  
 वने निवसतां पुत्र दरिद्राणां विशेषतः ॥ ८ ॥  
 यच्चया पाच्यते क्षीरं तत्सदा दुर्लभं हि नैः ।  
 भुक्तिश्च शिवकारुण्याल्लभ्यते नान्यथा सुत ॥ ९ ॥  
**मूत उवाच**—एवं मातुर्वचः श्रुत्वा वालोऽपि मुनिपुङ्गवाः ।  
 मातरं ग्राह कल्याणीं विनयेन तपस्विनीम् ॥ १० ॥  
**उपमन्युरुवाच**—मातः शोकं त्यज क्षिप्रं यद्यस्ति भगवाञ्शिवः ।  
 क्वचिदप्यानघाम्पाशु क्षीराब्धिं तव संनिधौ ॥ ११ ॥  
 एवमुक्त्वाऽथ तां नत्वा मातरं मुनिवालकः ।  
 जगाम स तपस्तप्तुं मातुराज्ञाप्रणोदितः ॥ १२ ॥  
 उपमन्युस्तपस्तेपे गत्वा तु हिमपर्वतम् ।  
 भूत्वाऽनिलाशनो विभा बहून्यब्दशतानि सः ॥ १३ ॥  
 तस्योपमन्योस्तपसा प्रदीप्तं भुवनत्रयम् ।  
 दृष्ट्वा तदीदृशं देवा विष्णुं गत्वेदमब्रुवन् ॥ १४ ॥  
**\*देवा ऊचुः**—देवदेव जगन्नाथ पुराण पुरुषोत्तम ।  
 त्रैलोक्यं दहतां बह्नेरस्मांस्त्रातुमिहार्हसि ॥ १५ ॥  
 श्रुत्वा तदीरितं विष्णुः संचिन्त्य मनसा तदा ।  
 जगाम शंकरं द्रष्टुं मन्दरं पर्वतोत्तमम् ॥ १६ ॥  
 महादेवं प्रणम्याथ दृष्ट्वा विष्णुः कृताञ्जलिः ।  
 अब्रवीद्भगवान्कश्चिद्भालको हिमवद्भिरौ ॥ १७ ॥

\* कखगसहितपुस्तकेभ्येव पदद्वयमिदं दृष्टम् ।

उपमन्युरिति ख्यातः क्षीरार्थं तपसि स्थितः ।  
 तपोमिंस्तस्य भगवन्दन्दहीति जगन्नयम् ॥ १८ ॥  
 अथ देवो महादेवः परमात्मा शिवः स्वयम् ।  
 इन्द्ररूपं समास्थाय जगाम हिमवद्विरिम् ॥ १९ ॥  
 ऐरावतं समारूढ्य देवसंघैः समावृतः ।  
 वामेन शच्या सहितो मुनेस्तस्य तपोवनम् ॥ २० ॥  
 शक्ररूपधरः शंभुः प्रीत्या भूत्वाऽथ मुन्नताः ।  
 वरं ब्रूहीत्युवाचेदमुपमन्युं महामुनिम् ॥ २१ ॥  
 इतीरितं वचस्तस्ये श्रुत्वा वज्रधरस्य सैः ।  
 ततः प्रहसितः प्राह शिवेऽर्पितमनाः स्वयम् ॥ २२ ॥  
 भक्तिं शूलिन्यहं याचे शिवादेव न चान्यथा ।  
 अलमन्यैर्वैरैः शक्र तरङ्गैरिव चञ्चलैः ॥ २३ ॥  
 निमिषं निमिषार्थं वा मुहूर्तं क्षणमेव वा ।  
 न ह्यलव्यप्रसादस्य भक्तिर्भवति शंकरे ॥ २४ ॥  
 त्वत्पदं तुच्छवद्भाति ब्रह्मत्वं चापि वृत्रहन् ।  
 भक्तिरेव विरूपाक्षे भवत्विति मतिर्मम ॥ २५ ॥  
 तस्मिन्महेश्वरे शक्र भक्तिश्चेद्यदि लभ्यते ।  
 ब्रह्मत्वमपि मे भाति पलालमिव नान्यथा ॥ २६ ॥  
 एवं मुनेर्निगदितं श्रुत्वा कुपितवत्प्रभुः ।  
 तमन्नवीच्छचीनाथो न मां वेत्सि कथं मुने ॥ २७ ॥  
 मत्परो मन्त्रमस्कारी मत्पूजनपरो भव ।  
 मयि प्रसन्ने जगति दुर्लभं किमिहास्ति ते ॥ २८ ॥  
 किं तेन पार्वतीशेन निर्गुणेन महात्मना ।  
 क्रियते मुनिशार्दूल तस्मान्मत्तो वरं शृणु ॥ २९ ॥  
 एवं शक्रस्य वचनं श्रुत्वा मुनिवराग्रणीः ।  
 उपमन्युरभूत्क्रुद्धश्चिन्तयानस्तदा द्विजाः ॥ ३० ॥

१ (घ.) षाड्भगवस्तस्य मदहतिः । २ (ग. घ. ड. छ.) षण्णदहतिः । ३ (ख. ग. छ.  
 ज.) ०म् । ४ (छ.) प्रीतिं मु० । ५ (क. ख. ग. ज.) ०स्य शक्ररूपध० । ६ (क.  
 ख.) ०स । मुत्सा प्र० । ७ (घ. ड. च. छ.) मनि शृ० । ८ (ग.) ०क्षेत्रे सदा । ३० ।  
 १ (घ. ड. च. छ.) ०ते भवान् ।



अहो कश्चिदिहाऽऽयातः पापात्मा राक्षसाधमः ।  
 शक्ररूपं समास्थाय मत्तपोविघ्नहेतवे ॥ ३१ ॥  
 तस्मादसौ निहन्तव्यः शिवनिन्दाकरो यतः ।  
 तन्निन्दाश्रवणात्पापादधिकं तदुपेक्षणात् ॥ ३२ ॥  
 शिवनिन्दाकरं दृष्ट्वा घातयित्वा प्रयत्नतः ।  
 हत्वाऽऽत्मानं पुनर्यस्तु स याति परमं गतिम् ॥ ३३ ॥  
 इति शास्त्रं समुद्दिश्य शक्रं हन्तुं समुद्यतः ।  
 ब्रवीत्सुरराजानमुपमन्युर्मुर्नाश्वराः ॥ ३४ ॥  
 इरार्थं यत्तपस्तावदास्तामत्र शचीपते ।  
 मां निहत्याऽऽत्मनो देहं दहिष्ये(?) योगवह्निना ॥ ३५ ॥  
 वमुक्त्वा समादाय भस्मनो मुष्टिमादरात् ।  
 त्वर्वास्त्रेण तज्जिह्वा शक्रं दग्धुं मुमोच सः ॥ ३६ ॥  
 द्विधारणयाऽऽत्मानं दग्धुं समुपचक्रमे ।  
 यायन्विश्वेश्वरं देवं परमात्मानमव्ययम् ॥ ३७ ॥  
 एवं व्यवसिते तस्मिन्पिनाकी नीललोहितः ।  
 शैभ्यधारणयाऽऽग्नेयीं वारयाप्राप्त शंकरः ॥ ३८ ॥  
 गैलादिनाऽन्यथा तत्र संदृतां चातिभीषणाम् ।  
 अथ विश्वाधिपो रुद्रो भक्तिं ज्ञात्वा दृढां मुनेः ॥ ३९ ॥  
 आत्मानं दर्शयामास कोटिसूर्यसमप्रभम् ।  
 पञ्चवक्त्रं दशभुजं बालेन्दुकृतशेखरम् ॥ ४० ॥  
 द्वीपिचर्मपरीधानं त्रिपञ्चनयनं विभुम् ।  
 तं दृष्ट्वा क्रतुक्रत्योऽभूदुपमन्युर्महामुनिः ॥ ४१ ॥  
 स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैस्तुष्टाव परमेश्वरम् ।  
 तस्मै प्रसन्नो भगवान्दत्तवान्क्षीरसागरम् ॥ ४२ ॥  
 गाणपत्यं च दुष्प्रापं ब्रह्माचैरपि सुव्रताः ।  
 यदत्तं देवदेवेन नाभूत्तत्राऽऽदरो मुनेः ॥ ४३ ॥  
 भक्तिमेव विरूपाक्षे पुनः पुनरयाचत ।  
 एवं दत्त्वा वरं तस्मै महादेवः सहोमया ॥ ४४ ॥  
 स्तूपमानः सुरगणैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४५ ॥

यः पठेदिदमाख्यानमुपमन्यूोर्महारमनः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ ४६ ॥ १६९१ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरै स्ततशौनकसंवादे उपमन्यूपाख्यान-  
कथनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

\*ऋषय ऊचुः—कथं जालंधरो दैत्यो निहतः गूलपाणिना ।

सुदर्शनेन चक्रेण वक्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥ १ ॥

सूत उवाच—आसीत्कृतान्तसंकाशो जालंधर इति स्मृतः ।

जलमण्डलसंभूतस्तेन देवा विनिर्जिताः ॥ २ ॥

लोकपालाश्च साध्याश्च वसवश्च मरुद्गणाः ।

विश्वेदेवास्तथाऽऽदित्या रुद्राश्चैव विनिर्जिताः ॥ ३ ॥

ब्रह्माणं च सुरश्रेष्ठं समरे मुनिपुङ्गवाः ।

जगाम जेतुं देवेशं विष्णुं दैत्यनिवर्हणम् ॥ ४ ॥

तेन सार्धमभूषुद्धं जालंधरसुरेशयोः ।

विनिर्जित्य ततो विष्णुं दैत्यान्प्रतीदमव्रवीत् ॥ ५ ॥

देवा विनिर्जिताः सर्वे वर्जयित्वा त्रिलोचनम् ।

तमद्य जेतुमिच्छामि भगवन्तं महेश्वरम् ॥ ६ ॥

नन्दीश्वरेण सहितं साम्बं चैव रणाङ्गणे ।

जालंधरवचः श्रुत्वा दैत्यास्ते द्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥

यपुर्देवं तमीशानं योद्धुमुद्युक्तमानसाः ।

ततो जालंधरो दैत्यो दैत्यैश्च सहितो बली ॥ ८ ॥

रथैर्नागैश्च संनद्धः प्रययौ शंकरान्तिकम् ।

दृष्ट्वा जालंधरं शंभुरञ्जनाद्रिचयोपमम् ॥ ९ ॥

प्रहसन्ब्रह्मवीदैत्यं ग्रहणो वरदार्पितम् ।

युद्धेनालं दितेः पुत्र मद्राणैर्निशितैरिह ॥ १० ॥

क्षणाद्रिच्छिन्नसर्वाङ्गो मृत्योर्ग्रांसं गामिष्यसि ।

श्रुत्वा जालंधरो वाक्यं देवदेवस्य श्रूलिनः ॥ ११ ॥

कुपितः प्राह देवेशं भगवन्तं त्रिलोचनम् ।

भनेन वाक्प्रलापेन किं महेश वृथा तव ॥ १२ ॥

गदया ताडयामि त्वामनया तीक्ष्णधारया ।

मां यो जेष्यति लोकेषु न तं पश्यामि शंकर ॥ १३ ॥

\* अस्तसप्तसहितपुस्तकेष्वयं श्लोको न दृश्यते ।

† घटशितादर्शपुस्तके नास्त्ययं श्लोकः ।

तस्माद्दुत्थाप युध्यस्व यदि तेऽरित बलं शिव ।  
 श्रुत्वाऽथ दैत्यवचनं पादाङ्गुष्ठेन शंकरः ॥ १४ ॥  
 चकार लीलया चक्रमम्बुधौ दिव्यमायुधम् ।  
 यदिदं निर्मलं चक्रं जालंधरमयाऽम्बुधौ ॥ १५ ॥  
 बलं ते यदि चोद्धतुं तिष्ठ योद्धुं च नान्यथा ।  
 आकर्ण्य तस्य वचनं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १६ ॥  
 शूलिनं प्राह विभेन्द्रात्रैलोक्यं प्रदहन्निव ।  
**जालंधर उवाच**—रेखामात्रं किमुद्धतुं किमिदं भापसे शिव ॥१७॥  
 मेवां दयोऽपि तिष्ठन्ति किं मया न विचालिताः ।  
 या त्वया लिखिता रेखा चक्ररूपा महेश्वर ॥ १८ ॥  
 तामुद्धृत्य ततो हन्मि त्वां नन्दिप्रमुखैः सह ।  
 बालत्वे निर्जितो ब्रह्मा तरसैव पुरा मया ॥ १९ ॥  
 निक्षिप्तौ भगवान्निष्णुलीलया शतयोजनम् ।  
 इन्द्राद्या लोकपालाश्च बद्धाः कारागृहे स्थिताः ॥ २० ॥  
 दासीभृताः स्त्रियस्तेषां वर्तन्ते मद्रुहे शिव ।  
 दोर्भ्यां वियन्नदी रुद्धा क्रीडार्थं हिमवद्विरौ ॥ २१ ॥  
 दिग्गजाश्च विनिक्षिप्ताः सिन्धौ वै रावणादयः ।  
 वडवाम्रेमुखै रुद्धे चैकार्णव इवाभवत् ॥ २२ ॥  
 तस्मान्न जानासि कथं शंभो मम पराक्रमम् ।  
 त्वामपि प्राप्याम्यद्य जित्वा कारागृहं प्रति ॥ २३ ॥  
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दानवस्य महेश्वरः ।  
 नेत्राग्निलवभागेन चमूं तस्यादहत्क्षणात् ॥ २४ ॥  
 अक्षौहिणीनां साहस्रं लीलयैव महेश्वरः ।  
 कृत्वा तद्गस्मत्साद्विप्रा जालंधरमथात्रवीत् ॥ २५ ॥  
**ईश्वर उवाच**—समयो यः कृतः पूर्वं लेखामुद्धरणं प्रति ।  
 कुरु दैत्य तर्था शीघ्रं ततो मां जेतुमर्हसि ॥ २६ ॥  
 अथ शंभोर्वचः श्रुत्वा मदान्धो दैत्यपुङ्गवः ।  
 दोर्भ्यामास्फोट्य वेगेन लेखामुद्धर्तुमुद्यतः ॥ २७ ॥  
 सुदर्शनारूपं यच्चक्रं कृच्छ्रेण महता द्विजाः ।  
 स्कन्धे वै स्थापयामास द्विधाभूते ततः क्षणात् ॥ २८ ॥

निपपात ततो दैत्यो मेघाचल इवापरः ।

तस्य देहस्य रक्तेन संपूरितमभूज्जगत् ॥ २९ ॥

निपोगादेवदेवस्य तन्मांसं तस्य शोणितम् ।

रक्तकुण्डमभूत्तत्र निरये वापकर्मणाम् ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा जालंधरं देवा निहतं गूलपाणिना ।

मुमुक्षुः पुष्पवर्षाणि जय देवेति चाब्रुवन् ॥ ३१ ॥

देवाः स्वस्थानमापन्नाः समुद्राश्च वसुंधरा ।

दिग्गजाः पर्वताः सर्वे हते तस्मिन्महाभुरे ॥ ३२ ॥

जालंधरवधं यस्तु पठेद्वा गृणुपादपि ।

श्रावयेद्वा द्विजान्भक्त्या ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥३३॥१७२४॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे जालंधर-

वधकथनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

ॐभूत उवाच-चतुर्ध्वपि च वेदेषु पुराणेषु च सर्वशः ।

श्रीमहेशात्परो देवो न समानोऽस्ति कश्चन ॥ १, ॥

ब्रह्मा विष्णुर्वैलारातिः सर्वे यस्य वशे स्थिताः ।

उत्पत्तिः सर्वदेवानां स एव ध्येय उच्यते ॥ २ ॥

नास्ति शंभोः परो धर्मो नास्त्यर्थः शंकरात्परः ।

शिवादन्यत्सुखं नास्ति मोक्षो नैव हरात्परः ॥ ३ ॥

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।

तदा शिवमविज्ञाय दुःस्वस्यान्तो भविष्यति ॥ ४ ॥

स्रष्टृत्वं ब्रह्मणो येन ध्येयत्वं येन शार्ङ्गिणः ।

विष्णुत्वं येन शक्रस्य तस्मादन्यः परो न हि ॥ ५ ॥

ऋषय ऊचुः-केचिल्लोका महेशानं त्यक्त्वा केशवकिंकराः ।

तत्र किं कारणं सूत वद संशयनाशक ॥ ६ ॥

अन्तकाले स्मरन्त्पेव प्रायेण गरुडध्वजम् ।

विद्यमाने शिवे विष्णोः प्रभौ श्रीपार्वतीपतौ ॥ ७ ॥

\* चतुर्ध्वपि च वेदेष्वत्यादि शिवनिन्दककारणमिल-तमध्यायत्रय कस्यचनसहितपुस्तकेषु न दृश्यते । असहितपुस्तके सप्तत्रिंशोऽध्यायसमाप्तिस्यले किञ्चिद्द्विहिलिखितमस्ति । तद्यथा—पूर्वोऽध्याय-समाप्तिस्यलव्यत्यास कृत्वाऽन्यमध्यायत्रय मध्याचार्यत्रयापर वैष्णवैरुपलपितमस्ति तत्पुस्तकान्तरेषु दृश्यते-इति ।

मृत उवाच—यदा प्रसन्नोऽभूद्भक्तिभावेन धूर्जटिः ।  
 विष्णुनाऽऽराधितो भक्त्या तदाऽसौ दत्तवान्वरान् ॥ ८ ॥  
 त्वत्तः परं प्रभुं नैव प्रायेण ज्ञास्यति स्फुटम् ।  
 विरलाः केचिदेतद्वै निर्घ्ना वेत्स्यन्ति तत्त्वतः ॥ ९ ॥  
 हेतुना तेन विप्रेन्द्राः शिवं जानन्ति केचन ।  
 प्रायेण विष्णुनामानि शृण्वन्ति वरदानतः ॥ १० ॥  
 विष्णोः स्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ।  
 शंभुप्रसाद एवैव नास्ति कार्या विचारणा ॥ ११ ॥  
 यः शंभुं तत्त्वतो वेत्ति स तु नारायणः स्वयम् ।  
 यस्तु नारायणं वेत्ति स शक्रो विबुधेश्वरः ॥ १२ ॥  
 य इन्द्रं वेत्ति देवेशं लोकपालो जलाधिपः ।  
 एवं सर्वाल्लोकपालाञ्जानाति स इहामरः ॥ १३ ॥  
 देवाञ्जानाति यष्टव्यान्स ऋषिर्वेदवित्स्वयम् ।  
 ऋषीण्यो वेत्ति सम्पक्त्वात्स एव ब्राह्मणोत्तमः ॥ १४ ॥  
 सर्वदेवमयं विप्रं यो जानाति स वेदवित् ।  
 रहस्यं वेत्ति वेदस्य स एव हरवल्लभः ॥ १५ ॥  
 जन्मादिकारणं शंभुं विष्णुं ब्रह्मादिपूर्वजम् ।  
 न जानन्ति महामूर्खा विष्णुमापाविमोहिताः ॥ १६ ॥  
 आसीत्प्रतर्दनो नाम राजा परमधार्मिकः ।  
 सप्तद्वीपपतिः पृथ्वीप्रभुरेकः प्रतापवान् ॥ १७ ॥  
 शूरः पुण्यमतिर्भोगी दाता वेदार्थपालकः ।  
 रक्षिता सर्वसेतूनां ब्रह्मण्यो ब्राह्मणमियः ॥ १८ ॥  
 तस्य राज्ये सदा देवा शृङ्खन्ति हविरुत्तमम् ।  
 न यापण्डी न त्ना बौद्धस्तस्य राज्येऽभवज्जनः ॥ १९ ॥  
 कदाचित्स पुरीं त्यक्त्वा क्रीडार्थं निर्गतो वहिः ।  
 तदा ददर्श क्षपणं राजा विस्मयमागतः ॥ २० ॥  
 पृष्टं कस्त्वं कुतो यातः किं कार्यं च तवेप्सितम् ।  
 कुत्र यास्पसि तत्सर्वं किंजातीयो भवान्वद ॥ २१ ॥  
 क्षपणक उवाच—राजन्वणिगहं शान्तो यतिः शीलव्रते स्थितः ।  
 मदीयाश्चलसंलग्नाः सन्त्यत्र वणिजः परे ॥ २२ ॥  
 राजोवाच—को धर्मः किं नु तत्र त्वं ज्ञायते केन वक्ति कः ।  
 अयं पन्थाः कथं प्राप्तः कस्मान्न प्रकटो भवान् ॥ २३ ॥

- क्षपणक उवाच**—अहिंसा परमो धर्मस्तत्तत्त्वं यत्तनोर्दमः ।  
 बुध्यते धौद्धजैनाभ्यां वक्ता तस्य जिनो मतः ॥ २४ ॥  
 वेदवेदाङ्गवेत्तारो याज्ञिका वैष्णवा द्विजाः ।  
 माहेश्वरा महापूज्या न व्यक्तोऽहं भयानृप ॥ २५ ॥
- सूत उवाच**—ततो राजा परां चिन्तां प्राप्तो दुःखितमानसः ।  
 धिग्र्राज्यं मम दुर्बुद्धिर्वेदबाह्योऽस्ति मत्पुरे ॥ २६ ॥  
 एतं हन्मि यदा पापं तदेतन्मानिनी प्रजा ।  
 कथयिष्यति शान्तात्मा इतो राज्ञा कुबुद्धिना ॥ २७ ॥  
 एतस्मिन्निहते किं स्याद्भवन्ति बहवस्तथा ।  
 दयाशब्दं पुरस्कृत्य ह्यधर्मो विचरिष्यति ॥ २८ ॥  
 वेदवाह्याः प्रजा राज्ञा शासितुं नैव शक्यते ।  
 तदा तत्पापभागी स्यादित्याह भगवान्मनुः ॥ २९ ॥
- सूत उवाच**—त्यक्त्वा राज्यं तपस्तेपे ततो राजा प्रतर्दनः ।  
 सावित्रीं मनसा ध्यात्वा नित्यमेकाग्रमानसः ॥ ३० ॥  
 ततः कतिपयाहोभिर्ब्रह्मा प्रत्यक्षतां गतः ।  
 महता तपसा तुष्ट इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३१ ॥
- ब्रह्मोवाच**—पुत्र प्राप्तोऽस्मि संतोषं वरं वरप सुव्रत ।  
 कथं त्वं खिद्यसे चित्ते राज्यं त्यक्तं कुतस्त्वया ॥ ३२ ॥
- राजीवाच**—वेदः प्रभौणं वक्तव्येव जानात्येव च यत्प्रजाः ।  
 शङ्कामात्रं भवेन्नैव वेदप्रामाण्यगोचरम् ॥ ३३ ॥  
 इति याचे वरं देव किमन्येन वरेण मे ।  
 याचे निष्कण्टकं राज्यं सप्तद्वीपावनीपतिः ॥ ३४ ॥
- सूत उवाच**—एवमस्त्विति संप्रोच्य ब्रह्माऽन्तर्धानिप्रापयौ ।  
 प्रतर्दनोऽपि राजर्षिः संतुष्टः पृथिवीपतिः ॥ ३५ ॥  
 ततः प्रभृति तद्राज्ये सर्वो धर्मो व्यवस्थितः ।  
 वेदवेदाङ्गवेत्तारो ब्राह्मणाः शंसितव्रताः ॥ ३६ ॥  
 अग्निहोत्राणि यज्ञाश्च यतपो ब्रह्मचारिणः ।  
 शैवा नानाविधाः पुण्या वैष्णवाः शुभलक्षणाः ॥ ३७ ॥  
 तस्य राज्ये महापुण्ये न पापण्डी नं हैतुकी ।  
 वर्णाश्रमाचारवर्ता क्रियाः सर्वास्तदाऽभवन् ॥ ३८ ॥

उत्सवा विष्णुभक्तानां शिवपूजा गृहे गृहे ।  
 सर्वे देवान्मानयन्ति न कंचिद्वैष्टि मानवः ॥ ३९ ॥  
 तर्कवेदान्तमीमांसाव्याख्यानानि गृहे गृहे ।  
 वेदनिर्घोषवद्राज्यं यज्ञस्तम्भाः स्थले स्थले ॥ ४० ॥  
 अनेकभोगसंयुक्ता हृष्टाः पुष्टाः स्त्रियः सतीः ।  
 रक्षन्ति पतयः पुण्या यथा वृद्धपुरस्कृताः ॥ ४१ ॥

**मूत उवाच**—एवं बहुतिथे काले गते ये दैत्यदानवाः ।  
 पापिष्ठा हीनकर्माणो म्लेच्छास्तेऽपि दिवं गताः ॥ ४२ ॥  
 येषां तु संततिः शुद्धं वेदमार्गं हि मन्यते ।  
 ते सर्वे नरकान्मुक्त्वा प्राप्ता एवामरावतीम् ॥ ४३ ॥  
 सर्वत्र तुलसीवृन्दं सर्वत्र हरिपूजनम् ।  
 विश्वदलैस्तु सर्वत्र पूज्यते गिरिजापतिः ॥ ४४ ॥  
 कथं तेषां तु पितरो नरके निवसन्ति हि ।  
 तस्मिन्राज्ये समागत्य किं कुर्युर्यमकिंकराः ॥ ४५ ॥

**मूत उवाच**—शृणुध्वमृषयः सर्वे यदासीत्परमाद्भुतम् ।  
 स्वर्गगामिषु सर्वेषु व्यापाररहिते यमे ॥ ४६ ॥  
 पूजिताः सर्वलोकेषु सर्वे देवा बभूवुरे ।  
 तदाऽसौ धर्मराड्गत्वा शकलोकं महामनाः ॥ ४७ ॥  
 उवाच सर्वदेवानां पुरतः प्राञ्जलिः स्थितः ।

**यम उवाच**—चतुरशीतिलक्षाणां जीवानां या स्थितिः सदा ॥ ४८ ॥  
 तां नष्टामधुना वेद्मि यदि देवः प्रमाणवान् ।  
 यस्यां कीटादिषोनौ यः स्थितो जीवोऽतिपापवान् ॥ ४९ ॥  
 नरके संयमिन्यां वा तत्पुत्रेण स उद्धृतः ।  
 श्राद्धदेवार्चनादीनि करोति श्रुतिनिश्चयः ॥ ५० ॥

**इन्द्र उवाच**—अस्माकं हीनजीवानां को विशेषो यदा श्रुतिः ।  
 प्रमाणयति तत्त्वेन वयं देवा यदाज्ञया ॥ ५१ ॥  
 पुरोहित तव प्रज्ञा शोभना प्रतिभाति मे ।  
 पूर्वं चार्वाकबौद्धादिमार्गाः संदर्शितास्त्वया ॥ ५२ ॥  
 तेन मार्गेण विज्ञान्ता वेदमार्गवहिष्कृताः ।  
 दैत्याश्च दानवाश्चैव तथा बुरु द्विजोत्तमाः ॥ ५३ ॥

**गुरुवाच**—न चार्वाको न वै बौद्धो न जैनो यवनोऽपि वा ।

कापालिकः कौलिको वा तस्मिन्राज्ये विशेत्कचित् ॥ ५४ ॥

वेदः प्रमाणमित्येव मन्यमानाः प्रजाः शुभाः ।

कथं सा चालयते तात न शक्यं हि शुभाऽधुना ॥ ५५ ॥

विधिदत्तवरस्याहमुच्छेत्तुं शक्तिमान्कथम् ।

**इन्द्रादय ऊचुः**—दैत्यानां दानवानां च दुर्देशानां भवो यदा ॥५६॥

तदा शुकः स्वयं तेषां कृपया सोद्यमो भवेत् ।

तस्मात्त्वं विप्रशार्दूल कस्मादस्मानुपेक्षसे ॥ ५७ ॥

असाध्यं तव किं मन्या वयं तच्छरणं गताः ।

अस्माकं दुर्जनाः सर्वे वेदकर्मरताः कृताः ॥ ५८ ॥

तेषां व्यामोहनाय त्वं कुरु धर्मं कृपानिधे ।

देवानां रक्षसां चैव दैत्यानां पापकर्मणाम् ॥ ५९ ॥

**मृत उवाच**—एवं ब्रुवन्तु देवेषु बृहस्पतिरुदारधीः ।

उपायं चिन्तयामास सृष्टेः संरक्षणाय च ॥ ६० ॥

**गुरुवाच**—शृण्वन्तु त्रैलोक्याः सर्वे ममोपायं वदाम्पहम् ।

देवः कश्चिद्यदि भवेत्कपटी वैष्णवः स्वयम् ॥ ६१ ॥

शङ्खचक्राङ्किततनुस्तुलसीकाष्ठभूषितः ।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं च विभ्राणो हरिनामाक्षरं जपन् ॥ ६२ ॥

देवतामात्रभिन्दी च अकृत्रा मतिमीश्वरे ।

शिवद्वेषा महापापभ्रैरकः शिवभिन्दकः ॥ ६३ ॥

दम्भेन यदि तद्राज्ये शिवनिन्दा कृता भवेत् ।

तदा तत्पूर्वजाः सर्वे नरकं यान्ति दारुणम् ॥ ६४ ॥

ततो देवेषु सर्वेषु न कश्चिदवदत्तथा ।

कथयन्ति स्म चान्योन्यं नैतत्कर्मास्ति सुन्दरम् ॥ ६५ ॥

कश्चाण्डालः शिवं ब्रूयात्साधारण्येन विष्णुना ।

यस्य प्रसादाद्वैकुण्ठः प्राप्सवानीदृशं पदम् ॥ ६६ ॥

**मृत उवाच**—ततः किंनरमाहूय प्रोवाचेदं शचीपतिः ।

याहि किंनर मायावी भूत्वा त्वं वैष्णवो भुवम् ॥ ६७ ॥



तत्र गत्वा जनान्सर्वान्ब्रूहि कोऽस्ति शिवो महान् ।  
 एक एव महाविष्णुर्नान्यो ध्येयः कथंचन ॥ ६८ ॥  
 पूर्वं प्रच्छन्नरूपेण स्थित्वा मार्गं प्रदर्शय ।  
 जनैः शनैर्जना एवं भ्रष्टिष्यन्ति च हेतुकाः ॥ ६९ ॥  
 वेदः प्रमाणमित्येव वदितव्यं त्वया सदा ।

परं त्वेको महान्विष्णुः शिवस्तस्य च किंकरः ॥ ७० ॥

**मूत उवाच**—मेरितोऽसौ वलात्तेन भीतोऽगच्छच्छनैः शनैः ।

दाम्भिकं रूपमास्थाय यथा साष्टुं वदेज्जनः ॥ ७१ ॥  
 सर्ववैष्णवचिह्नानि धृत्वा भ्राम्पति तत्पुरे ।  
 शिष्यान्करोति तान्पूर्वं वदेन्मान्यो न शंकरः ॥ ७२ ॥  
 क्वचिद्भवति न ध्येयो न मुख्य इति च क्वचित् ।  
 क्वचिद्दुत्कृष्टजीवोऽयं क्वचिच्छ्रीविष्णुकिंकरः ॥ ७३ ॥  
 इति नानाविधा बुद्धिर्नराणां भेदिता यदा ।  
 तदा शिष्यैः परिहृतो राजगेहं विशत्यपि ॥ ७४ ॥  
 चालितो राजलोकोऽपि विरुद्धं नैव दृश्यते ।  
 विष्णुभक्तो मह्यश्शान्तो वेदवेदाङ्गपारवान् ॥ ७५ ॥  
 उपापनान्पनेकानि हर्षांश्च स्पन्दनान्वसु ।  
 लोकाः सर्वे ददत्येव गुप्तं पापं न दृश्यते ॥ ७६ ॥

**मूत उवाच**—एकस्मिन्समये विप्रा एकादश्यामुपोपिताः ।

जनाः प्रातश्शक्रपाणिं नमस्कर्तुं गताः श्रुभाः ॥ ७७ ॥  
 तत्रोपविष्टः शिष्यैः स्वैर्वृतः स्वीयेन तेजसा ।  
 न क्वचिन्मन्यते विप्रं यो भस्माद्भूतभालवान् ॥ ७८ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे राजा प्राप्तवाञ्छ्रीप्रतर्दनः ।  
 वृतो बहुविधैर्विप्रैः कुशहस्तैः श्रुचित्रतैः ॥ ७९ ॥  
 त्रिपुण्ड्रधारिणः केचिदूर्ध्वपुण्ड्रधरास्तथा ।  
 पठन्तः शिवसूक्तानि विष्णुसूक्तानि चापरे ॥ ८० ॥  
 एतैर्बहुविधैर्विप्रैर्वृतो राजोपविश्य सः ।  
 उवाच वचनं युक्तं फौमलाक्षरसंयुतम् ॥ ८१ ॥  
 स्वामिन्नागतवान्साक्षाद्भगवान्हरिपार्षदः ।  
 वेदं पठसि विष्णोश्च भक्तस्तद्वेपधार्षपि ॥ ८२ ॥

**वैष्णवाभास उवाच**—वेद एव परं श्रेयो वेदार्थादधिकं न हि ।

प्रमाणं वेद एवैको विष्णुवाक्श्रुतिरेव च ॥ ८३ ॥

राजन्वेदार्थविज्ञाने बहवो मोहिता जनाः ।

शिवपूजारताः सन्तो नानादेवतपूजकाः ॥ ८४ ॥

एको विष्णुर्न द्वितीयो ध्येयः किं त्वितरैः सुरैः ।

कूरं च कूरकर्माणं शंकरं मन्यते कथम् ॥ ८५ ॥

त्वदीया ब्राह्मणा एते ऊर्ध्वपुण्ड्राङ्किताः शुभाः ।

तान्दृष्ट्वा प्रीतिरत्पर्यं जायते नृपसत्तम ॥ ८६ ॥

एते त्रिपुण्ड्रभाला ये कररुद्राक्षमालिनः ।

पठन्तः शिवसूक्तानि दृष्ट्वा वञ्चं पतेदिवः ॥ ८७ ॥

दर्भस्योपग्रहः कोऽयं किं वा भस्माङ्गधारणम् ।

रुद्राक्षा का च को रुद्रः कानि सूक्तानि तस्य च ॥ ८८ ॥

विष्णुरेकः परो ध्येयो नान्यो देवः कदाचन ।

तदीयायुधचिह्नानि पूज्यो वै वैष्णवः सदा ॥ ८९ ॥

**राजोवाच**—अनादिना प्रभाणेन वेदेन प्रोच्यते शिवः ।

विष्णोरप्यधिको विप्रं संपूज्यो न कथं भवेत् ॥ ९० ॥

शिवादिषु पुराणेषु प्रोच्यते शंकरो महान् ।

सर्वास्तु स्मृतिषु ब्रह्मञ्छिवाचारषु सर्वतः ॥ ९१ ॥

नानागमेषु पुण्येषु प्रोच्यते ह्यज ईश्वरः ।

कठोरं वाक्यमेतत्ते भाति चेत्तसि धेऽशनिः ॥ ९२ ॥

**वैष्णवाभास उवाच**—नैकाग्रमनसस्तं तु येऽर्चयन्तीह धूर्जटिम् ।

इमशानवासी दिग्वासा ब्रह्ममस्तकंधृग्भवः ॥ ९३ ॥

सर्पहारः कथं सेव्यो विपधारी जटाधरः ।

तस्माद्विष्णुः सदा सेव्यः सुन्दरः कमलापतिः ॥ ९४ ॥

**राजोवाच**—नानारूपाणि रुद्रस्य के जानन्ति नराधमाः ।

त्वं वैष्णव इवाऽऽभासि वेदार्थं नैव वेत्सि रे ॥ ९५ ॥

**सूत उवाच**—चिन्तयित्वा ततो राजा विदुषो ब्राह्मणोत्तमान् ।

आहूय निर्णयं चास्य करिष्यामीति तत्त्वतः ॥ ९६ ॥ १८२० ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरैस्ततशौनकसंवादे शिवमहिमादि-

कथनं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

मूत उवाच-गृहं गत्वा स्थिरो भूत्वा यावदाहूयते(?) द्विकाम् ।

तावदेव कलिः पापो ब्राह्मणेषु विवेश ह ॥ १ ॥

कश्चिद्राजानमाश्रित्य भ्रूते तादृशमेव हि ।

अन्योन्यामर्पयोगेन खण्डयन्ति परस्परम् ॥ २ ॥

मूकीभावाश्रिताः केचित्केचिद्याथार्थवादिनः ।

यो यथा वक्ति तत्तादृगित्थं केचिदधोचिरे ॥ ३ ॥

इति कोलाहले वृत्ते राजचेतसि निर्णये ।

जाते लोके नास्तिकतां बहवः प्रतिपेदिरे ॥ ४ ॥

राजा वेत्ति महामूर्खं न तु मायाविनं द्विजम् ।

लोके तु भ्रान्तिमापन्ने राजा चिन्तापरोऽभवत् ॥ ५ ॥

ईश्वरं हन्ति दुष्टात्मा वध्योऽयं मम शास्त्रतः ।

परं तु लोको ब्रह्मघ्नं मिथ्या मां तु वदिष्यति ॥ ६ ॥

मूत उवाच-एतस्मिन्समये प्राप्ते लोकपूर्वपितामहाः ।

स्वर्गाद्भ्रष्टा क्षणेकानि नरकाणि प्रपेदिरे ॥ ७ ॥

येषां पुत्राश्च धौत्राश्च प्रतिपौत्रास्तथाऽपरे ।

मातामहादिवर्गाश्च सखिसंबन्धिवान्धवाः ॥ ८ ॥

शिवावगणनोद्धृतपातका यमलोकगाः ।

सुकृतं भस्मर्ता यातं मद्याद्गुह्योदकं यथा ॥ ९ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु कमलाहृदयंगमः ।

सुप्त आंक्रन्दमकरोच्छोणितौघपरिल्लुतः ॥ १० ॥

लक्ष्मीर्दृष्ट्वाऽधं तद्रूपं विह्वलं भयविह्वला ।

प्राप्ताऽऽश्चर्यं महाघोरं रुरोद भृशदुःखिता ॥ ११ ॥

लक्ष्मीरुवाच-वेदान्तवेद्य पुरुषेश्वर देवदेव

त्रैलोक्यनाथ किमिदं त्वयि दृश्यतेऽद्य ।

आकारमात्ररहितः पुरुषः पुराण-

स्त्वय्येव विश्वमिह रज्जुभुजंगमात्रम् ॥ १२ ॥

शैलाः पतन्ति जलधिर्मरुतामुपैति

सूर्यादयो इतरुचः पृथिवी पराणुः ।

भूतानि चाच्युत विभो विलयं प्रयान्ति

त्वद्रोममात्रमपि नैव चलेत्क्षणार्धम् ॥ १३ ॥

**श्रीनारायण उवाच**—उक्तं त्वया तदपि लक्ष्मि तथैव किंतु  
मत्स्वामिनोऽवगणना न हि शक्यते मे ।

कृत्वाऽपि पूज्यतममूर्तिमिमां गिरीशं

नो मन्यते तदिह वक्षसं ममैव ॥ १४ ॥

**लक्ष्मीरुवाच**—सर्वात्मा सर्ववित्कर्ता वक्ता धर्ताऽव्ययः प्रभुः ।

त्वं साक्षी सर्वलोकानां त्वत्तः परतरोऽस्ति कः ॥ १५ ॥

**श्रीनारायण उवाच**—अस्ति सर्वं वरारोहे मयि तत्तथ्यमेव हि ।

श्रीमहेशवराष्टुब्धं मदीयं न हि किंचन ॥ १६ ॥

एकः स्रजति भूतानि मत्समानि कियन्त्यपि ।

सत्तत्त्वं वेद्म्यहं देवि मदीयाः केचनापरे ॥ १७ ॥

वेदवेदाङ्गवेत्तृणां सहस्राप्पग्रजन्मनाम् ।

हननान्मुच्यते जीवो न तु श्रीशिवहेलनात् ॥ १८ ॥

गुर्वङ्गनागमनकृत्सदा मघनिपेवकः ।

आभ्रणस्वर्णहारी च कदाचिन्मुच्यते जनः ॥ १९ ॥

सीधो गोघ्नो वृषघ्नश्च तथा विश्वासघातकः ।

कृतघ्नो नास्ति को लुब्धः कदाचिन्मुच्यते जनः ॥ २० ॥

न तु श्रीरुद्रसामान्यदर्शी मुच्येत घन्धनात् ।

विरञ्चिविष्णुशक्रेभ्यः सर्वोत्कृष्टं न जायते ॥ २१ ॥

विष्णुना पदि वा तुल्यं मुच्यन्ते नैव जन्तवः ।

स्वामी मदीयः श्रीकण्ठस्तस्य दासोऽस्मि सर्वदा ॥ २२ ॥

**लक्ष्मीरुवाच**—गच्छामस्तत्र वैकुण्ठ यत्र स्वाम्यस्ति ते विभो ।

कैलासपर्वते रम्ये प्रणमामः सदाशिवम् ॥ २३ ॥

**सूत उवाच**—ततस्तौ गरुडाकूडौ गत्वा कैलासपर्वतम् ।

मानाविधैः स्तोत्रपदैः संतुष्टं चक्रतुः क्षणात् ॥ २४ ॥

ततो ब्रह्मादयो देवाः सिद्धास्तप्राऽऽगता गिरौ ।

रुद्रः कौतूहलमेभ्युः सर्वैस्तैः परिवारितः ॥ २५ ॥

भवानीसहितस्तत्र गतो यत्र प्रतर्दनः ।

सर्वदेवविमानानां मध्ये तिष्ठति शंकरः ॥ २६ ॥

**श्रीमहेश उवाच**—कथयन्तु कथं ह्येते मिलिताः सर्वनिर्जराः ।

किं कार्यं किमपूर्वं वा राजा चिन्तानुरः कथम् ॥ २७ ॥

देवा ऊचुः—स्वामिन्मतर्दनो राजा विधिलब्धवरोऽभवत् ।

वेदमार्गप्रवक्ता च स्वयं तस्य प्रवर्तकः ॥ २८ ॥

सृष्टिरक्षार्थमस्माभिः कपटं कृतमीश्वर ।

सर्वधातुश्च भवतो हेलनं कारितं सुरैः ॥ २९ ॥

तत्क्षमस्व महादेव किंनरोऽयं प्रवर्तितः ।

कल्पितो वैष्णवोऽस्माभिस्तव निन्दापरायणः ॥ ३० ॥

सूत उवाच—एतस्मिन्नेव काले तु राजा वृत्तान्तमेयिवान् ।

तीव्रं स्वङ्गं समादाय हतवान्किंनरं क्रुधा ॥ ३१ ॥

तत्पक्षपातिनो ये च तेषां शीर्षाणि कंधरात् ।

पृथक्कृतानि पश्वाद्या हता अश्वा अनेकशः ॥ ३२ ॥

न तं वारयते कश्चिद्राजानं पुण्यचेतसम् ।

महादेवेन शमितः क्रोधस्तस्य महात्मनः ॥ ३३ ॥

ततः कोलाहले.शान्ते नन्दी कौतुकपूर्वकम् ।

पुषोज हयशीर्षं तच्छरीराणि पृथक्पृथक् ॥ ३४ ॥

शीर्षाणि हयगात्रैश्च सम्यक्संयोज्य बुद्धिमान् ।

उवाच वचनं तथ्यं देवसंसदि शुद्धमीः ॥ ३५ ॥

येन वक्त्रेण गिरिशो हेलितस्तन्मुखं हयः ।

मुद्राधारणगर्वेण हेलितस्तत्तुर्हयः ॥ ३६ ॥

\* ब्रह्मोवाच—जातं तदधुना तथ्यं राजर्षो राज्यकर्तरि ।

भविष्यं कथयिष्यामि तच्छृणुध्वं समाहिताः ॥ ३७ ॥

घोरे कल्पियुगे प्राप्ते म्लेच्छैर्व्याप्ते भुवस्तले ।

सर्वाचारपरिभ्रष्टा भविष्यन्ति नराधमाः ३८ ॥

तदान्ध्रीदेशमध्ये तु दाक्षिणात्यो भविष्यति ।

ब्राह्मणो दुर्भगः कश्चिद्धिवाब्राह्मणीरतः ॥ ३९ ॥

तस्य पापिष्ठविप्रस्य व्यभिचारात्सुतोऽनघः ।

भविष्यति गुणान्वेषी दैवादध्ययनोत्सुकः ॥ ४० ॥

पद्मपादुकमाचार्यं वरं वेदान्तवादिनम् ।

अद्वैतागमबोद्धारं प्रणम्य मार्थयिष्यति ॥ ४१ ॥

\* जमशितपुस्तक एव ब्रह्मोवाचयति पदद्वय विद्यते ।

विप्रोऽहं मधुशर्माऽस्मि स्वामिन्मां पाठय प्रभो ।  
 वेदान्तशास्त्रसर्वं च मद्यं पाठय भो गुरो ॥ ४२ ॥  
 आचार्यः करुणामूर्तिर्विनयेन परिप्लुतम् ।  
 करिष्यति च शिष्याणामद्रुष्यं प्रेमवत्सलः ॥ ४३ ॥  
 ततो दिने दिने भक्तिं करिष्यति यथा यथा ।  
 गुरुर्भवति संतुष्टः सर्वां विद्यां प्रयच्छति ॥ ४४ ॥  
 \*एकदा गुरुणा दृष्टः स्नानसन्ध्यादिकाः क्रियाः ।  
 भ्रूत्वा भोजनप्रेम्भुर्भविष्यति निराह्निकः ॥ ४५ ॥  
 पृष्टोऽसौ गुरुणा तथ्यं गोलको हि वदिष्यति ।  
 धर्मः साधारणो नाथ क्रतोऽयं केन कुर्वसि ॥ ४६ ॥  
 ततो वक्ष्यत्यथाऽऽचार्यः कस्ते ज्ञातः प्रसूत्र का ।  
 ततो मे ब्राह्मणः स्वामिन्ब्राह्मणीं च प्रसूर्मम ॥ ४७ ॥  
 वद मातामहः कस्ते येनं प्राप्ता प्रसूस्तव ।  
 को विधिः कुत्र वा दत्ता तथ्यं शीघ्रं वदान्यथा ॥ ४८ ॥  
 भस्मसात्त्वां करिष्यामि हीनं ब्राह्मणवर्चसा ।  
 इत्येवं कथिते सर्वे कथयिष्यति तत्ततः ॥ ४९ ॥  
 शापं दास्यत्यथाऽऽचार्यः सिद्धान्तो मा स्फुरत्वयम् ।  
 सिद्धान्ते जडता तेऽस्तु परमद्वैतदर्शने ॥ ५० ॥  
 कथं त्वदीया सेवा मे निष्फला स्याद्बद्ध प्रभो ।  
 इत्यादिबहुनिर्वेदं यदा त्वेष करिष्यति ॥ ५१ ॥  
 पिश्चाद्गदिष्यति स्वामी पूर्वपक्षोऽस्तु ते दृढः ।  
 सिद्धान्ते सर्वथैवाऽऽन्ध्यं मम वाक्यं न चान्यथा ॥ ५२ ॥  
 मधुना तेन शास्त्राणां पूर्वपक्षो विलोकितः ।  
 भविष्यति च वेदान्तमन्यथा कर्तुमुद्यतः ॥ ५३ ॥  
 यथा यथा कलेर्देवाः प्रचरः संभविष्यति ।  
 तथा तथाऽयमुन्मार्गः शिवद्वेषुर्भविष्यति ॥ ५४ ॥  
 पूर्वं तु द्राविडादेशात्कर्णाटिकतिलङ्गयोः ।  
 शनैर्गोदावरीतीरे प्रभूतोऽयं भविष्यति ॥ ५५ ॥

\* उल्लिखितपुस्तकेऽयं भाका नास्ति ।

† घटचमोऽस्तपुस्तकेषु यथादत्तादि मभावप्यतास्यन्त साधर्म्येकद्वय नास्ति ।

१ ( ५ ४ ) प्यति ॥ ६५ ॥ २ ( ज. ) ०१ प्रना प्र० । ३ ( ६ ) सर्वे व० ।

पूर्णे कलियुगे प्राप्त आर्यावर्ते चलिष्यति ।  
 मायावादमसच्छास्त्रं वदिष्यन्ति नराधमाः ॥ ५६ ॥  
 तेषां दर्शनमात्रेण सचैलं स्नानमाचरेत् ।  
 भद्रात्वं च यथा विष्टे राहोः स्वर्भानुता यथा ॥ ५७ ॥  
 हरित्वं च यथाऽनेके तथैते तच्चवादिनः ।  
 योगनिन्दापरा नित्यमग्निहोत्रस्य निन्दकाः ॥ ५८ ॥  
 वेदान्तसममित्याहुः पुराणानि च ये नराः ।  
 केवलं वेपमात्रेण नरा नरकगामिनः ॥ ५९ ॥  
 संभाषणे कृते येषां पतेच्च ब्रह्मवर्चसः ।  
 वरं बौद्धस्तथा जैनः कापालिकमतोऽपि वा ॥ ६० ॥  
 व्यक्तं वदति वेदानामप्रामाण्यं तु तैः किमु ।  
 वेदप्रामाण्यवत्कृत्वाऽभिमानी न च वैदिकः ॥ ६१ ॥  
 ईश्वरं वचनाद्वक्ति परं चानीश्वरः खलः ।

**मृत उवाच**—एवं जाते ततः सर्वे यथाऽऽगतमितो गताः ।  
 प्रतर्दनोऽपि राजर्षिः कृत्वा राज्यमकण्ठकम् ॥ ६२ ॥  
 देहान्ते मुक्तिमापन्नः परामद्वैतलक्षणाम् ।  
 ततः परं भविष्यन्ति तस्य शिष्या अनेकशः ॥ ६३ ॥  
 संन्यासिवेपमात्रेण कुर्वाणा जीविकां निजाम् ।  
 राजसेवां प्रकुर्वाणाः प्रच्छन्नाः कौलिका अपि ॥ ६४ ॥  
 अगम्यागमने सक्ता अभक्षस्य च भक्षणे ।  
 अपेयानिरताः केचिन्नानाभोगसमाकुलाः ॥ ६५ ॥  
 यानारूढाः सदा राजसेवायां तत्परा अपि ।  
 अद्वैतनिन्दानिरताः प्रच्छन्नग्रन्थगौरवाः ॥ ६६ ॥  
 अन्यदर्शनसिद्धान्तं नैव जानन्ति तत्त्वतः ।  
 तत्र दोषस्य बुद्ध्या वै पठिष्यन्ति कलौ युगे ॥ ६७ ॥  
 अन्यदैवतनामानि यदि हेयानि तत्कथम् ।  
 वेदं पठन्ति पापिष्ठाः कथं तर्कं वदन्ति हि ॥ ६८ ॥  
 मीमांसाशास्त्रसद्वन्यानालोक्य च पुनः पुनः ।  
 पूर्वपक्षं च सर्वेषां ग्रहीष्यन्ति समत्तराः ॥ ६९ ॥

स्वकीर्षं न वदिष्यन्ति यतो नास्ति प्रमांकरम् ।  
हंसान्परमहंसांश्च निन्दिष्यन्ति च जारजाः ॥ ७० ॥  
जातमात्रं नरं कंचिन्मुण्डयित्वा मठाधिपम् ।  
कापायवस्त्रमात्रेण करिष्यन्ति नराधमाः ॥ ७१ ॥  
माठापत्यं च सेवा च धनसंग्रह एव च ।  
दासीगमनमीर्ष्या च पञ्चधा तत्त्ववादिनः ॥ ७२ ॥  
संसारंस्तत्त्वमित्येव परं ते तत्त्ववादिनः ।  
मापाविलसितं विश्वमिति मापैकवादिनः ॥ ७३ ॥  
श्रद्धं तत्त्वं न जानन्ति विश्वं तत्त्वं वदन्ति च ।  
शब्दमात्रेण ते जाताः कलौ हा तत्त्ववादिनः ॥ ७४ ॥  
भविष्यति यदा विप्राः पापानां प्रभवः कलौ ।  
तथा तथा भविष्यन्ति ह्युदीच्यां दम्भवैष्णवाः ॥ ७५ ॥  
शिवसामान्यवक्त्रं शिवसामान्यदर्शनम् ।  
दृष्ट्वा स्नायात्सचेलः सन्निश्वसामान्यसङ्गिनम् ॥ ७६ ॥  
मधुदांशतमार्गेण पापिष्ठा वैष्णवाः कलौ ।  
भविष्यन्ति ततो म्लेच्छाः शूद्रा यूथवहिष्कृताः ॥ ७७ ॥  
तस्माच्छृणुध्वं विष्णुन्द्रा माहात्म्यं पावैतीपतेः ।  
भक्तिं तस्य सदा कर्तुमुद्यता भवत ध्रुवम् ॥ ७८ ॥ १८९८ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे कलिप्रवेशादि-  
कथनं नामोत्तरांशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

ऋषय ऊचुः—सूत भद्रं समाचक्ष्व सेवको यस्य माधवः ।  
श्रीमहेशस्य विष्णोश्च तुल्यत्वं ब्रुवते कथम् ॥ १ ॥  
ब्रुवन्ति तुल्यतां केचिद्वैपरीत्येन केचन ।  
एकत्वं केचिदीशेन केशवस्य वदन्ति हि ॥ २ ॥  
अत्र सिद्धान्तमर्यादां ब्रूहि तत्त्वेन सूतज ।  
अवाधा येन चास्माकं संशयो विनिवर्तते ॥ ३ ॥

मूत्र उवाच—शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे श्रुतिसिद्धान्तमुत्तमम् ।  
महेशान्न परं तत्त्वं सर्ववेदेषु गीयते ॥ ४ ॥  
वैकुण्ठप्रभृतीनां तु महेशरूपया पुनः ।  
महेशस्य च दामोऽयं विष्णुस्तेनानुकम्पितः ॥ ५ ॥



श्रुतिस्मृतिपुराणानां सिद्धान्तोऽयं यथाऽर्थतः ।  
 इन्द्रोपेन्द्रादयः सर्वे महेशस्यैव किंकराः ॥ ६ ॥  
 वेदान्तवेद्यमीशानं पार्वतीरमणं प्रभुम् ।  
 यो जानाति स वैकुण्ठो द्रुःखहा सर्वदेहिनाम् ॥ ७ ॥  
 वैकुण्ठं मन्यते सम्यगीशानं स पुरंदरः ।  
 य इन्द्रं मन्यते सर्वस्वामिनं स ऋषिर्मतः ॥ ८ ॥  
 स्वर्गलोकं समाप्नोति मुन्याज्ञाप्रतिपालकः ।  
 अद्वैतं शिवमीशानमज्ञात्वा नैव मुच्यते ॥ ९ ॥  
 घोरे कलिपुगे प्राप्ते श्रीशंकरपराङ्मुखाः ।  
 भविष्यन्ति नरास्तथ्यमिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ १० ॥  
 रुद्रक्रोधाग्निनिर्दग्धे मन्मथे तस्य भार्यया ।  
 रत्या विलपिते तस्य सखायोऽप्यतिदुःखिताः ॥ ११ ॥  
 वसन्तादय आगत्य तामूचुः किं विधीयते ।  
 सर्वलोकेशितुः शंभोर्वराका वैरवारणे ॥ १२ ॥

**रतिरुवाच**—मन्यते घातकः सर्वलोकेशोऽपूज्यो भवेदयम् ।  
 तत्र विघ्नः प्रकर्तव्यो येन केनापि हेतुना ॥ १३ ॥  
 अस्यापकीर्तिर्वक्तव्या न चलेद्यदि किंचन ।  
 तेन मे द्रुःखशान्तिः स्यात्किंचिन्मात्रं न चान्यथा ॥ १४ ॥

**वसन्तादय उचुः**—चतुर्दशसु विद्यासु गीयते चन्द्रशेखरः ।  
 वेदान्ता यं च गायन्ति मुनयः शंसितव्रताः ॥ १५ ॥  
 ब्रह्माद्या देवताः सर्वा इन्द्रोपेन्द्रादयस्तथा ।  
 न्यूनतां तस्य यो वृते कर्मचाण्डाल उच्यते ॥ १६ ॥  
 तेन तुल्यो यदा विष्णुर्वह्ना वा यदि गेचते ।  
 पष्टिवर्षसहस्राणि विद्यायां जायते क्रमिः ॥ १७ ॥  
 तुल्यता यदि नो शक्या न्यूनतायास्तु का कथा ।  
 मित्रस्याऽऽवृण्यमिच्छामः संकटे प्रतिभाति नः ॥ १८ ॥

**सूत उवाच**—विचार्यैवं तदा सर्वे महामोहपुरःसराः ।  
 तपस्तेपुर्महारौद्रं सर्वलोकभयंकरम् ॥ १९ ॥  
 कदाचिद्भगवान्ब्रह्मा प्रादुरासीदयानिधिः ।  
 मोहो दम्भस्तथा क्रोधो लोभस्ते सेवकाः कलेः ॥ २० ॥

पञ्चमो हेतुवादश्च मधुना सर्व आश्रिताः ।

तानुवाच ततो ब्रह्मा वृष्णीध्वं मनसेप्सितम् ॥ २१ ॥

यथा वाणी च भवतां तथाऽहं दातुमुद्यतः ।

**मोहाद्या ऊचुः**—अस्माकं परमं मित्रं कंदर्पो नाशितः प्रभो ॥ २२ ॥

महादेवेन तेनामी आट्टप्यं कर्तुमुद्यताः ।

भविष्यामो वयं तात रुद्रपूजाभिनिन्दकाः ॥ २३ ॥

यथा न लभते पूजामस्मत्तश्चन्द्रशेखरः ।

**ब्रह्मोवाच**—अधुना न भवेदेवं भविष्यत्यथ तच्चिरम् ॥ २४ ॥

भविष्याम इति प्रोक्तं भवतो नान्यथा क्वचित् ।

ये भवद्दशगा लोकास्तेभ्यः पूजा न धूर्जटेः ॥ २५ ॥

प्रार्थितोऽयं वरो दत्तो यथेष्टं कर्तुमर्हथ ॥ २६ ॥

**मृत उवाच**—इत्युक्त्वा तानथो ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ।

सर्वे ते मन्त्रयांचक्रुः कलिना सह दुःखिताः ॥ २७ ॥

**कलिस्वाच**—भवद्भिरधुना नोक्तं भविष्याम इतीरितम् ।

ततो मत्समये प्राप्ते सर्वमेव भविष्यति ॥ २८ ॥

अस्मत्त इति यत्प्रोक्तं तेन चास्मद्भ्रंशं स्थिताः ।

निन्दाकरा भविष्यन्ति नास्मान्यो मन्पते न सः ॥ २९ ॥

लोभमोहादिसंयुक्ताः प्राप्ते च मयि दारुणे ।

हेतुवादं पुरस्कृत्य शिवभक्तिपराङ्मुखाः ॥ ३० ॥

**मृत उवाच**—ततः कल्पियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिते ।

भ्लेच्छैर्ब्राह्मणधेनूनां विध्वंसनकरे सरे ॥ ३१ ॥

अस्वाध्यायव्ययट्टारे जैनैर्वौद्धादिसंकुले ।

ब्राह्मणे भ्लेच्छमार्गस्थे शूद्रे ब्राह्मणघातिनि ॥ ३२ ॥

तदा वसन्तः कर्णाटतिलङ्गादिकदृपकः ।

मधुनामा च विषवाक्षेत्रे विमान्भविष्यति ॥ ३३ ॥

गोलकः स तु पापिष्ठः पञ्चपादुकमीश्वरम् ।

वेदान्तव्याख्यानरतं शिष्यत्वेनाचंपिष्यति ॥ ३४ ॥

शास्त्रं पूर्णं ततोऽधीत्य स्थित आद्विकवर्जितः ।

किमभिहोत्रं को यागो हेतुमेवं करिष्यति ॥ ३५ ॥

गुरुराकण्यं तद्वाक्यं ब्राह्मणो न भवेदयम् ।

इति निश्चित्य तं दुष्टं वक्ष्यति श्रुततद्वचाः ॥ ३६ ॥

**गुरुर्वाच-**को वर्णस्तव मे ब्रूहि यथार्थं वेददूषक ।

कर्मब्रह्मोद्भवद्वेष्टा नोर्त्पत्तिर्ब्राह्मणात्तव ॥ ३७ ॥

**मधुर्वाच-**ब्राह्मणादहमुत्पन्नो ब्राह्मण्यां च न संशयः ।

सत्यं वदामि नो मिथ्या कथं मां पश्यसे गुरो ॥ ३८ ॥

**गुरुर्वाच-**तन्माता केन दत्ता रे कस्य पुत्री कदा कथम् ।

कस्मै दत्ता च विधिना केन तद्ब्रूहि मा चिरम् ॥ ३९ ॥

**मधुर्वाच-**विधवा जननी नाथ ब्राह्मणेन तपस्विना ।

गर्भिणी समभूत्स्मादयं देहस्ततोऽभवत् ॥ ४० ॥

**गुरुर्वाच-**कपटेन यतः शास्त्रं भक्तोऽधीतं दुरात्मना ।

तेन सिद्धान्तमर्यादा कदा चिन्मा स्फुरत्वियम् ॥ ४१ ॥

**मधुर्वाच-**भविष्यति महाभाग वचनं तव नान्यथा ।

पूर्वपक्षो मम हृदि प्रादुर्भवतु निश्चलः ॥ ४२ ॥

**गुरुर्वाच-**अन्धता तव सिद्धान्ते पूर्वपक्षे च पाठवम् ।

भवत्वेव परं त्वेकं पापाः शिष्या भवन्तु ते ॥ ४३ ॥

मोहात्सिद्धान्तरहिता लोभात्ते वृषसेवकाः ।

क्रोधात्कठिनवक्तारो दम्भाद्वेषेण सुन्दराः ॥ ४४ ॥

हेतुवादेनं शास्त्राणि सर्वाणि न विदन्ति ते ।

निरयेष्वेव घोरेषु गमिष्यन्त्यचिराच्चिरम् ॥ ४५ ॥

**सूत उवाच-**मधुनामा ततः प्राप्य शापं तं दुष्टबुद्धिमान् ।

बादरायणसूत्राणां व्याख्यानं स करिष्यति ॥ ४६ ॥

मध्वाचार्यस्ततो भावादाक्षिणात्प्यो महान्कलौ ।

तच्छिष्याः प्रतिशिष्याश्च नाऽऽप्यवित्तं न चोत्कले ॥ ४७ ॥

न गौडे न च गङ्गापास्तीरे गोदावरीतटे ।

नार्घुदारण्यमध्ये च तत्रचारो भविष्यति ॥ ४८ ॥

यथा यथा कलेर्घोरः प्रचारो हि भविष्यति ।

तथा तथा महाराष्ट्रे हेतुका विरलाः क्वचित् ॥ ४९ ॥

ततोऽतिदुष्टसमये महाम्लेच्छैस्तिरस्कृते ।

प्रच्छन्नः कुत्रचित्पापी प्रचारं हि विधास्यति ॥ ५० ॥"

पञ्चवर्षस्तु संन्यासी पठित्वा दुष्टबुद्धिमान् ।  
 शिष्योपशिष्यसंगुक्तो हेतुवादं करिष्यति ॥ ५१ ॥  
 तत्त्वं संसार इत्येव न बाध्यः सत्य एव हि ।  
 वदत्यतस्तत्त्ववादी मिथ्यावादी स उच्यते ॥ ५२ ॥  
 मिथ्याभूतः प्रपञ्चोऽयं मया निर्मित इष्यते ।  
 मायावादिन इत्येते वस्तुतस्तत्त्ववादिनः ॥ ५३ ॥  
 सच्छास्त्रं जैमीनीयं तु कर्मकाण्डप्रवर्तकम् ।  
 गौतमीयं तु सच्छास्त्रमीश्वरप्रतिपादकम् ॥ ५४ ॥  
 पुंभ्रुकृत्योर्विवेकस्य बोधकं कापिलं मतम् ।  
 तथा वैशेषिकं शास्त्रमीश्वरप्रतिपादकम् ॥ ५५ ॥  
 पातञ्जलं योगशास्त्रं शैवं तच्छास्त्रमिष्यते ।  
 वेदान्तशास्त्रमूर्धन्यमद्वैतं यच्च बोधयेत् ॥ ५६ ॥  
 वेदाः सर्वे षडङ्गास्तु पुराणानीतिहासकः ।  
 स्मृतिश्लोपपुराणानि तथोपस्मृतयः श्रुभाः ॥ ५७ ॥  
 अन्योन्यं सर्वविधानां प्रामाण्यमधिकारतः ।  
 तात्पर्यं च पुमर्थेषु सर्वाण्येवं जगुः किल ॥ ५८ ॥  
 किञ्चिद्विरोधे सत्येव न विरोधोऽस्ति तत्त्वतः ।  
 मन्यन्ते श्रीमहेशानं सर्वाण्येव परात्परम् ॥ ५९ ॥  
 पापिष्ठा नैव मन्यन्ते वेदमार्गबहिष्कृताः ।  
 आचार्यं मधुनामानं वदन्तो विधवासुतम् ॥ ६० ॥  
 प्रच्छन्नोऽसौ महादुष्टशार्वाको मधुसंज्ञकः ।  
 भविष्यति कलौ विप्राः शिवनिन्दाप्रवर्तकः ॥ ६१ ॥  
 मोहास्तिद्धान्तबाह्यत्वं क्रोधाच्छास्त्रनिपेधनम् ।  
 लोभेन नृपतेः सेवा दम्भादन्यप्रतारणम् ॥ ६२ ॥  
 गणिकामैथुनं कामाद्धेतुवादेन वादिता ।  
 भविष्यति कलौ विप्राः पोढेयं तत्त्ववादिता ॥ ६३ ॥  
 पञ्चवर्षं यतिं कृत्वा क्रमेणाऽऽदाय घालकम् ।  
 माठापत्यं विद्यास्पन्ति द्रव्यलोभेन नास्तिकाः ॥ ६४ ॥  
 पारंपर्यं मठस्यैव रक्षिष्यन्त्यभिरागिणः ।  
 भोगासक्ताश्च पापिष्ठा दासीगमनकारिणः ॥ ६५ ॥

नाम्ना संन्यासिनस्तीर्थे यानारूढाः ससेवकाः ।  
 नरवाहनमारूढाः शिखासूत्रबहिष्कृताः ॥ ६६ ॥  
 तत्पक्षपातिनो मूढा गृहस्थाः शिवनिन्दकाः ।  
 मिथ्या वैष्णवमानेन अस्ता निरयगामिनः ॥ ६७ ॥  
 वैष्णवा वेषमात्रेण तन्तुमात्रेण वाढवाः ।  
 वादिनः क्रोधमात्रेण विद्वांसो हेतुवादतः ॥ ६८ ॥  
 पठिष्यन्ति च शास्त्राणि केचिद्रूपणसिद्धये ।  
 स्वकीयं गोपयिष्यन्ति परकीयेन पण्डिताः ॥ ६९ ॥

**सूत उवाच**—महामोहादयः सर्वे रतिमाश्वास्य भाभिनीम् ।  
 प्रोचुश्च श्लक्ष्णया वाचा तद्दुःखविनिवारकाः ॥ ७० ॥

**मोहादय उचुः**—रते मा कुरु संतापमहं मोहः कलेः सखा ।

क्रोधः पत्युः परो बन्धुर्लोभमोहौ च देवरौ ॥ ७१ ॥

प्राप्ते कल्पियुगे पूर्णे मोहलोभादयो वयम् ।

वसन्तं मधुनामानमवतीर्णं च दक्षिणे ॥ ७२ ॥

ममाऽऽश्रित्य ततो हेतुवादं कुटिलबुद्धयः ।

करिष्यामो यथा शक्यं शिवपूजानिवारणम् ॥ ७३ ॥

**सूत उवाच**—इति ते रतिमाश्वास्य यथाऽऽगतमितो गताः ।

इति सर्वं समारव्यातं शिवनिन्दककारणम् ॥ ७४ ॥ १९७२ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरै सूतशौनकसंवादे महेशविष्णुतुल्यत्व-  
 कारणादिकथनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

**ऋषय ऊचुः**—सुदर्शनारूपं यच्चक्रं लब्धवांस्तत्कथं हरिः ।

महादेवाद्भगवतः सूत तद्ब्रुमर्हसि ॥ १ ॥

**सूत उवाच**—देवापुराणामभवत्संप्रामोऽद्भुतदर्शनः ।

देवा विनिजिता दैत्यैर्विष्णुं शरणमागताः ॥ २ ॥

स्तुत्वा तं विविधैः स्तोत्रैः प्रणम्य पुरतः स्थिताः ।

भयभीताश्च ते सर्वे क्षताङ्गाः क्लेशिता भृशम् ॥ ३ ॥

तान्दृष्ट्वा प्राह भगवान्देवदेवो जनार्दनः ।

किमर्थमागता देवा वक्तुमर्हथ सांप्रतम् ॥ ४ ॥

यचः श्रुत्वा हरेर्देवाः प्रणम्योञ्जुः सुरोत्तमा ।

निजिता दानवैः सर्वे शरणं त्वामिहाऽऽगताः ॥ ५ ॥

गतिस्त्वमेव देवानां ज्ञाता त्वं पुरुषोत्तमं ।  
 हन्तुमर्हसि ताञ्शीघ्रमवध्यान्वारिजेक्षण ॥ ६ ॥  
 जालंधरवधार्थाय यच्चक्रं शूलपाणिनः ।  
 महादेवाद्वाराल्लब्धं जहि तेत्त महाबलान् ॥ ७ ॥  
 तेषां तद्गचनं श्रुत्वा भगवान्वारिजेक्षणः ।  
 अहं देवास्तथा नूनं करिष्यामीति सुव्रताः ॥ ८ ॥  
 हिमवत्पर्वतं गत्वा पूजयामास शंकरम् ।  
 लिङ्गं तत्र प्रतिष्ठाप्य स्नाप्य गन्धोदकैः श्रुभैः ॥ ९ ॥  
 त्वरिताख्येन रुद्रेण संपूज्य च महेश्वरम् ।  
 ततो नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ १० ॥  
 \*प्रतिनाम च पदानि तैरिष्ट्वा वृषभध्वजम् ।  
 भवाद्यैर्नामभिर्भक्त्या स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ११ ॥  
**विष्णुस्वाच**-भवः शिवो हरो रुद्रः पुष्कलो मुद्गलोचनः ।  
 अग्रगण्यः सदाचारः सर्वः शंभुर्महेश्वरः ॥ १२ ॥  
 ईश्वरः स्थाणुरीशानः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।  
 वरीयान्वरदो वन्द्यः शंकरः परमेश्वरः ॥ १३ ॥  
 गङ्गाधरः शूलधरः परार्थैकप्रयोजकः ।  
 सर्वज्ञः सर्वदेवादिर्गिरिधन्वा जटाधरः ॥ १४ ॥  
 चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिविधा विश्वामरेश्वरः ।  
 वेदान्तसारसंदोहः कपाली नीललोहितः ॥ १५ ॥  
 ध्यानाहारोऽपरिच्छेद्यो गौरीभर्ता गणेश्वरः ।  
 अष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्गः स्वर्गसाधनः ॥ १६ ॥  
 ज्ञानगम्यो दृढग्रजो देवदेवत्रिलोचनः ।  
 वामदेवो महादेवः पटुः परिवृद्धो दृढः ॥ १७ ॥  
 विश्वरूपो विरुपाक्षो वागीशः श्रुतिमन्तगः ।  
 सर्वमणवसंवादी वृषाङ्को वृषवाहनः ॥ १८ ॥  
 ईशः पिनाकी सट्टाङ्गी चित्रवेपथ्विरंतनः ।  
 मनोमयो महायोगी स्थिरो ब्रह्माण्डधूर्जटी ॥ १९ ॥

\* पञ्चसहितपुस्तकयोरेव श्लोका न विद्यते ।

कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रणवात्मकः ।  
 नागचूडः सुचक्षुष्यो दुर्वासाः पुरशासनः ॥ २० ॥  
 दृगायुधः स्कन्दगुरुः परमेष्ठी परायणः ।  
 अनादिमध्यनिधनो गिरिशो गिरिजाधवः ॥ २१ ॥  
 कुबेरबन्धुः श्रीकण्ठो लोकवन्द्योत्तमो मृदुः ।  
 सामान्यो देवको दण्डी नीलकण्ठः परश्वधीः ॥ २२ ॥  
 विशालाक्षो महाव्याधः सुरेशः सूर्यतापनः ।  
 धर्मधामा क्षमाक्षेत्रं भगवान्भगनेत्रहा ॥ २३ ॥  
 उग्रः पशुपतिस्ताक्षर्यः प्रियभक्तः प्रियंवदः ।  
 दाता दयाकरो दक्षः कपर्दी कामशासनः ॥ २४ ॥ १०० ॥  
 इमशाननिलयस्तिष्यः इमशानस्थो महेश्वरः ।  
 लोककर्ता भूतपतिर्महाकर्ता महौषधिः ॥ २५ ॥  
 उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।  
 नीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमः सोमरतः सुधीः ॥ २६ ॥  
 सोमपोऽमृतपः सौम्यो महानीतिर्महाऽमृतिः ।  
 अजातशत्रुरालोक्यः संभान्यो हव्यवाहनः ॥ २७ ॥  
 लोककारो वेदकारः सूत्रकारः सनातनः ।  
 महर्षिः कपिलाचार्यो विश्वदीप्तिर्विलोचनः ॥ २८ ॥  
 पिनाकपाणिभूदेवः स्वस्तिं कृत्स्वस्तिदः सुधा ।  
 धात्रीधामा धामकरः सर्वगः सर्वगोचरः ॥ २९ ॥  
 ब्रह्मसृष्टिविश्वसृक्सर्गः कर्णिकारः प्रियः कविः ।  
 शाखो विशाखो गोशाखः शिवो भिषगनुत्तमः ॥ ३० ॥  
 गङ्गाप्लवोदको भव्यः पुष्कलः स्थपतिः स्थितः ।  
 विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथिः ॥ ३१ ॥  
 सगणो गणकापश्च मुकीर्तिश्छिन्नसंशयः ।  
 कामदेवः कामकालो भस्मोद्भूतविग्रहः ॥ ३२ ॥  
 भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्तः कृतागमः ।  
 समावृत्तो निवृत्तात्मा धर्मपुञ्जः सदाशिवः ॥ ३३ ॥

१ (घ. ङ. छ. ज.) सुखी ॥ २६ ॥ २ (घ. ङ. छ. ज.) अजात० ३ (क. ख. ग. घ.)  
 अस्तिदः स्वस्तिदृष्टमुपा ॥ ४ (क. ख. ग. ज. घ.) ० वेदः स० ५ (घ. ङ. छ.) विनेया०  
 ६ (घ. ङ. छ.) भस्मपुञ्ज०

अकल्मषश्चतुर्बाहुः सर्वोवासो दुरामदः ।  
 दुर्लभो दुर्गमो दुर्गः सर्वायुधविशारदः ॥ ३४ ॥  
 अध्यात्मयोगनिलयः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ।  
 शुभाङ्गो योगसारङ्गो जगदीशो जनादेनः ॥ ३५ ॥  
 भस्मशुद्धिकरो मेरुस्तेजस्वी शुद्धविग्रहः ॥ २०० ॥  
 हिरण्यरेतास्तरणिर्मरीचिर्महिमालयः ॥ ३६ ॥  
 महोद्दो महागर्तः सिद्धवृन्दारवन्दितः ।  
 व्याघ्रचर्मधरो व्याली महाभूतो महानिधिः ॥ ३७ ॥  
 अभृतात्माऽमृतवपुः पञ्चपद्मः प्रभञ्जनः ।  
 पञ्चविंशतितत्त्वस्थः पारिजातः पगपरः ॥ ३८ ॥  
 सुलभः सुव्रतः शूरो वाग्मायैकनिधिर्नैधिः ।  
 वर्णाश्रमगुरुर्वर्णां शत्रुजिच्छत्रुतापनः ॥ ३९ ॥  
 आश्रमः क्षपणः क्षामो ज्ञानवानचलश्चलः ।  
 प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः सुपर्णो वायुवाहनः ॥ ४० ॥  
 धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणराजिर्गुणाकरः ।  
 अनन्तदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिताज्जमः ॥ ४१ ॥  
 श्विवाचो महाकायो विश्वकर्मा विशारदः ।  
 वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतवाहनः ॥ ४२ ॥  
 उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितक्रामो जितप्रियः ।  
 कल्पानप्रकृतिः कल्पः सर्वलोकप्रजापतिः ॥ ४३ ॥  
 तपस्वी तारको धीमान्प्रधानप्रभुरव्ययः ।  
 लोकपालोऽन्तर्हितात्मा कल्पादिः कमलेक्षणः ॥ ४४ ॥  
 वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो नियमो नियमाश्रयः ।  
 राहुः सूर्यः शनिः केतुर्विरामो विहुमच्छविः ॥ ४५ ॥  
 भक्तिगम्यः परं ब्रह्म मृगवाणार्पणोऽनघः ।  
 अर्द्रिद्रोणिर्कृतस्थानः पवनात्मा जगत्पतिः ॥ ४६ ॥  
 सर्वकर्माचलस्त्वष्टा मङ्गल्यो मङ्गलप्रदः ।  
 महातपा दीर्घतपाः स्थविरेणुः स्थविरो ध्रुवः ॥ ४७ ॥

\* अमृतात्मेत्यादिनिधिर्ल्यन्त इत्यस्यसाक्षरपुस्तकेषु नास्ति ।

१ ( क. ख. ग. घ. ) पररोजस्वी । २ ( क. ख. ग. घ. ) ०द्वादशो म० ३ ( च. छ. ) ०मृताऽ  
 तपः श्रान्प्रश्न० ४ ( छ. ) अभिगा० ५ ( क. ग. घ. ) ०वादी म० ६ ( घ. ) ०श्वधर्मवि०  
 ७ ( ड. ) ०प्रधान० ८ ( क. ख. ग. घ. ) ०द्विन्द्रालयः म्हा० ९ ( ख. ग. ) ०पद्म. १५०



अहः संवत्सरो व्यालः प्रमाणं परमं तपः ॥ ३०२ ॥  
 संवत्सरकरो मन्त्रः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥ ४८ ॥  
 अजः सर्वेश्वरः सिद्धो महारेता महाबलः ।  
 योगी योगो महादेवः सिद्धः सर्वादिरच्युतः ॥ ४९ ॥  
 चतुर्वैद्यमनाः सत्यः सर्वपापहरो हरः ।  
 अमृतः शाश्वतः शान्तो वाणहस्तः प्रतापवान् ॥ ५० ॥  
 कमण्डलुधरो धन्वी वेदाङ्गो वेदविन्मुनिः ।  
 भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनेता दुराधरः ॥ ५१ ॥  
 अतीन्द्रियो महामायः सर्वावासश्चतुष्पथः ।  
 कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबलः ॥ ५२ ॥  
 महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचारी पुरन्दरः ।  
 निशाचरः भैतचारी महाशक्तिर्महाद्युतिः ॥ ५३ ॥  
 अनिर्देश्यवपुः श्रीमान्सर्वाकर्षकरो मतः ।  
 बहुश्रुतो बहुमांयो नियतात्माऽभयोद्भवः ॥ ५४ ॥  
 भोजस्तेजोद्युतिधरो नर्तकः सर्वनायकः ।  
 नित्यघण्टाङ्गियो नित्यप्रकाशात्मा प्रतापनः ॥ ५५ ॥  
 ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रः संग्रामः शारदप्रभवः ।  
 युगादिक्रद्युगावर्तो गम्भीरो वृषवाहनः ॥ ५६ ॥  
 इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः शरभः सरभो धनुः ।  
 अपां निधिरधिष्ठानं विजयो जयकालवित् ॥ ५७ ॥  
 प्रतिष्ठितः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः ।  
 विमोक्षनः मुरुङ्गो विमोक्षो विबुधश्चयः ॥ ५८ ॥  
 धालरूपो बलोन्मार्थी विकर्ता गहनो गुहः ।  
 करणं कारणं कर्ता सर्वबन्धप्रमोचनः ॥ ५९ ॥ ४०३ ॥  
 व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः ।  
 दुन्दुभो ललितो विश्वो भवात्माऽऽत्मनि संस्थितः ॥ ६० ॥  
 राजराजप्रियो रामो राजजूडामणिः प्रभुः ।  
 वीरेश्वरो वीरर्भद्रो वीरासनविधिर्वैराट् ॥ ६१ ॥

वीरचूडामणिवंतां सीवानन्दो नदीधरः ।  
 आत्माधारद्विगूलाङ्कः शिपिविष्टः शिवाश्रयः ॥ ६२ ॥  
 बालसिल्यो महाचारस्तिग्मांशुर्वारिधिः स्वगः ।  
 अभिरामः सुशरण्यः सुब्रह्मण्यः सुधापतिः ॥ ६३ ॥  
 भृगुमान्कौशिको गोमाधिरामः सर्वसाधनः ।  
 ललाटाक्षो विश्वदेहः सारः संसारचक्रभृत् ॥ ६४ ॥  
 अमोघदण्डो मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसी ।  
 परब्रह्मपदो हंसः शबरो व्याघ्रकोऽनलः ॥ ६५ ॥  
 रुचिर्वैरुचिवेन्द्यो वाचस्पतिरहर्षतिः ।  
 रविर्विरोचनः स्कन्दः शास्ता वैवस्वतोऽर्जुनः ॥ ६६ ॥  
 मुक्तिरुन्नतकीर्तिश्च गान्तरामः पुरंजयः ।  
 केलीसपतिः कामारिः सविता रविलोचनः ॥ ६७ ॥  
 विद्वत्तमो वीतभयो विश्वकैर्माऽनिवारितः ।  
 नित्यो निपतकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ ६८ ॥  
 दूरश्रवा विश्वसहो ध्येयो दुःस्वप्नाशनः ।  
 उत्तारको दुष्कृतिहा दुर्धरो दुःसहोऽभयः ॥ ६९ ॥  
 अनादिभूर्भुवो लक्ष्मीः किरीटी त्रिदशाधिपः ।  
 विश्वगोप्ता विश्वहर्ता सुधीरो रुचिराङ्गदी ॥ ७० ॥  
 जननो जनजन्मादिः प्रीतिमात्रीतिमानथ ॥ ७० ॥  
 वसिष्ठः कश्यपो भानुर्भौमी भीमपराक्रमः ॥ ७१ ॥  
 प्रणवः सत्पथाचारो महाकायो महाधनुः ।  
 जन्माधिपो महादेवः सकलागमपारगः ॥ ७२ ॥  
 तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा विभ्रतिर्भूतिभूषणः ।  
 ऋषिर्ब्राह्मणवद्विष्णुर्जन्ममृत्युजरातिगः ॥ ७३ ॥  
 यज्ञो यज्ञपतिर्यज्ञा यज्ञान्तोऽमोघविक्रमः ।  
 महेन्द्रो दुर्भरः सेनी यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ॥ ७४ ॥  
 पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिर्विश्वतो विमलोदयः ।  
 आत्मयोनिरनाद्यन्तः पंढ्रिंशो लोकभृत्कविः ॥ ७५ ॥

॥ गायत्रीवल्लभः प्रांशुर्विश्वावासः सदाशिवः ।

शिथुर्गिरिरतः सम्राट् सुषेणः सुरशत्रुहा ॥ ७६ ॥

अमेयोऽरिष्टमथनो मुकुन्दो विगतज्वरः ।

स्वयंज्योतिरनुज्योतिरचलः परमेश्वरः ॥ ७७ ॥

पिङ्गलः कपिलश्मश्रुः शास्त्रनेत्रहृषीतनुः ।

ज्ञानस्कन्धो महाज्ञानी वीरोत्पत्तिरुपप्लवी ॥ ७८ ॥

भगो विवस्वानादित्यो योगाचारो दिवस्पतिः ।

उदारकीर्तिरुद्योगी सद्योगी सदसन्मयः ॥ ७९ ॥

नक्षत्रमाली नाकेशः स्वाधिष्ठानपद्माश्रयः ।

पवित्रपादः पापारिर्मणिपूरो नभोगतिः ॥ ८० ॥

द्वत्पुण्डरीकमासीनः शुक्रांशानो वृपाकपिः ।

नुष्टो गृहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थशासनः ॥ ८१ ॥

अधर्मेशत्रुरक्षयः पुरुहूतः पुरुहुतः ।

वृहद्भुजो ब्रह्मेगर्भो धर्मधेनुर्धनागमः ॥ ८२ ॥

जगद्धितैपी सुगतः कुमारः कुशलागमः ॥ ८०२ ॥

हिरण्यगर्भो ज्योतिष्मानुपेन्द्रस्तिमिरापहः ॥ ८३ ॥

अरोगस्तपनाध्यक्षो विश्वामित्रो द्विजेश्वरः ।

ब्रह्मज्योतिः सुबुद्धात्मा वृहज्ज्योतिरनुत्तमः ॥ ८४ ॥

मातामहो मातरिश्वा मनस्वी नागहारधृक् ।

पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातकंर्ष्यः पराशरः ॥ ८५ ॥

निरावरणविज्ञानो विरञ्चो विष्टरश्रवाः ।

आत्मभरनिरुद्धोऽत्रिज्ञानमूर्तिर्महापशाः ॥ ८६ ॥

लौकचूडामणिर्वरिश्चन्द्रः सत्यपराक्रमः ।

व्यालकल्पो महाकल्पः कल्पवृक्षः कर्लानिधिः ॥ ८७ ॥

अलङ्कारिष्णुरचलो रोचिष्णुर्विक्रमोत्तमः ।

आशुः सप्तपतिर्वेगी प्रवनः शिरिसारथिः ॥ ८८ ॥

असंतुष्टोऽतिथिः शुक्रः प्रमाथी पापशासनः ।

वसुश्रवाः कल्पवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः ॥ ८९ ॥

\* कर्मलक्षणपुस्तकेऽप्य श्लोको नास्ति ।

जयो जरारिशमनो लोहिताश्वस्तनूनपात् ।  
 पृषदश्वो नभोपोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा ॥ ९० ॥  
 निदाघस्तपनो मेघः पक्षः परपुरंजयः ।  
 सुखी नीलः मुनिष्पन्नः सुरभिः शिशिरात्मकः ॥ ९१ ॥  
 वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो वीजवाहनः ।  
 मनो बुद्धिरहंकारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः ॥ ९२ ॥  
 जमदग्निर्जलनिधिर्विपाको विश्वकारकः ।  
 भधरोऽनुत्तरो ज्ञेयो ज्येष्ठो निःश्रेयसालयः ॥ ९३ ॥  
 शैलो नाम तरुर्दाहो दानवारिरारिंदमः ॥ ७०० ॥  
 चामुण्डी जनकश्चारुनिःशलयो लोकशल्यहृत् ॥ ९४ ॥  
 चतुर्वेदश्चतुर्भाविश्चतुरश्रश्चत्वरप्रियः ।  
 आम्नापोऽथ समाम्नापस्तीर्थदेवः शिवालयः ॥ ९५ ॥  
 वैश्वरूपो महादेवः सर्वरूपश्चराचरः ।  
 न्यायनिर्वाहको न्यायो न्यायैर्गम्यो निरञ्जनः ॥ ९६ ॥  
 सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वेशस्त्रप्रभञ्जनः ।  
 मुण्डो विरूपो विक्रतो दण्डी दान्तो गुणोत्तरः ॥ ९७ ॥  
 पिङ्गलाक्षोऽथ हर्षश्वो नीलश्रीवो निरामयः ।  
 सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकधृक् ॥ ९८ ॥  
 पश्चासनः परंज्योतिः पवावरः परंफलम् ।  
 पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विलक्षणः ॥ ९९ ॥  
 पद्मभुग्वरदो देवो वरेशश्च महास्वनः ।  
 देवासुरगुरुर्देवः शंकरो लोकसंभवः ॥ १०० ॥  
 सर्ववेदमयोऽचिन्त्यो देवतासत्यसंभवः ।  
 देवाधिदेवो देवार्पिर्देवासुरवरप्रदः ॥ १०१ ॥  
 देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहेश्वरः ।  
 देवासुराणां वरदो देवासुरनमस्कृतः ॥ १०२ ॥  
 देवासुरमहामात्रो देवासुरमहाश्रयः ।  
 सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवानामात्मसंभवः ॥ १०३ ॥

ईड्योऽनीशः सुरव्याप्तो देवसिंहो दिवाकरः ।  
 विबुधाग्रवरः श्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः ॥ १०४ ॥  
 शिवध्यानरतः श्रीमाञ्जिखी श्रीपर्वतप्रियः ।  
 वज्रहस्तः प्रतिष्ठम्भी विश्वज्ञानी निशाकरः ॥ १०५ ॥  
 ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिपः ।  
 नन्दी नन्दीश्वरो नम्रो नम्रव्रतधरः शुचिः ॥ १०६ ॥  
 लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षो युगावहः ॥ ८०१ ॥  
 स्ववशः स्वर्गतः स्वर्गः सर्गः स्वरमयः स्वनः ॥ १०७ ॥  
 बीजाध्यक्षो बीजकर्ता धर्मकृद्धर्मवर्धनः ।  
 दम्भोऽदम्भो महादम्भः सर्वभूतमहेश्वरः ॥ १०८ ॥  
 श्मशाननिलपस्तिप्यः सेतुरप्रतिमाकृतिः ।  
 लोकोत्तरः स्फुटालोकछयम्बको भक्तवत्सलः ॥ १०९ ॥  
 अन्धकारिर्मखद्वेपी विष्णुकन्धरपोतनः ।  
 धीतदोषोऽक्षयगुणोऽन्तकारिः पूषदन्तभित् ॥ ११० ॥  
 धर्जटिः खण्डपरशुः सकलो निष्कलोऽनघः ।  
 आकारः सकलागारः पाण्डुरागो मृगो नटः ॥ १११ ॥  
 पूर्णः पूरयिता पुण्यः सुकुमारः सुलोचनः ।  
 सामगेषैः प्रियः क्रूरः पुण्यकीर्तिरनामघः ॥ ११२ ॥  
 मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः ।  
 जीवितान्तकरोऽनन्तो वसुरेता वसुप्रदः ॥ ११३ ॥  
 सद्गतिः सत्कृतिः शान्तः कालकण्ठः कलाधरः ।  
 मानी मन्तुर्महाकालः सर्द्धतिः सत्परायणः ॥ ११४ ॥  
 चन्द्रसंजीवनः शास्ता लोकरूढो महाधिपः ।  
 लोकबन्धुलोकनाथः क्रतुज्ञः कृतभूषणः ॥ ११५ ॥  
 अनपायोऽक्षरः क्षान्तः सर्वशत्रुभृतां वरः ।  
 तेजोमयो द्युतिधरो लोकमायोऽग्रणीरणुः ॥ ११६ ॥  
 मृविस्मितः प्रसन्नात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ।  
 ज्योतिर्मयो निराकारो जगन्नाथो जलेश्वरः ॥ ११७ ॥

१ ( क. ख. ग. घ. ङ. ) व्याप्तो देवो २ ( क. ख. ग. ज. झ. ) एतः शुभेष्टो ३ ( य. ड. ङ. ) धर्मादीषण ४ ( य. ड. ) अक्ष. युगाण ५ ( क. घ. ग. ज. झ. ) धर्मा धण ६ ( य. ड. ङ. ) आगताः । ७ ( क. ख. ग. ड. घ. ज. झ. ) योगिनि ८ ( य. ड. ङ. ) पूतः सण

तुम्बी वीणा महाशोको विशोकः शोकनाशनः ।  
 त्रिलोकेशत्रिलोकात्मा सिद्धिः शुद्धिरघोक्षजः ॥ ११८ ॥  
 अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो व्यक्ताव्यक्तो विशांपतिः ।  
 वरशीलो वरगुणो गतो गव्ययेतो मयः ॥ ११९ ॥  
 ब्रह्मा विष्णुः प्रजापालो हंसो हंसगतिर्मतः ।  
 वेधा विधातो स्रष्टा च कर्ता हर्ता चतुर्मुखः ॥ १२० ॥  
 कैलासशिखरावासी सर्वावासी सदागतिः ।  
 हिरण्यगर्भो गंगनः पुरुषः पूर्वजः पिता ॥ १२१ ॥  
 भूतालयो भूतपतिर्भूतिदा भुवनेश्वरः ।  
 संपमो योगविद्वंशो ब्रह्मण्यो ब्राह्मणमियः ॥ १२२ ॥  
 देवप्रियो देवनाथो देवैज्ञो देवचिन्तकः ।  
 विपमाक्षो विशालाक्षो वृषदो वृषवर्धनः ॥ १२३ ॥  
 निर्भमो निरहंकारो निर्माहो निरूपप्लवः ।  
 दर्पहा दर्पणो दृष्टः सर्वतुपरिवर्तकः ॥ १२४ ॥  
 सप्तजिह्वः सहस्रार्चिः स्निग्धः प्रकृतिदक्षिणः ।  
 भूतभव्यभवन्नाथः प्रभवो ज्ञान्तिनाशनः ॥ १२५ ॥  
 अर्थोऽनर्थो महाकोशः परकार्येकपण्डितः ।  
 निष्कण्ठकः क्रतानन्दो निर्व्याजो व्याजदर्शनः ॥ १२६ ॥  
 सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यः कीर्तिस्तम्भः क्रतागमः ।  
 अकार्पितो गुणग्राही नैकात्मा लोककर्मकृत् ॥ १२७ ॥  
 श्रीवज्रभः शिवारम्भः शान्तभद्रः समञ्जसः ।  
 भृगयो भूतिक्रद्वृत्तिर्विभूतिर्भूतिवाहनः ॥ १२८ ॥  
 अकायो भूतकायस्थः कालज्ञानो महापटुः ।  
 सत्यव्रतो महात्पाग इच्छाशान्तिपरायणः ॥ १२९ ॥  
 परार्थवृत्तिवरदो विविक्तः श्रुतिसामरः ॥ १००० ॥  
 अनाविष्णो गुणग्राही निष्कलङ्कः कल्दृहा ॥ १३० ॥  
 स्वभावभद्रो मधुस्थः शत्रुघ्नः शत्रुनाशनः ।  
 शिखण्डी कवची शूली जटी मुष्टी च कुण्डली ॥ १३१ ॥

१ (घ. ड. छ.) व्यक्तो मण २ (क. ख. ग. घ.) ०११ धाता च त्वरा दृण (न.) ०११  
 शश ॥ ३ (ख. ग. घ. ङ) कवनः ४ (घ. ङ.) ०११ ब्राह्मणो ब्राह्मणमियः ॥ २२ ॥ ५ (ख.  
 ङ) १११० देण ६ (क. ख. ग. घ.) ०११ दे. निण ७ (ख. ग. घ.) ०११ गिनी गुण (क.  
 घ.) भस्म नो गुण

मेखली कञ्चुकी खड्गी माली संसारसारथिः ।  
 अमृत्युः सर्वजित्सहस्तेजोराशिर्महामणिः ॥ १३२ ॥  
 असंख्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्यवान्कार्यकोविदः ।  
 वेद्यो वैद्यो विपद्गोप्ता सप्तावरमुनीश्वरः ॥ १३३ ॥  
 अनुत्तमो दुराधर्षो मधुरः प्रियदर्शनः ।  
 सुरेशः शरणं शर्म सर्वैः शब्दवतां गतिः ॥ १३४ ॥  
 कालः पक्षः करङ्गारिः कङ्कणीकृतवासुकिः ।  
 महेष्वासो महीभर्ता निष्कलङ्को विगृह्णलः ॥ १३५ ॥  
 • चुमणिस्तरणिर्यन्यः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ।  
 विवृतः संवृतः शिल्पी व्यडोरस्को महामुजः ॥ १३६ ॥  
 एकज्योतिर्निरातङ्को नरनारायणप्रियः ।  
 निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा निर्व्यग्रो व्यग्रनाशनः ॥ १३७ ॥  
 स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोता व्योममूर्तिरनाकुलः ।  
 • निरवैद्यपदोपायो विद्याराशिरकृत्रिमः ॥ १३८ ॥  
 प्रशान्तबुद्धिरुद्धः क्षुद्रहा नित्यसुन्दरः ।  
 ध्येयोऽग्रधुर्यो धात्रीशः साकल्यः शर्वरीपतिः ॥ १३९ ॥  
 परमार्थगुरुव्यापी शुचिराश्रितवत्सलः ।  
 रसो रसज्ञः सारज्ञः सर्वसत्त्वावलम्बनः ॥ १४० ॥ १०९१ ॥  
 एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव गिरिजापतिम् ।  
 संपूज्य परया भक्त्या पुण्डरीकैर्द्विजोत्तमाः ॥ १४१ ॥  
 जिज्ञासार्थं हरेर्भक्त्या कमलेषु शिवः स्वयम् ।  
 तत्रैकं गोपयामास कमलं मुनिपुङ्गवाः ॥ १४२ ॥  
 हृते पुष्पे तदा विष्णुश्चिन्तयन्किमिदं त्विति ।  
 ज्ञात्वाऽऽत्मनोऽक्षिमुद्धृत्य पूजयामास शंकरम् ॥ १४३ ॥  
 अथ ज्ञात्वा महादेवो हरेर्भक्तिं मुनिश्चलाम् ।  
 प्रादुर्भूतो महादेवो मण्डलात्तिग्मदीधितेः ॥ १४४ ॥  
 सूर्यकोटिप्रतीकाशघ्निनेत्रश्चन्द्रेशोत्तरः ।  
 शूलटङ्कगदाचक्रकुन्तपाशधरो विभुः ॥ १४५ ॥

वरदाभयपाणिश्च सर्वाभरणभूषितः ।

तं दृष्ट्वा देवदेवेशं भगवान्कमलेक्षणः ॥ १४६ ॥

पुनर्ननाम चरणौ दण्डवच्चरूलपाणिनः ।

दृष्ट्वा शंभुं तदा देवा द्रुद्रुर्भयविह्वलाः ॥ १४७ ॥

चचाल ब्रह्मभुवनं चकम्पे च वसुंधरा ।

अधश्चोर्ध्वं ततः प्रीते ददाह शतयोजनम् ॥ १४८ ॥

शंभोर्भगवतस्तेजस्तद्दृष्ट्वा प्रहसंश्शिवः ।

अग्रवीच्छाङ्गिणं विप्राः कृताञ्जलिपुटं स्थितम् ॥ १४९ ॥

देवकार्यमिदं ज्ञातमिदानां मधुसूदन ।

दिव्यं ददामि ते चक्रमद्भुतं तत्सुदर्शनम् ॥ १५० ॥

हितार्थं सर्वदेवानां निर्मितं यन्मया पुरा ।

ग्रहीत्वा तद्द्रुणैर्देव्याञ्जलि विष्णो ममाऽऽज्ञया ॥ १५१ ॥

एवमुक्त्वा ददौ चक्रं सूर्याद्युतसम्प्रभम् ।

ओकेषु पुण्डरीकाक्ष इति ख्यातिं गतो हरिः ॥ १५२ ॥

पुनस्तमग्रवीच्छंभुर्नारायणमनामयम् ।

वरानन्पान्मुरश्रेष्ठ वरयस्व पथेप्सितान् ॥ १५३ ॥

एवं शंभोर्निगदितं श्रुत्वा देवो जनार्दनः ।

अग्रवीत्सपण्डपरशुं प्राञ्जलिः प्रणयान्वितः ॥ १५४ ॥

**श्रीविष्णुरुवाच**—भगवन्देवदेवेश परमात्मश्शिवाव्यय ।

निश्चला त्वयि मे भक्तिर्भवत्विति वरुो मम ॥ १५५ ॥

**ईश्वर उवाच**—भक्तिर्मयि दृढा विष्णो भविष्यति तवानघ ।

अजेयत्रिषु लोकेषु मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥ १५६ ॥

**सूत उवाच**—एवं दत्त्वा वरं शंभुर्विष्णवे प्रभविष्णवे ।

अन्तर्दितो द्विजश्रेष्ठा इति देवोऽग्रचीद्रविः ॥ १५७ ॥

नाम्नां सहस्रं यद्विव्यं विष्णुना समुदीरितम् ।

यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १५८ ॥

अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम् ।

पठतः सर्वभावेन विद्या वा महती भवेत् ॥ १५९ ॥

\* अत्र चतस्रितपुस्तकयोः कश्चिद्वेपथो दृश्यते । स यथा—भक्तिर्मन्याऽस्तु ते शर्मा निश्चला मनपाणिनी । वरमेतं वृणे देव नान्य कचन सुव्रत-इति ।

१ ( घ ङ ) ०३३३ । अ० २ ( घ. ङ. ख. छ ) ०४ देव० . ( फ. ख ग ज ङ. ) यपुरा मया । म० ४ ( न ङ ग ज ङ. ) ०४ भगवति ।



जायते महदैश्वर्यं शिवस्य दधितो भवेत् ।  
 दुस्तरे जलसंघाते यज्जलं स्थलतां व्रजेत् ॥ १६० ॥  
 हारायन्ते महासर्पाः सिंहः क्रीडामृगायते ।  
 तस्मान्नाम्नां सहस्रेण स्तोतव्यो भगवाञ्शिवः ॥ १६१ ॥  
 प्रयच्छत्यस्त्रिलान्कामान्देहान्ते च परां गतिम् ॥ १६२ ॥ २१३४ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे विष्णुचक्र-  
 प्राप्तिकथनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

ऋषय ऊचुः-श्रुतं शंभोर्यथा चक्रं प्राप्तवान्पुरुषोत्तमः ।

इदानीं श्रोतुमिच्छामः शिवपूजाविधिं शुभम् ॥ १ ॥

मूत उवाच-शिवपूजाविधिं वक्ष्ये संक्षेपेण द्विजोत्तमाः ।

वक्तुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरेण तु ॥ २ ॥

पुरा मेरुगिरेः शृङ्गे सिद्धगन्धर्वसेविते ।

उक्तं सनत्कुमारीय नन्दिना कुलनन्दिना ॥ ३ ॥

नन्दीश्वरं सुखासीनं सर्वज्ञं मरुतां पतिम् ।

उपसंगम्य त्रिधिवदण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ ४ ॥

सनत्कुमारः पप्रच्छ शिवपूजाविधिक्रमम् ।

सर्वेषां वरदं शान्तं गणकोटिभिरावृतम् ॥ ५ ॥

सनत्कुमार उवाच-नमस्तुभ्यं गणेशाय मार्तण्डायुतवर्चसे ।

शिवाचनविधिं ब्रूहि मम त्रिदशपूजित ॥ ६ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच-शिवपूजाविधिं वक्ष्ये शृणु ब्रह्मसृताय मे ।

सर्वात्मके महादेवे भक्तोऽसि त्वं यतो मुने ॥ ७ ॥

तत्राऽऽदौ विधिना स्नात्वा समाचम्य यथाविधि ।

पूजास्थानमनुप्राप्य उपविश्याथ बुद्धिमान् ॥ ८ ॥

प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेद्देवं सदाशिवम् ।

शरीरशोषणं कृत्वा दहनं प्लावनं ततः ॥ ९ ॥

शैवीं तनुं समास्थाय न्यासकर्म समाचरेत् ।

योऽपि सूत्रात्मको भेद्यः सर्ववेदात्मकः परः ॥ १० ॥

तस्य वर्णांश्च विधिवद्रूपसेत्प्रणवपूर्वकान् ।  
 ब्रह्माणि ततो विन्यस्य ततश्चन्दनवारिणा ॥ ११ ॥  
 पूजास्थानं सुसंशोक्ष्य द्रव्याणि च मुनीश्वर ।  
 क्षालनं प्रोक्षणं चैव प्रणवेन विधीयते ॥ १२ ॥  
 स्थापयेत्प्रोक्षणीपात्रं पाद्यपात्रं तथैव च ।  
 तथा ह्याचमनीयं च ह्यवगुण्ठ्य यथाविधि ॥ १३ ॥  
 आच्छाद्य दर्भैर्गतिमांस्तेनैवाभ्युक्ष्य वारिणा ।  
 जलं तेषु विनिक्षिप्य द्रव्याणि च ततः क्षिपेत् ॥ १४ ॥  
 उशीरं चन्दनं चैव पाद्ये तु परिकल्पयेत् ।  
 चूर्णयित्वा सकङ्कोलं कर्पूरं जातिकाफलम् ॥ १५ ॥  
 क्षिपेदाचमनीये तु प्रणवेन यथाक्रमम् ।  
 सर्वत्र चन्दनं दद्यादर्घ्यपात्रेऽधुना गृणु ॥ १६ ॥  
 मीहीन्यवांश्च पुष्पाणि कुशाग्राणि तथैव च ।  
 सिद्धार्थानक्षतांश्चैव साज्यं च भस्मितं तथा ॥ १७ ॥  
 कुशपुष्पवव्रीहिवहुमूलतमालकान् ।  
 भक्षिपेत्प्रोक्षणीपात्रे प्रणवेन सुधीस्ततः ॥ १८ ॥  
 सूत्रेण भवगायत्र्या गायत्र्या च द्विजोत्तमः ।  
 प्रोक्षणीपात्रभौदाय संशोक्ष्य द्वारपालकौ ॥ १९ ॥  
 पार्श्वतो मां चतुर्बाहुं सूर्यायुतसमभभम् ।  
 वानरास्यं त्रिनयनं पुष्पमालामुशोभितम् ॥ २० ॥  
 सर्वाभरणशोभाढ्यं नन्दीशं संपूजयेत् ।  
 दक्षिणे तु महाकालं घोररूपं भयावहम् ॥ २१ ॥  
 दंष्ट्राकरालवदने कालाम्निचयसंनिभम् ।  
 पश्चादन्तर्यहं शंभोः प्रविश्य सुसमाहितः ॥ २२ ॥  
 पञ्चपुष्पाञ्जलिं दद्याद्ब्रह्मभिः पञ्चभिर्मुने ।  
 गन्धैः पुष्पैर्महादेवं भक्त्या संपूजयेद्बुधः ॥ २३ ॥  
 स्कन्दं विनायकं चैव लिङ्गशुद्धिमयाऽऽरभेत् ।  
 सूक्तैर्मन्त्रैश्च विधिवन्नमोन्तैः प्रणवादिकैः ॥ २४ ॥  
 आसनं कल्पयेत्पश्चादैश्वर्यदलपङ्कजे ।  
 अणिमा पूर्वपत्रं स्यात्सर्वज्ञत्वमथेश्वरम् ॥ २५ ॥

काणिकापां न्यसेद्विम वहेवै मण्डलं ततः ।  
 सौरं सौम्यं च विन्यस्य धर्मादीन्वै विदिक्षु ष ॥ २६ ॥  
 अधर्मादींस्ततो दिक्षु सोमस्यान्ते गुणत्रयम् ।  
 तच्चत्रयमथो विद्वांस्ततः शंभुं प्रपूजयेत् ॥ २७ ॥  
 स्नापयेद्विधिना देवं गन्धयुक्तेन वारिणा ।  
 पञ्चामृतं ततो मन्त्रैः साधितं विधिपूर्वकम् ॥ २८ ॥  
 स्नापयेत्प्रणवेनैव तत्राऽऽदौ पयसा मुने ।  
 आज्येन मधुना दध्ना तथा चेक्षुरसेन च ॥ २९ ॥  
 जलस्य श्रद्धिं विधिवन्मन्त्रैः कुर्यादनेकशः ।  
 संघ्राय सितवस्त्रेण स्नापयेदिन्दुशेखरम् ॥ ३० ॥  
 कुशापामार्गकपूरजातीचम्पकपुष्पकैः ।  
 करवीरैः सितैश्चैव मल्लिकाकमलैस्तपलैः ॥ ३१ ॥  
 आपूर्य पुष्पैः सृशुभैश्चन्दनाद्यैश्च तज्जलम् ।  
 सद्योजातादिकांस्तत्र विन्यसेद्ब्रह्मणः सुत ॥ ३२ ॥  
 सुवर्णकलशेनाथ तथा वै राजतेन च ।  
 शङ्खेन मृन्मथेनाथ शोभितेन शुभेन च ॥ ३३ ॥  
 मकूर्चेन सपुष्पेण स्नापयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।  
 पवमानेन रुद्रेण तथा वामीयकेन च ॥ ३४ ॥  
 त्वरितारुधेन रुद्रेण नीलरुद्रेण वा पुनः ।  
 अधर्वाशिरसा वाऽर्षाप रुद्रेण च तथैव च ॥ ३५ ॥  
 रथन्तरेण पुण्येन श्रीसूक्तेनाथवा मुने ।  
 शैठयेण च लुक्तेन ज्येष्ठसाध्ना च विष्णुना ॥ ३६ ॥  
 पञ्चभिर्ब्रह्मभिर्वाऽथ सूत्रेण प्रणवेन वा ।  
 स्नापयेद्देवदेवेशं सर्वयज्ञफलाप्तये ॥ ३७ ॥  
 वस्त्रं यज्ञोपवीते च तथा ह्याचमनीयकम् ।  
 मुफुटं च शृभं भद्रं तथा वै भूपणानि च ॥ ३८ ॥  
 मुखवासं च नैवेद्यं सर्वं वै प्रणवेन च ।  
 ततः स्फटिकसंकाशं देवं निष्कलमक्षरम् ॥ ३९ ॥

कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम् ।  
 ब्रह्मणा विष्णुरुद्राद्यैरपि देवैरगोचरम् ॥ ४० ॥  
 वेदविद्विहिं वेदान्तैरगोचरयिति श्रुतम् ।  
 \*आदिमध्यान्तरहितं भेषवं भवरोगिणाम् ॥ ४१ ॥  
 शिवलिङ्गमिति रूपात् शिवलिङ्गे व्यवस्थितम् ।  
 प्रणवेनैव मन्त्रेण पूजयेद्विष्णुमूर्धनि ॥ ४२ ॥  
 स्तोत्रैः स्तुत्वा महादेवं प्रणिपत्य प्रदक्षिणम् ।  
 पुनरर्घ्यं च वै दत्त्वा पुण्याणि च विकीर्य वै ॥ ४३ ॥  
 पादयोर्देवदेवस्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।  
 एवं संक्षिप्य कथितं ब्रह्मसूत्रो शिवार्चनम् ॥ ४४ ॥  
 सर्ववेदेषु यद्गुह्यं यथा शंभोर्भया श्रुतम् ॥ ४५ ॥

सूत उवाच-सनत्कुमारो भगवाञ्श्रुतवान्पच्छिवार्चनम् ।

नन्दीश्वराद्भगवतस्तन्मया कथितं, द्विजाः ॥ ४६ ॥

यः पठेत्प्रयतो भक्त्या शिवार्चनविधिक्रमम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीपते ॥ ४७ ॥ २१८१ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे शिवपूजा-

विधिकथनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

सूत उवाच-अन्यद्वत्तं पापहरं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।

उमामहेश्वरं नाम व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १ ॥

पौर्णमास्याममावास्यां चतुर्दशपृष्ठी(१) तथा ।

कार्पमेतासु तिथिषु नक्तमेतद्विजोत्तमाः ॥ २ ॥

ब्रह्मचारी हविष्याशी सत्यवादी सुसंयमी ।

वर्षान्ते प्रतिमा कार्पा हेम्ना वा रजतेन च ॥ ३ ॥

पञ्चामृतैस्तु संस्त्राप्य पूजयेद्विधिवद्विजाः ।

वद्यैः पुष्पैरलंकृत्य भक्षयेन्नानाविधैः शुभैः ॥ ४ ॥

ध्वजेर्वितानैश्चमरैर्यथा शोभां प्रकल्पयेत् ।

आचार्यं पूजयेद्रक्त्या वद्यालंकारभूषणैः ॥ ५ ॥

\* यद्विहितं पुस्तकयोरेव भोकार्थं नास्ति ।

१ कलागच्छति इत्युक्तं नैव पापदशमनायम् मुदं न चान्यथा नैव मन्त्रैः ॥

भक्त्या च दक्षिणां देद्याच्छिवभक्तांश्च भोजयेत् ।  
 \*शैवमेकं तु संभोज्य शतभोज्यफलं लभेत् ॥ ६ ॥  
 सत्यं सत्यं पुनः सत्यं देवस्य वचनं यथा ।  
 प्रतिमां पूजितां पश्चात्ताम्रपात्रे मृनिर्मले ॥ ७ ॥  
 निधाय सितवस्त्रेण संछाद्य शिरसा नमेत् ।  
 शङ्खनूप्यादिनिर्घोषैः शिवस्याऽऽपतनं महत् ॥ ८ ॥  
 पुनर्वेद्यां सुसंस्थाप्य व्रतं शंभोर्निवेदयेत् ।  
 शिवं प्रदक्षिणीकृत्य पश्चाद्देवं क्षमापयेत् ॥ ९ ॥  
 श्रद्धया यः करोतीदं व्रतं त्रिदशपूजितम् ।  
 सूर्यायुतप्रतीकाशं विमानं सार्वकामिकम् ॥ १० ॥  
 आरुह्य स्त्रीसहस्रैश्च गणैर्नानाविधैर्वृतः ।  
 याति माहेश्वरं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥ ११ ॥  
 तत्र माहेश्वरान्भोगान्भुक्त्वा कल्पशतत्रयम् ।  
 तदन्ते वैष्णवान्भोगान्भुङ्क्ते विष्णोः समीपतः ॥ १२ ॥  
 पश्चाद्भोगसमायुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।  
 ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः प्राजापत्यान्समश्नुते ॥ १३ ॥  
 तस्माल्लोकात्पुनः पश्चात्सर्वलोकनमस्कृतः ।  
 सोमलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यधेप्सितान् ॥ १४ ॥  
 सोमाद्देवेन्द्रगन्धर्वपक्षलोकमनुत्तमम् ।  
 भुक्त्वा तत्र महाभोगांस्तदन्ते मेरुमूर्धनि ॥ १५ ॥  
 तदन्ते लोकपालानां लोकानासाद्य मोदते ।  
 ततः कर्मावशेषेण पृथिव्यामेकरोद्धवेत् ॥ १६ ॥  
 उमामहेश्वरं नाम व्रतं सर्वसुखप्रदम् ।  
 शंकरेण पुरा गीतं पार्वत्याः पण्मुखस्य च ॥ १७ ॥  
 अगस्त्यः पण्मुखाच्छ्रद्ध्वा प्राप्नवान्मे गुरुस्ततः ।  
 द्वैपायनान्मुनिवरात्प्राप्तवानहमुत्तमम् ॥ १८ ॥  
 अन्यच्छूलव्रतं नाम शृणुष्वं मुनिपुङ्गवाः ।  
 अमावास्यां निराहारो भवेद्वदं सुसंपत्नी ॥ १९ ॥  
 शूलं पिष्टमयं कृत्वा वर्षान्ते विनिवेदयेत् ।  
 शिवाय राजतं पत्रं सुवर्णं कृतकणिकम् ॥ २० ॥

\* शैवमेकमित्यादि वचन यथेत्यन्त कल्पगणकनक्षत्रसंज्ञितपुस्तकेषु नमस्ति ।

भक्त्या तु विन्यसेन्मूर्ध्नि सर्वमन्यच्च पूर्ववत् ।  
 ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्तो याति परां गतिम् ॥ २१ ॥  
 लोकान्पूर्वोदितान्प्राप्य तदन्ते पृथिवीपतिः ।  
 पूर्णमास्याममावास्यामव्दमेकं दृढव्रतः ॥ २२ ॥  
 वर्षान्ते सर्वगन्धाढ्यां प्रतिमां विनिवेदयेत् ।  
 पूर्ववत्फलमाप्नोति व्रतेनानेन वै द्विजाः ॥ २३ ॥  
 अष्टम्पां च चतुर्दश्यामुपवासी जितेन्द्रियः ।  
 सर्वभोगसमायुक्तः शिवलोके महीपते ॥ २४ ॥  
 क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।  
 शिवपूजाऽग्निहवनं संतोषोऽस्तेपता तथा ॥ २५ ॥  
 सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः ॥ २६ ॥  
 अन्यद्व्रतं पापहरं शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ।  
 पण्मुस्य पुरा प्रोक्तं देवदेवेन शंभुना ॥ २७ ॥  
 कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् ।  
 प्रणम्य विधिवद्भक्त्या पप्रच्छ गिरिजासुतः ॥ २८ ॥  
**स्कन्द उवाच**—केन व्रतेन भगवन्सौभाग्यमतुलं भवेत् ।  
 पुत्रपौत्रधनैश्वर्यं मनुजः सुखमेधते ॥ २९ ॥  
 तन्मे वद महादेव व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।  
 येन चीर्णेन देवेश नरो राज्यं च विन्दति ॥ ३० ॥  
 राज्ञीव जायते नारी अपि दासकुलोद्भवा ।  
 राजपुत्रो जयेच्छत्रून्गरुडः पन्नगानिव ॥ ३१ ॥  
 ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वं प्राप्य सर्वाधिको भवेत् ।  
 वर्णाश्रमविहीनोऽपि सोऽपि सिद्धिं च विन्दति ॥ ३२ ॥  
**ईश्वर उवाच**—शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।  
 अस्ति दूर्वागणपतेर्व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ३३ ॥  
 भगवत्यां पुरा चीर्णं पार्वत्या पद्मया सह ।  
 सरस्वत्या महेन्द्रेण विष्णुना धनदेन च ॥ ३४ ॥  
 अन्यैश्च देवैर्मुनिभिर्मन्थैः किंनरैस्तथा ।

१ ब्रह्महत्यादिभिरित्यादि प्रतिमा विनिवेदयोदत्यन्त घटसंज्ञितपुस्तकयोर्नास्ति ।

† इदं श्लोकार्थं घटसाक्षितपुस्तकयोर्नास्ति ।

चीर्णमेतद्भूतं सर्वैः पुरा कल्पे पढानन ॥ ३५ ॥

चतुर्थी या भवेच्छुक्ला नभोमासस्य पुष्पदा ।

तस्यां व्रतमिदं कुर्यात्कार्तिक्यां वा पढानन ॥ ३६ ॥

गजाननं चतुर्विहुमेकदन्तं विपाटितम् ।

विधाय हेम्ना विघ्नेशं हेमपीठासनस्थितम् ॥ ३७ ॥

तथा हेममयीं हृवीं तदाधारे व्यवस्थिताम् ।

संस्थाप्य विघ्नहर्तारं कलशे ताम्रभाजने ॥ ३८ ॥

वेष्टितं रक्तवस्त्रेण सर्वतो भद्रमण्डले ।

पूजयेद्रक्तकुसुमैः पत्रिकाभिश्च पञ्चभिः ॥ ३९ ॥

विष्णुपत्रमपामार्गं शभी हृवीं हरिप्रिया ? ।

अन्यैः सुगन्धिकुसुमैः पत्रिकाभिः सुगन्धिभिः ॥ ४० ॥

फलैश्च गोदकैः पश्चाद्गुपहारं प्रकल्पयेत् ।

यथावदुपचारैस्तु पूजयामि जयत्पते ॥ ४१ ॥

इत्युक्त्वा श्रद्धया नूनं पूजयेद्विरिजामृतम् ।

एहोहि देव हेरम्भ्व विघ्नराज गजानन ॥

उपविश्याऽऽसनं देव सर्वकामप्रदो भव ॥ ४२ ॥ इत्यावाहनासनमन्त्र- ।

उमामृत नमस्तुभ्यं विश्वव्यापिन्सनातन ।

विघ्नौघं छिन्धि सफलमर्घ्यपाचं ददामिते ॥ ४३ ॥ इत्यर्घ्यपाद्यमन्त्रः ।

गणेश्वराय देवाय उमापुत्रायवेधसे ।

पूजामध प्रयच्छामि ऋहाण भगवन्नमः ॥ ४४ ॥ इतिगन्धमन्त्रः ॥

विनायकाय गुराय वरदाय गजानन ।

उमामृताय देवाय कुमारगुरवे नमः ॥ ४५ ॥

लम्बोदराय वीराय सर्वविघ्नौघहारिणे ॥ ४६ ॥ इतिपुष्पमन्त्रः ॥

उमाङ्गमलसंभूत दानवानां वधाय वै ।

अनुप्रदाय लोकानां स देवः पातु विश्वभुक् ॥ ४७ ॥ इतिधूपमन्त्रः ॥

परं उयोतिः प्रकाशाय सर्वसिद्धिप्रदाय च ।

तुभ्यं दीपं प्रदास्यामि महादेवात्मने नमः ॥ ४८ ॥ इतिदीपमन्त्रः ॥

\* घटजमोक्षतपुस्तकेष्वयं श्लोको नास्ति ।

† घटजमोक्षतपुस्तकेष्विदं श्लोकार्थं नास्ति ।

‡ यमद्विगपुस्तके विना सर्वेषां दर्शपुस्तकेषु पूजयामीत्यादि नूनमित्यन्तं शब्दज्जातं नास्ति ।

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे

कावे कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।

ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत

आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥४९॥ इत्युपहारमन्त्रः॥

गणेश्वर गणाध्यक्ष गौरीपुत्र गजानन ।

व्रतं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादादिभानन ॥५०॥ इतिप्रार्थनामन्त्रः॥

एवं संपूज्य विघ्नेशं यथा विभवविस्तरैः ।

सोपस्करं गणाध्यक्षमाचार्याय निवेदयेत् ॥ ५१ ॥

शृद्धाण भगवन्ब्रह्मेन्गणराजं सदक्षिणम् ।

व्रतं त्वद्वचनादद्य संपूर्णं यातु सुव्रत ॥ ५२ ॥ इतिदानमन्त्रः॥

एवं यः पञ्च वर्षाणि कृत्वोद्यापनमाचरेत् ।

ईप्सिताल्लभते कामान्देहान्ते शांकरं पदम् ॥ ५३ ॥

अथवा शुक्लपक्षस्य चतुर्थी संयतेन्द्रियः ।

कुर्याद्वर्षत्रयं त्वेवं सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥

उद्यापनं विना यस्तु करोति व्रतमुत्तमम् ।

तेन शुक्लतिलैः कार्यं प्रातस्नानं पदानन ॥ ५५ ॥

हेम्ना वा रजतेनापि कृत्वा गणपतिं तुधः ।

पञ्चगव्यैश्च सुस्नाप्य दूर्वाभिः संपूजयेत् ॥ ५६ ॥

मन्त्रैश्च दशभिर्भक्त्या दूर्वापुक्तैः शिखिध्वज ।

इत्येवं कथितं वत्स सर्वसिद्धिमदं शुभम् ॥

व्रतं दूर्वागणपतेः किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥ ५७ ॥ २२३८ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरै सूतशौनकसंवाद उमामहेश्वर-

दूर्वागणपतिव्रतकथनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

मृत्पय ऊचुः—मृदादिरत्नपर्यन्तैर्द्रव्यैः कृत्वा शिवालयम् ।

यत्फलं लभते मर्त्यस्तन्नो वक्तुमिदार्हसि ॥ १ ॥

मृत उवाच—शृणुध्वमृपयः सर्वे प्रभावं परमेष्ठिनः ।

शिवालयस्य करणात्फलमानन्त्यमुच्यते ॥ २ ॥

अपि लोष्ठमयं वाऽपि यः करोति शिवालयम् ।

सर्वपत्रेण विभेन्द्रा धर्मकामार्थमुक्तये ॥ ३ ॥



कैलासाख्यं च यः कुर्यात्प्रासादं परमेष्ठिनः ।  
 मेर्वाख्यं मन्दराख्यं वा तुहिनाद्रिमथापि वा ॥ ४ ॥  
 निषधाद्रिं च नीलाद्रिं महेन्द्राख्यं द्विजोत्तमोः ।  
 स तत्पर्वतसंकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः ॥ ५ ॥  
 गत्वा शिवपदं दिव्यं शिववन्मोदते चिरम् ।  
 महाप्रलपपर्यन्तं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ ६ ॥  
 तदन्ते विषयास्त्यक्त्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।  
 पतितं स्वण्डितं वाऽपि जीर्णं वा स्फुटितं तथा ॥ ७ ॥  
 कारपेतपूर्ववद्यस्तु सुधाद्यैः सुमनोहरैः ।  
 प्राकारं मण्डपं वाऽपि प्रासादं गोपुरं तथा ॥ ८ ॥  
 कर्तुरभ्यधिकं पुण्यं लभते नात्र संशयः ।  
 वृत्त्यर्थं वा प्रकुर्वीत नरः कर्म शिवालये ॥ ९ ॥  
 यः प्रयाति न संदेहः स्वर्गलोके तवान्धवः ।  
 यश्चाऽऽत्मभोगसिद्धयर्थमपि रुद्रालये सकृत् ॥ १० ॥  
 कर्म कुर्याद्यदि सुखं लब्ध्वा सोऽपि प्रमोदते ।  
 यदाऽशक्तो भवेन्मर्त्यः प्रासादं कर्तुमीश्वरे ॥ ११ ॥  
 संमार्जनादिभिर्वाऽपि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।  
 संमार्जनं तु यः कुर्यान्मार्जन्या मृदुसूक्ष्मया ॥ १२ ॥  
 चान्द्रायणसहस्रस्य फलं मासेन लभ्यते ।  
 शिवस्य पुरतो वह्निं संस्थाप्याभ्यर्च्य शंकरम् ॥ १३ ॥  
 जुहुयादात्मनो देहं यः स याति शिवं पदम् ।  
 शिवक्षेत्रे निराहारो भूत्वा प्राणान्परित्यजेत् ॥ १४ ॥  
 शिवसायुज्यमाप्नोति प्रसादात्परमेष्ठिनः ।  
 अथाऽऽत्मचरैणौ छित्त्वा शिवक्षेत्रे वसेन्नरः ॥ १५ ॥  
 देहान्ते शिवसायुज्यं लभते नात्र संशयः ।  
 फलं यदश्वमेधस्य तदेव क्षेत्रदर्शनात् ॥ १६ ॥  
 शताधिकं प्रवेशाच्च द्विगुणं लिङ्गदर्शनात् ।  
 तस्माच्छतगुणा पूजा जलस्नानं ततोऽधिकम् ॥ १७ ॥

१ (स. ग.) ०धास्य च । २ (घ ङ. च ज) ०माः । तत्तु पर्यं० ३ (क. ख. ग. घ) ०गान्मनोमान् । ४ (क. घ. ग. घ) न-दते । ष० । ५ (घ ङ. ज) ०ह म थाति य । ष० । ६ (क. घ) ०रण दि० । ७ (घ ङ. च ज) ०ते परम र्मान ल० ।

\*अलक्ष्मणाच्च विभेन्द्राः क्षीरस्नानं शताधिकम् ।  
 दध्ना सहस्रमाल्प्यातं मधुना तच्छताधिकम् ॥ १८ ॥  
 आनन्तं सर्पिषा स्नानं वाससा तच्छताधिकम् ।  
 तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं पञ्चत्वं शंकरालये ॥ १९ ॥  
 तस्माच्छतगुणं पुण्यं निपमेर्यस्त्वजेत्तमुम् ।  
 मदक्षिणात्रयं कुर्याद्यः प्रसादं समन्ततः ॥ २० ॥  
 सव्यापसव्यष्याजेन मृदु गत्वा शुचिर्नरः ।  
 पदे पदेऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नुयात् ॥ २१ ॥  
 दुर्लभा खलु या मुक्तिरनापासेन देहिनाम् ।  
 जायते कर्मणा येन शृणुध्वं सद्भिजोत्तमाः ॥ २२ ॥  
 गोचर्ममात्रं संलिप्य मण्डलं गोमयेन च ।  
 चतुरस्रं विधानेन चाद्भिरभ्युक्ष्य मन्त्रवित् ॥ २३ ॥  
 अलंकृत्य वितानाद्यैश्छत्रैर्वाऽपि मनोहरैः ।  
 बुद्धुदैरर्धचन्द्रैश्च स्वर्णैरश्वत्यपत्रकैः ॥ २४ ॥  
 †सितैर्विकसितैः पद्मे रक्तैर्नौलोत्पलैस्तथा ।  
 विमानेन विचित्रेण मुक्तादाम्ना द्विमोक्षमाः ॥ २५ ॥  
 सितमृत्पात्रकैश्चैव सुश्लक्ष्णैः पूर्णकुम्भकैः ।  
 फलपल्लवमालाभिर्वैजयन्तीभिरंशुकैः ॥ २६ ॥  
 पञ्चाशदीपमालाभिर्धूपैश्च विविधैस्तथा ।  
 पञ्चाशदलसंपुक्तं त्रिसित्वा पद्ममुत्तमम् ॥ २७ ॥  
 तद्वद्वर्णस्तथा चूर्णैः श्वेतचूर्णैरथापि वा ।  
 एकदस्तममाणेन कृत्वा पद्मं विधानतः ॥ २८ ॥  
 कौण्डिकायां न्यसेद्वेवं देव्या देवैश्चरं भवम् ।  
 पर्णानि विन्यसेद्वर्णै रूद्रैः प्रागाद्यनुक्रमत् ॥ २९ ॥  
 प्रणवादिनमोन्तानि सर्ववर्णानि सुव्रताः ।  
 संपूजयेवं सुरश्रेष्ठं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ॥ ३० ॥  
 ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र पञ्चाशद्विधिपूर्वकम् ।  
 अक्षमालोपवीतं च कुण्डले च कामण्डलुम् ॥ ३१ ॥

\* घटसंज्ञकपुरतद्व्योम्य श्रीको नास्ति ।

† पञ्चमहाभारतपुराणेषु सितैरित्याद्यनुष्ठेयान्तं नन्द्यान्तं नास्ति ।

१ ( घ. द. ) ० न मोक्ष. नि. २ ( क. घ. ज. ) ० न शक्तिग. ३ ( घ. द. घ. छ. ज. )  
 विमानेन याने वाभ्यु. ४ ( घ. द. घ. छ. ज. ) ० नैर्यैः बु. ५ ( क. श. न. ज. छ. ) ० नैर्यैः श. म. ०

आसनं च तथा दण्डमुष्णीपं वक्षमेव च ।  
 दत्त्वा तेषां द्विजेन्द्राणां देवदेवाय शंभवे ॥ ३२ ॥  
 महाचरुं निवेद्यैवं कृष्णं गोमिथुनं तथा ।  
 अन्ते च देवदेवाय दत्त्वा तद्वर्णमण्डलम् ॥ ३३ ॥  
 योगोपयोगिद्रव्याणि शिवाय विनिवेदयेत् ।  
 ओंकाराद्यं जपेद्धीमान्प्रतिवर्णमनुक्रमात् ॥ ३४ ॥  
 एवमालिख्य यो भक्त्या वर्णमण्डलमुत्तमम् ।  
 यत्फलं लभते मर्त्यस्तद्वदामि समासतः ॥ ३५ ॥  
 साङ्गान्वेदान्यथान्यायमधीत्य विधिपूर्वकान् ।  
 इष्ट्वा यज्ञैर्यथान्यायं ज्योतिष्टोमादिभिः क्रमात् ॥ ३६ ॥  
 ततो विश्वोजिता चेष्ट्वा पुत्रानुत्पाद्य मादृशान् ।  
 वानप्रस्थाश्रमं गत्वा सदारः साग्निरेव च ॥ ३७ ॥  
 चान्द्रायणादिकौन्कृत्वा सर्वान्संन्यस्य वै द्विजाः ।  
 ब्रह्मविद्यामधीत्यैव ज्ञानमापाद्य यत्नतः ॥ ३८ ॥  
 ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य योगिवत्फलमाप्नुयात् ।  
 तत्फलं लभते सर्वं वर्णमण्डलदर्शनात् ॥ ३९ ॥  
 येन केनापि वाऽऽलिख्य प्रलिप्याऽऽपतनाश्रमम् ।  
 उत्तरे दक्षिणे वाऽपि पृष्ठतो वा द्विजोत्तमाः ॥ ४० ॥  
 चतुष्कोणेऽपि वा चूर्णैरलंक्रत्य समन्ततः ।  
 विकीर्य गन्धकुसुमैर्द्रुपैर्दोषैश्चतुर्विधैः ॥ ४१ ॥  
 प्रार्थयेद्देवमीशानं शिवलोकं स गच्छति ॥ ४२ ॥  
 तत्र भुक्त्वा महान्भोगान्कल्पकोटिशतं नरः ।  
 स्वदेहगन्धैश्च शुभैः पूरयन्निशवमन्दिरम् ॥ ४३ ॥  
 क्रमाद्गान्धर्वमासाद्य गन्धर्वैश्च सृष्ट्वा जितः ।  
 क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्राजा भवति वीर्यवान् ॥ ४४ ॥  
 आपः पृता भवन्त्येता वक्ष्यताः समुद्रवाः ।  
 अकेना मुनिशार्ङ्गात् नादेयाश्च विशेषतः ॥ ४५ ॥  
 तस्माद्दे सर्वकार्याणि वैदिकानि द्विजोत्तमाः ।  
 अद्भिः कार्याणि सततं पृताभिः सर्वसिद्धये ॥ ४६ ॥

अहिंसा तु परो धर्मः सर्वेषां प्राणिनां यतः ।  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्रह्मपूतेन कारयेत् ॥ ४७ ॥  
 यद्दानमभयं पुण्यं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ।  
 तस्मात्सा परिहर्तव्या हिंसा सर्वत्र सर्वदा ॥ ४८ ॥  
 मनसा कर्मणा वाचा सर्वभूतहिते रताः ।  
 यदा दर्शितपन्थानः शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥ ४९ ॥  
 त्रैलोक्यमखिलं हत्वा यत्पापं जायते नृणाम् ।  
 शिवाल्पे निहत्यैकमपि तत्पापमाप्नुयात् ॥ ५० ॥  
 शिवार्थं सर्वदा कार्या पुष्पाहिंसा द्विजोत्तमैः ।  
 यज्ञार्थं पशुहिंसा च राजा दुष्टस्य शासनम् ॥ ५१ ॥  
 न हन्तव्याः क्षियः सर्वा अत्रेश्च कुलसंभवाः ।  
 ब्रह्महत्यासमं पापमात्रेभ्यो बधतो भवेत् ॥ ५२ ॥  
 क्षियः सर्वा न हन्तव्या सर्वैश्चैव द्विजातिभिः ।  
 सर्वधर्मेषु विभेन्द्राः पापकर्मरता अपि ॥ ५३ ॥  
 तस्मादाहिंसादिपुतः शान्तः शिवजनप्रियः ।  
 भक्तिं शिवे समास्थाय तस्मिञ्जन्मनि मुच्यते ॥ ५४ ॥  
 विश्वेश्वरे विरूपाक्षे विश्वव्यापिनि विश्वगे ।  
 सर्वमन्यत्परित्यज्य भक्तिः कार्या मनीषिभिः ॥ ५५ ॥  
 पुत्रवित्तादिषु यथा सक्तं चित्तं सदा नृणाम् ।  
 तथा सकृद्विरूपाक्षे दूरं किं शांकरं पदम् ॥ ५६ ॥  
 भजन्ते ये यथा शंभुं फलं तेषां तथाविधम् ।  
 प्रपच्छति महादेवो भक्तिर्नैवास्ति निष्फला ॥ ५७ ॥  
 उच्छिष्टः पूजयेदीशं मोहान्धो यद्विजायमः ।  
 पिशाचलोके विपुलान्भोगान्भुङ्क्ते स मानवः ॥ ५८ ॥  
 संक्रुद्धो राक्षसस्थानमभक्षी याक्षमानुषात् ।  
 गानशीलो हि गान्धर्वं नृत्यशीलस्तथैव च ॥ ५९ ॥  
 ल्यातिशीलस्तथैवैन्द्रमद्यक्षश्चान्द्रमाप्नुयात् ।  
 गायत्र्या पूजयेदीशमवदमेकं निरन्तरम् ॥ ६० ॥  
 प्राजापत्यमथाऽऽसाद्य सृष्टिकर्ता स्वयं भवेत् ।  
 ब्राह्मं च प्रणवेनैव तेनैवाऽऽप्नोति वैष्णवम् ॥ ६१ ॥

भासन च तथा दण्डमुष्णीपं वस्त्रमेव च ।  
 दत्त्वा तेषां द्विजेन्द्राणां देवदेवाय शंभवे ॥ ३२ ॥  
 महात्वरुं निवेद्यैवं कृष्णं गोमिथुनं तथा ।  
 अन्ते च देवदेवाय दत्त्वा तद्वर्णमण्डलम् ॥ ३३ ॥  
 योगोपयोगिद्रव्याणि शिवाय विनिवेदयेत् ।  
 ओंकाराद्यं जपेद्भीमान्प्रतिवर्णमनुक्रमात् ॥ ३४ ॥  
 एवमालिख्य यो भक्त्या वर्णमण्डलमुत्तमम् ।  
 यत्फलं लभते मर्त्यस्तद्वदामि समासतः ॥ ३५ ॥  
 साङ्गान्वेदान्यथान्यायमधीत्य विधिपूर्वकान् ।  
 इष्ट्वा यज्ञैर्यथान्यायं ज्योतिष्टोमादिभिः क्रमात् ॥ ३६ ॥  
 ततो विश्वोजिता चेष्ट्वा पुत्रानुत्पाद्य मादृशान् ।  
 वानप्रस्थाश्रमं गत्वा सदारः सामिरेव च ॥ ३७ ॥  
 चान्द्रायणादिकान्कृत्वा सर्वान्संन्यस्य वै द्विजाः ।  
 ब्रह्मविद्यामधीत्यैव ज्ञानमापाद्य यत्नतः ॥ ३८ ॥  
 ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य योगिवत्फलमाप्नुयात् ।  
 तत्फलं लभते सर्वं वर्णमण्डलदर्शनात् ॥ ३९ ॥  
 येन केनापि वाऽऽलिख्य प्रलिप्याऽऽयतनाश्रमम् ।  
 उत्तरे दक्षिणे वाऽपि पृष्ठतो वा द्विजोत्तमाः ॥ ४० ॥  
 चतुष्कोणेऽपि वा चूर्णैरलंकृत्य समन्ततः ।  
 विकीर्य गन्धकुसुमैर्धूपैर्दीपैश्चतुर्विधैः ॥ ४१ ॥  
 मार्थयेद्देवमीशानं शिवलोकं स गच्छति ॥ ४२ ॥  
 तत्र भुक्त्वा महान्भोगान्कल्पकोटिशतं नरः ।  
 स्वदेहगन्धैश्च शुभैः पूरयञ्छिवमन्दिरम् ॥ ४३ ॥  
 क्रमाद्गान्धर्वमासाद्य गन्धर्वैश्च सृपूजितः ।  
 क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्राजा भवति वीर्यवान् ॥ ४४ ॥  
 आपः पृता भवन्त्येता वस्त्रपृताः समुद्रवाः ।  
 अफेना मुनिशार्दूला नादेयाश्च विशेषतः ॥ ४५ ॥  
 तस्माद्भै सर्वकार्याणि वैदिकानि द्विजोत्तमाः ।  
 अग्निः कार्याणि सततं पृताभिः सर्वसिद्धये ॥ ४६ ॥

१ ( म ह ह न ) तस्य नि० - ( र श्व ग. ज ) ० कामर्षीष्ट्वा स य० ३ ( प ट न ज ) ० पि प्रतिशोऽपि । ६० ।

अहिंसा तु परो धर्मः सर्वेषां प्राणिनां यतः ।  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वरुणपूतेन कारयेत् ॥ ४७ ॥  
 यदानमभयं पुण्यं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ।  
 तस्मात्सा परिहर्तव्या हिंसा सर्वत्र सर्वदा ॥ ४८ ॥  
 मनसा कर्मणा वांचा सर्वभूतहिते रताः ।  
 यदा दर्शितपन्थानः शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥ ४९ ॥  
 त्रैलोक्यमखिलं हत्वा यत्पापं जायते नृणाम् ।  
 शिवालये निहत्यैकमपि तत्पापमाप्नुयात् ॥ ५० ॥  
 शिवायं सर्वदा कार्या पुष्पाहिंसा द्विजोत्तमैः ।  
 यन्नार्थं पशुहिंसा च राज्ञा दुष्टस्य शासनम् ॥ ५१ ॥  
 न हन्तव्याः द्वियः सर्वा अत्रेश्च कुलसंभवाः ।  
 ब्रह्महत्यासमं पापमात्रेय्या वधतो भवेत् ॥ ५२ ॥  
 क्षियः सर्वा न हन्तव्या सर्वेश्वैव द्विजातिभिः ।  
 सर्वधर्मेषु विभेन्द्राः पापकर्मरता अपि ॥ ५३ ॥  
 तस्मादाहिंसादिपुतः शान्तः शिवजनप्रियः ।  
 भक्तिं शिवे समास्थाप्य तस्मिञ्जन्मभि मुच्यते ॥ ५४ ॥  
 विश्वेश्वरे विरूपाक्षे विश्वव्यापिनि विश्वगे ।  
 सर्वमन्यत्परित्यज्य भक्तिः कार्या मनीषिभिः ॥ ५५ ॥  
 पुत्रवित्तादिषु यथा सकं चित्तं सदा नृणाम् ।  
 तथा सकृद्विरूपाक्षे दूरं किं शंकरं पदम् ॥ ५६ ॥  
 भजन्ते ये यथा शंभुं फलं तेषां तथाविधम् ।  
 प्रयच्छति महादेवो भक्तिर्नैवास्ति निष्फला ॥ ५७ ॥  
 उच्छिष्टः पूजयेदीशं मोहान्धो यद्विजाधमः ।  
 पिशाचलोके विपुलान्भोगान्भुङ्क्ते स मानवः ॥ ५८ ॥  
 संक्रुद्धो राक्षसस्थानमभक्षी याक्षमाप्नुयात् ।  
 गानशीलो हि गान्धर्वं तृत्पशीलस्तथैव च ॥ ५९ ॥  
 ख्यातिशीलस्तथैवैन्द्रमब्भक्षश्चान्द्रमाप्नुयात् ।  
 गायत्र्या पूजयेदीशमब्दमेकं निरन्तरम् ॥ ६० ॥  
 प्राजापत्यमथाऽऽसाद्य सृष्टिकर्ता स्वयं भवेत् ।  
 ब्राह्मं च शणवेनैव तेनैवाऽऽप्नोति वैष्णवम् ॥ ६१ ॥

श्रद्धया सकृदेवापि समभ्यर्च्य महेश्वरम् ।  
रुद्रलोकमनुमाप्य रुद्रैः सार्धं प्रमोदते ॥ ६२ ॥

य इमं पठतेऽध्यापं श्रद्धया शिवसंनिधौ ।-

सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ६३ ॥ २३०१ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे शिवालय-  
कर्णादिकलरुथनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

ऋषय ऊचुः-भूयोऽपि श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं परमेष्ठिनः ।

कथं सर्वात्मको रुद्रः कथं पाश्र्वपतं व्रतम् ॥ १ ॥

ब्रूहि सूत महाभाग सर्वमेतदसंशयम् ।

कथं नो ज्ञायते प्रीतिः श्रोतुं शिवकथामृतम् ॥ २ ॥

सूत उवाच-पुरा ब्रह्मादयो देवा द्रष्टुकामा महेश्वरम् ।

मन्दर प्रययुः सर्वे शंभोः प्रियतरं गिरिम् ॥ ३ ॥

स्तुत्वा प्राञ्जलयो देवा हरस्य पुरतः स्थिताः ।

तान्हृष्ट्वाऽथ महादेवो लीलया परमेश्वरः ॥ ४ ॥

तेषामपहृतं ज्ञानं ब्रह्मादीनां दिवोकसाम् ।

देवा ह्यष्टच्छन्स्तं देवमात्मानं पुरतः स्थितम् ॥ ५ ॥

आसस्ते सक्रदज्ञानात्तमाहुः को भवानिति ।

अब्रवीद्भगवानीशो ह्यहमेव पुरातनः ॥ ६ ॥

आसं प्रथममेवाहं वर्तामि(?) च सुरोत्तमाः ।-

भविष्यामि च लोकेऽस्मिन्मत्तो नान्योऽस्ति कश्चन ॥ ७ ॥

व्यतिरिक्तं च मत्तोऽस्ति नान्यत्किञ्चित्सुरोत्तमाः ।

नित्यानित्योऽहमेवास्मि ब्रह्माऽहं ब्रह्मणस्पतिः ॥ ८ ॥

दिशश्च विदिशश्चैव प्रकृतिश्च पुमानहम् ।

त्रिष्टुब्जगत्पनुष्टुपु पङ्क्तिच्छन्दस्त्रयीमयः ॥ ९ ॥

सत्योऽहं सर्वतः शान्तस्त्रेताग्निगौरहं गुरुः ।

गौर्यहं च हरश्चाहं चौरहं जगतां प्रभुः ॥ १० ॥

श्रेष्ठोऽहं सर्वतत्त्वानां वरिष्ठोऽहमपां पतिः ।

आपोऽहं भगवानीशस्तेजोऽहं वेदिरप्यहम् ॥ ११ ॥

\* चतुस्रिहतपुस्तकयोरेवैदं श्रीकार्यं वर्तते ।

ऋग्वेदोऽहं यजुर्वेदः सामवेदोऽहमात्मभूः ।  
 अथर्वणोऽथ मन्त्रोऽहं तथा चाङ्गिरसां वर ॥ १२ ॥  
 इतिहासपुराणानि कल्पोऽहं कल्पना ह्यहम् ।  
 धक्षरं च क्षरं चाहं क्षान्तिः शान्तिरहं स्वगः ॥ १३ ॥  
 गुह्योऽहं सर्ववेदेषु आरण्योऽहमज्ञोऽप्यहम् ।  
 पुष्करं च पवित्रं च मध्यं चाहं ततः परम् ॥ १४ ॥  
 वहिश्चाहं तथा चान्तः पुरस्तादहमव्ययः ।  
 ज्योतिश्चाहं तमश्चाहं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १५ ॥  
 बुद्धिश्चाहमहंकारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।  
 एवं सर्वं च मामेव यो वेद स सुरोत्तमः ॥ १६ ॥  
 स एव सर्ववित्तर्वः सर्वात्मो सर्वदर्शनः ।  
 गां गोभिर्ब्राह्मणान्सर्वान्ब्राह्मण्येन हवींषि च ॥ १७ ॥  
 हेविषा यस्तथा सत्यं सत्येन च सुरोत्तमाः ।  
 धर्मं धर्मेण च तथा तर्पयामि स्वतंजसा ॥ १८ ॥  
 इत्यादि भगवानुक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।  
 नापश्यंस्ते ततो देवं रुद्रं परमकार्ष्णम् ॥ १९ ॥  
 तं देवाः परमात्मानं रुद्रं ध्यायन्ति शंकरम् ।  
 सनारायणका देवाः सेन्द्राश्च मुनयस्तथा ॥ २० ॥  
 ततोर्ध्ववाहवो (?) देवा ह्यस्तुवञ्शंकरं तदा ।

**देवा ऊचुः**—य एष भगवान् रुद्रो ब्रह्मा विष्णुमहेश्वरः ॥ २१ ॥

स्कन्दश्चाग्निस्तथा चन्द्रो भुवनानि चतुर्दश ।  
 भूतानि च तथा सूर्यः सीमाद्यष्टौ ब्रह्मास्तथा ॥ २२ ॥  
 प्राणः कालो यमो मृत्युरमृतं परमेश्वरः ।  
 भूतं भव्यं भविष्यं च वर्तमानं महेश्वरः ॥ २३ ॥  
 विश्वं कृत्स्नं जगत्सर्वं सत्यं तस्मै नमो नमः ।  
 ओमादौ च तथा मध्ये भूर्भुवःस्वस्तयेव च ॥ २४ ॥  
 अन्ते त्वं विश्वरूपोऽसि शीर्षं च जगतः सदा ।  
 ब्रह्मैकस्त्वं द्वित्रिधोर्ध्वमधस्तत्त्वं सुरेश्वरः ॥ २५ ॥

१ (क. ल. ग. ज. इ.) ० यर्वागो ० (ग. इ.) ० जे ० ० ० ० ० (र. म. ग. ए.)  
 ० नमम् ॥ १६५ ५ (क. ल. ग. ज. इ.) ० नमो परमेश्वरः । ग। ५ (ग. इ. म. न.) भाग्यम् ।  
 ६ (ग. इ. ल. ज.) ० न नुत्वन ० ७ (ग.) ते दे०, ८ (ग. इ. म. न.) मंमध०



\*शान्तिश्च त्वं तथा पुष्टिस्तुष्टिश्चप्यहुतं हुतम् ।  
 विश्वं चैव तथाऽविश्वं दत्तं चादत्तमीश्वरः ॥ २६ ॥  
 ऋतं वाऽप्यधवा देव परमप्यपरं ध्रुवम् ।  
 परापणं सतां चैव अस्रतामपि शंकर ॥ २७ ॥  
 अपाम सोमममृता अभ्रमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।  
 किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥ २८ ॥  
 एतज्जगद्वेदितव्यमक्षरं सूक्ष्ममव्ययम् ।  
 प्राजापत्यं पवित्रं वा सौम्यमग्राह्यमग्रियम् ॥ २९ ॥  
 आग्नेयेनापि चाऽऽग्नेयं वापव्येन समीरणम् ।  
 सौम्येन सौम्यं व्रसते तेजसा स्वेन लीलया ॥ ३० ॥  
 तस्मै नमोऽपसंहर्त्रे महाप्रासाय शूलिने ।  
 हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥ ३१ ॥  
 हृदि त्वमसि योनिस्त्वं तिस्रो मात्राः परस्तु सः ।  
 शिरश्चोत्तरतस्तस्य पादो दक्षिणतस्तथा ॥ ३२ ॥  
 स यो जीवोत्तरः साक्षात्स ओंकारः सनातनः ।  
 ओंकारो यः स वै देवः प्रणवो व्याप्य तिष्ठति ॥ ३३ ॥  
 धनन्ततारः सूक्ष्मश्च शुक्ल वैद्युतमेव च ।  
 परब्रह्म स ईशान एको रुद्रः स एव च ॥ ३४ ॥  
 भवान्महेश्वरः साक्षान्महादेवो न संशयः ।  
 ऊर्ध्वमुन्नामयत्येवं स ओंकारः प्रकीर्तितः ॥ ३५ ॥  
 प्रोणाश्रयति यत्तस्मात्प्रणवः परिभाषितः ।  
 सर्वं व्याप्नोति यत्तस्मात्सर्वं व्यापिः सनातनः ॥ ३६ ॥  
 ब्रह्मा हरिश्च भगवानाद्यन्तं नोपलब्धवान् ।  
 यथाऽन्ये च ततोऽनन्तो रुद्रः परमकारणम् ॥ ३७ ॥  
 यत्तारपति संसारात्तार इत्यभिधीयते ।  
 सूक्ष्मो भूत्वा शरीराणि सर्वदा ह्यधितिष्ठति ॥ ३८ ॥  
 तस्मात्सूक्ष्मः सदा रूपातो भगवाश्रीललोहितः ।  
 नीलश्च लोहितश्चैव प्रधानपुरुषान्वयात् ॥ ३९ ॥

\* यहसाक्षतपुस्तकयोरय धीना नास्ति ।

+ असक्षितपुस्तकेऽय धीको नास्ति ।

१ ( क ख ग ) ० त्र प्राप्य कृत देण २ ( क ख ग ) प्राण्य भ्रमात् यत्तस्मात्  
 ३ ( घ ङ च ) ० भवित् । ४ ( क ख ग. घ. ) च यथा ।

स्कन्दतेऽस्य यतः शुकं ततः शुकमयीति च ।  
 विद्योतयति यत्तस्माद्द्वैद्युतं परिगीयते ॥ ४० ॥  
 बृहच्चाद्बृहणाद्ब्रह्म बृहते च परापरम् ।  
 तस्माद्बृहति यत्तस्मात्परं ब्रह्मेति कीर्तितम् ॥ ४१ ॥  
 अद्वितीयोऽथ भगवांस्तुरीयः शिव ईशते (?)।  
 ईशानमस्य जगतः स्वदेशं बभ्रुमीश्वरम् ॥ ४२ ॥  
 ईशानमिन्द्र तस्थुषः सर्वेषामपि सर्वदा ।  
 ईशानः सर्वविद्यानां यत्तदीशानमुच्यते ॥ ४३ ॥  
 यदीक्षते च भगवान्निरीक्षयति चान्यथा ।  
 आत्मज्ञानं महादेवो योगो गमयति स्वयम् ॥ ४४ ॥  
 भगवांश्चोच्यते तेन देवदेवो महेश्वरः ।  
 सर्वलोकान्क्रमेणैव वो यद्गच्छति महेश्वरः ॥  
 विस्तृत्येव देवेशो वासयत्यपि लीलया ॥ ४५ ॥  
 एष हि देवः प्रदिशो नु सर्वाः पूर्वा हि जातः स उर्गे गर्भे अन्तः ।  
 स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यञ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ ४६ ॥  
 उपासितव्यं यत्नेन तदेतत्सद्भिरश्रियम् ।  
 यतो वाचो निवर्तन्त अप्राप्य मनसा सह ॥ ४७ ॥  
 तद्ग्रहणमेवेह यद्वाग्वदति यततः ।  
 अपरं च परं चेति पारायणमिति स्वयम् ॥ ४८ ॥  
 वदन्ति वाचः सर्वज्ञं शंकरं नीललोहितम् ।  
 एष सर्वो नमस्तस्मै पुरुषः पिङ्गलः शिवः ॥ ४९ ॥  
 स एकः स महारुद्रो विश्वं भूतं भविष्यति ।  
 भुवनं बहुधा जातं जायमानमितस्ततः ॥ ५० ॥  
 हिरण्यवाहुर्भगवान्हिरण्यमपि चेश्वरः ।  
 अम्बिकापतिरीशानो हेमरेता वृषध्वजः ॥ ५१ ॥  
 उमापतिर्विक्रपाक्षी विश्वभुग्विश्ववाहनः ।  
 ब्रह्माणं विदधे योऽसौ पुत्रमग्रेः सनातनम् ॥ ५२ ॥  
 प्रहिणोति स्म तस्मै च ज्ञानमात्मप्रकाशकम् ।  
 तमेकं पुरुषं रुद्रं पुरुहूतं पुरुहुतम् ॥ ५३ ॥

वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वदेवं वह्निसूत्रं वरेण्यम् ।  
 तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ ५४ ॥  
 महतोऽपि महीषान्त अणोरप्यणुरव्ययः ।  
 गुहायां निहितश्चाऽऽत्मा जन्तोरस्य महेश्वरः ॥ ५५ ॥  
 विश्वं भूतं च विश्वस्य कमलं स्पन्दृदि स्वयम् ।  
 गह्वरं गगनान्तस्थं विश्वान्तश्चोर्ध्वतः स्थितम् ॥ ५६ ॥  
 तत्रापि शुभ्रं गगनमौकारं परमेश्वरम् ।  
 वालाग्रमात्रं मध्यस्थमृतं परमकारणम् ॥ ५७ ॥  
 सत्यं ब्रह्म महादेवं पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।  
 ऊर्ध्वरेतसमीशानं विरूपाक्षमजं भुवम् ॥ ५८ ॥  
 अधितिष्ठति यो योनिं योनिश्चैव स ईश्वरः ।  
 देहे पञ्चविधात्मानं तमीशानं पुरातनम् ॥ ५९ ॥  
 प्राणेऽप्यन्तर्मनसो लिङ्गमाहुर्यस्मिन्क्रोयो पा च नृष्णा क्षमा च ।  
 नृष्णां छित्त्वा हेतुजातस्य मूलं भजस्व देवं हरमेव केवलम् ॥ ६० ॥  
 परात्परतरं चाऽऽहुः परात्परतरं भुवम् ।  
 ब्रह्मणो जनकं विष्णोर्वह्निर्वायोः सदाशिवम् ॥ ६१ ॥  
 ध्यात्वाऽग्निना च सर्वाग्निं विशोद्गाचः पृथक्पृथक् ।  
 पञ्च भूतानि संयम्य मात्रागुणविधिक्रमात् ॥ ६२ ॥  
 मात्राः पञ्च चतस्रश्च त्रिमात्रा द्विस्ततः परम् ।  
 एकमात्रममात्रं हि द्वादशान्तेष्ववस्थितम् ॥ ६३ ॥  
 स्थित्योः स्थाप्यामृतो(?) भूत्वा व्रतं पाशुपतं चरेत् ।  
 एतद्व्रतं पाशुपतं चरिष्यामः समासतः ॥ ६४ ॥  
 अग्निमाधाय विधिवद्ग्यजुः सामसंभवैः ।  
 उपोषितः शुचिः स्नातः शुक्लाम्बरधरःस्वयम् ॥ ६५ ॥  
 शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः ।  
 जुहुयाद्विरजा विद्वान्विरजाः स भविष्यति ॥ ६६ ॥  
 वायवः पञ्च शुद्धयर्थं वाङ्मनश्चरणादयः ।  
 श्रोत्रे जिह्वा तथा घ्राणं मनो बुद्धिस्तथैव च ॥ ६७ ॥

\* शिरः पाणिस्तथः । पार्श्वं पृष्ठोदरमनन्तरम् ।  
 जसूये शश्वदुपस्थं च पायुं मेहूं तथैव च ॥ ६८ ॥  
 त्वक्च मांसं च रुधिरं मेदोऽस्थीनि तथैव च ।  
 शब्दं स्पर्शं च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ॥ ६९ ॥  
 भूतानि चैव शुध्यन्तां मद्देहे क्षमादयस्तथा ।  
 अन्तःप्राणमनोज्ञानं शुध्यतां मे शिवेच्छया ॥ ७० ॥  
 हुत्वा येन समिद्धिश्च वरुणाय यथाक्रमम् ।  
 उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृहीत्वा भस्म यत्नतः ॥ ७१ ॥  
 अग्निरित्यादिना धीमान्विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत् ।  
 एतत्पाश्रुपतं दिव्यं व्रतं पेशविमोक्षणम् ॥ ७२ ॥  
 ब्राह्मणानां सतां प्रोक्तं क्षत्रियाणां तथैव च ।  
 वैश्यानामपि योग्यानां यतीनां च विशेषतः ॥ ७३ ॥  
 वानप्रस्थाश्रमस्थानां गृहस्थानां सतामपि ।  
 विमुक्तिर्वैधिनाऽनेन दृष्ट्वा वै ब्रह्मचारिणाम् ॥ ७४ ॥  
 अग्निरित्यादिना सम्यग्गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रकम् ।  
 सोऽपि पाश्रुपतो विप्रो विमृज्याङ्गात्रि संस्पृशेत् ॥ ७५ ॥  
 भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान्महापातकसंभवैः ।  
 पापैर्विगुण्यते सत्यं लिप्यते च न संशयः ॥ ७६ ॥  
 वीर्यमग्नेर्यतो भस्म वीर्यवान्भस्मसंमतः ।  
 भस्मस्नानरतो विप्रो भस्मशापी जितेन्द्रियः ॥ ७७ ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।  
 इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा रतुत्वा देवं समप्रभुः ॥ ७८ ॥  
 भस्मच्छन्नः स्वयं कृत्स्नं विररामान्बुजासनः ।  
 अथ तेषां प्रसादार्यं पशूनां पत्तिरीश्वरः ॥ ७९ ॥  
 स गन्वा चोमया मार्धं सान्निध्यमकरोत्प्रभुः ।  
 अथ संनिहितं रुद्रं तुष्टुवुः सुरपुङ्गवाः ॥ ८० ॥  
 रुद्रं ध्यायेत्तु देवेशं देवदेवमुमापतिम् ।  
 देवोऽपि देवता लोप्य(१) घृणया च वृषध्वजः ॥ ८१ ॥  
 तुष्टोऽस्मीत्याह देवेशो वरं दत्त्वा वरासिदा ।  
 क्षणादन्तर्दितः शंभुर्ब्रह्मादीनां प्रपश्यताम् ॥ ८२ ॥

मूत उवाच-इमं यः पठतेऽध्यायं श्रुचिर्भूत्वा समाहितः ।

सर्वतीर्थफलं चैव सर्वयज्ञफलं तथा ॥ ८३ ॥

सर्वदेवव्रतफलं सर्वस्तोत्रफलं तथा ।

प्राप्नोति तत्फलं विप्राः श्रद्धया शिवसंनिधौ ॥ ८४ ॥

गाणपत्यमवाप्नोति देहान्ते मुनिपुङ्गवाः ॥ ८५ ॥ २३८६ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणो श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे सर्वात्मक-

रुद्रपाशुपतव्रतकथनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

मूत उवाच-वक्ष्यामि शिवमाहात्म्यं शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ।

बहुभिर्बहुधा शास्त्रैः कीर्तितं मुनिपुङ्गवैः ॥ १ ॥

सदसद्रूपमित्याहुः सदसद्यपि संस्थितम् ।

तं शिवं मुनयः केचिद्यं प्रपश्यन्ति स्वरयः ॥ २ ॥

भूतभावविकारेण द्वितीयेन सदुच्यते ।

अव्यक्तेन विहीनं स्यादव्यक्तमसदित्यपि ॥ ३ ॥

उभे ते शिवरूपेण शिवादन्वन्न विद्यते ।

तयोः पतित्वाच्च शिवः सदसत्पतिरुच्यते ॥ ४ ॥

क्षराक्षरात्मकं प्राहुः क्षराक्षरपरं तथा ।

शिवं महेश्वरं केचिन्मुनयस्तच्चचिन्तकाः ॥ ५ ॥

उक्तमक्षरमव्यक्तं व्यक्ताक्षरमुदाहृतम् ।

रूपे ते शंकरस्यैव तैन्नान्ना परमुच्यते ॥ ६ ॥

तयोः परः शिवः शान्तः क्षराक्षरपरो बुधैः ।

उच्यते परमार्थेन महादेवो महेश्वरः ॥ ७ ॥

समष्टिव्यष्टिं यद्रूपं समष्टिव्यष्टिकारणम् ।

वदन्ति केचिदाचार्यैः शिवं परमकारणम् ॥ ८ ॥

समष्टिमाहुरव्यक्तं व्यष्टिं व्यक्तिं मुनीश्वराः ।

रूपे ते गदिते शंभोर्नास्त्यन्यद्वस्तु किञ्चन ॥ ९ ॥

तयोः कारणभावेन शिवो हि परमेश्वरः ।

उच्यते योगशास्त्रज्ञैः समष्टिव्यष्टिकारणम् ॥ १० ॥

क्षेत्रं क्षेत्रज्ञरूपीति शिवः केश्चिद्बुदाहृतम् ।

परमात्मा परं ज्योतिर्भगवान्परमेश्वरः ॥ ११ ॥

चतुर्विंशतितत्त्वानि क्षेत्रशब्देन सूरयः ।  
 प्राहुः क्षेत्रज्ञशब्देन भोक्तारं परमेश्वरम् ॥ १२ ॥  
 न किञ्चिच्च शिवादन्यदिति प्राहुर्मनीषिणः ।  
 केचिदेवं प्रशंसन्ति महादेवं मुनीश्वरम् ॥ १३ ॥  
 वेदार्थतत्त्वविदुषः सम्यक्श्रुत्यनुसारतः ।  
 प्राणेन प्राणिति ह्यसावपानेन ह्यपानिति ॥ १४ ॥  
 व्यानेन व्यानिति तथा चोदानेन ह्युदानिति ।  
 समानिति समानेन मन्वीति मनसा द्विजाः ॥ १५ ॥  
 बुद्ध्या विचारपत्येप पर एव महेश्वरः ।  
 समस्तकरणैर्युक्तो वर्ततेऽसौ यदा तदा ॥ १६ ॥  
 जाग्रदिच्युते सद्भिरन्तर्पामी सनातनः ।  
 यदाऽन्तःकरणैर्युक्तः स्वेच्छया विचरत्यसौ ॥ १७ ॥  
 सुप्त इत्युच्यते ह्यात्मा स्वयं तापविवर्जितः ।  
 न बाह्यकरणैर्युक्तो न चान्तःकरणैस्तथा ॥ १८ ॥  
 सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः पुण्यपापविवर्जितः ।  
 स स्वरूपे सदा ह्यास्ते सुप्त इति वीयते ॥ १९ ॥  
 स्वप्नान्तं चैव बुद्धान्तं विचरत्येप शंकरः ।  
 नदीतले पथा मत्स्यो गत्वाऽऽगत्य निवर्तते ॥ २० ॥  
 इयेनो वाऽथ सुपर्णो वा श्रान्तः पर्वतकन्दरं ।  
 शेते संहृत्य पक्षौ च प्रत्यगात्मा ह्ययं तथा ॥ २१ ॥  
 जाग्रत्स्वप्नगता भावास्तेषु शान्तो मुहुर्मुहुः ।  
 संप्रसादं ततः प्राप्य परानन्दमयो भवेत् ॥ २२ ॥  
 अविद्ययैव सर्वोऽयं व्यवहारः परात्मनः ।  
 गुणधर्मो यदि स्यातां सुप्तौ रहितः कथम् ॥ २३ ॥  
 सत्पां निमित्तभूतायामविद्यायां द्विजोत्तमाः ।  
 बुद्धौ भ्रमन्त्यामात्माऽपि भ्रमतीति जना विदुः ॥ २४ ॥  
 नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा बुद्धिसंनिधिवत्तया ।  
 यथा यथा भवेद्बुद्धिरात्मा तद्बुद्धिहेष्यते ॥ २५ ॥  
 विद्याविद्यास्वरूपीति शंकरः कैश्चिदुच्यते ।  
 धाता विधाता लोकानामादिदेवो महेश्वरः ॥ २६ ॥

भ्रान्तिविद्यापरश्चेति शिवरूपमर्मुत्तमम् ।  
 अवाप मनसा सोऽयं केचिदागमवेदिनः ॥ २७ ॥  
 अर्थेषु बहुरूपेषु विज्ञानं भ्रान्तिरुच्यते ।  
 आत्माकारेण संवित्तिर्मुद्भिर्विद्येति कीर्त्यते ॥ २८ ॥  
 विकल्पपरहितं तत्त्वं परमित्यभिधीयते ।  
 व्यक्ताव्यक्तज्ञरूपीति शिवः कैश्चिन्निगद्यते ॥ २९ ॥  
 धाता च सर्वलोकानां विधाता परमेश्वरः ।  
 तयोर्विंशतितत्त्वानि व्यक्तिशब्देन सूरयः ॥ ३० ॥  
 वदन्ति व्यक्तशब्देन प्रकृतिं च परां तथा ।  
 कथयन्ति ज्ञशब्देन पुरुषं गुणभोगिनम् ॥ ३१ ॥  
 तत्र यच्छांकरं रूपं नाव्यक्तं न च अंकरात् ।  
 यो हेतुस्त्रिगुणस्यापि सर्वस्य प्रकृतेः परः ॥ ३२ ॥  
 चतुर्विधश्च त्रिविधः स एव भगवान्निशवः ।  
 स एव सर्वभूतात्मा सर्वभूतभवोद्भवः ॥ ३३ ॥  
 \*आस्ते सर्वगतौ देवो न च सर्वत्र दृश्यते ।  
 योगिनामपि व्यो योगी कारणानां च कारणम् ॥ ३४ ॥  
 रुद्राणामपि यो रुद्रो देवतानां च देवता ।  
 ब्रह्माद्या अपि यं देवं न विदन्ति महेश्वरम् ॥ ३५ ॥  
 यं ज्ञात्वा न पुनर्जन्म मरणं वाऽपि विद्यते ॥ ३६ ॥  
 यदाऽऽपदो देहभृता भवन्ति प्राणात्पयमाप्तिकृतस्तदानीम् ।  
 विहाय देवं जगदेकवन्धुं शिवं न चान्यः परिहारहेतुः ॥ ३७ ॥  
 आस्ते शिशुर्वैरान्सर्वान्सर्वेषां देहिनां सदा(?) ।  
 देहभृत्कथ्यते तस्मान्निर्गुणोऽपि महेश्वरः ॥ ३८ ॥  
 भूयानत्र गतः कालस्तत्रैकं जन्म गच्छतु ।  
 जिज्ञास्यतामिदं तावन्मुक्तिरेकेन जन्मना ॥ ३९ ॥  
 भक्त्या भगवतः शभोरिति देवोऽध्ववीन्द्रविः ।  
 सकृत्संस्मरणाच्छंभोर्नश्यन्ति क्लेशसंचयाः ॥ ४० ॥  
 मुक्तिं प्रयाति स्वर्गोप्तिस्तस्य विघ्नोऽनुभीयते ।  
 तस्मात्तद्विल्लतालोळं मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ॥ ४१ ॥

\* महामाश्विनपुराणसंगोपय भोगो न विद्यते ।

शिवं संपूजयेन्नित्यं भक्तिमात्मोपलब्धये ।  
 मोहनिद्रामसृष्टेऽस्मिन्पशुपाशशताकुले ॥ ४२ ॥  
 पुरुषाः कृतकृत्यास्ते ये शिवं शरणं गताः ।  
 पुत्रदारग्रहक्षेत्रधनधान्यद्विगेदिनीम् ॥ ४३ ॥  
 लब्ध्वेर्मा मा कृथा दर्पं रे रमां क्षणभङ्गुराम् ।  
 त्यक्त्वा क्रीधं च कामं च लोभं मोहं मदं तथा ॥ ४४ ॥  
 जना यजध्वमीशानं समीहितफलप्रदम् ।  
 यावन्नाभ्येति मरणं यावन्नाभ्येति वै जरा ॥ ४५ ॥  
 यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावदेवार्चयेश्वरम् ।  
 ये यजन्ति न देवेशं विषयासवमोहिताः ॥ ४६ ॥  
 शोचन्ते हि मृताः पङ्कलग्ना वनगजा इव ।  
 कालः संहितापापः संपदः पदमापदाम् ॥ ४७ ॥  
 समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादितं गुरु ।  
 यजन्ति ये विदित्वैवं लिङ्गमूर्तिमहेश्वरम् ॥ ४८ ॥  
 लभन्ते विपुलान्कामानिह चामुत्र चाक्षयान् ।  
 आराधयध्वं विप्रेन्द्राः सर्वज्ञै विश्वतोमुखम् ॥ ४९ ॥  
 क्षिप्रं यास्यथ तेनैव सायुज्यं नात्र संशयः ।  
 भक्त्या भवं यजेद्यस्तु महापातकवानपि ॥ ५० ॥  
 सोऽपि याति परं स्थानं त्रिसप्तपुरुषान्वितः ।  
 अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥ ५१ ॥  
 महेशार्चनपुण्यस्य कलां नार्हन्ति पोटंशीम् ।  
 क्रीडन्ति शिशवो यत्र लिङ्गं कृत्वा व्रजन्ति ये ॥ ५२ ॥  
 सैकतं मृन्मयं वाऽपि ते भवन्त्येव भूमुजः ।  
 आध्यात्मिकं चाऽऽधिदैवं दुःखं चैवाऽऽधिभौतिकम् ॥ ५३ ॥  
 देवादीनां विदित्वैवं मोक्षार्थी शिवमर्चयेत् ।  
 अपारतरपर्यन्ताद्द्वोरात्संसारसागरात् ॥  
 महामोहजलात्कामक्रोधग्राहात्सुखोमिणः ॥ ५४ ॥  
 प्राज्ञो वेदान्तविद्योगी निर्ममो निरहंक्रतिः ।  
 एको योगी प्रशान्तात्मा स संतरति नेतरः ॥ ५५ ॥



दान्तः सुसंपतो ध्यानं निराशो विगतस्पृहः ।  
 सर्वसङ्गविहीनश्च निर्द्वन्द्वो निरुपप्लवः ॥ ५६ ॥  
 सर्वकर्मफलत्यागी जहान्धबधिराकृतिः ।  
 मित्रारिपु समो मैत्रः समस्तेष्वेव जन्तुषु ॥ ५७ ॥  
 एवं सुदुर्लभो मोक्षो न स्याद्योगीव तादृशः ।  
 सर्वे पृथिव्यां पाताले मुक्ताः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५८ ॥  
 एवं सुदुर्लभं ज्ञात्वा मोक्षं हि बहुसाधनम् ।  
 पूजयध्वं महादेवं कर्मयोगेन चान्यथा ॥ ५९ ॥  
 कर्म पूजा जपो होमः शंभोर्नामानुकीर्तनम् ।  
 कर्मयोगाः समाख्याता एतैः पूज्यो महेश्वरः ॥ ६० ॥  
 यं यं काममभिध्यायेत्तदपिंतमनाः शिवम् ।  
 संपूज्य तं तमाप्नोति सावित्र्याह यथा पुरा ॥ ६१ ॥  
 तन्नामजापी तत्कर्मरतिस्तद्गतमानसः ।  
 निष्कामः पुरुषो विप्राः स रुद्रपदमश्रुते ॥ ६२ ॥  
 यः सर्वदाऽर्चयेदीशं स रुद्र इव भूतले ।  
 पापहा सर्वमर्त्यानां दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ ६३ ॥ २४४९ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे शिवमाहात्म्य-  
 कथनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

**ऋषय ऊचुः**—पतिव्रता महाभागा सावित्री वरवर्णिनी ।  
 यदाह तद्ब्रदास्माकं सूत वाक्यविशारद ॥ १ ॥  
**सूत उवाच**—स्वर्गे तां शोभनां दृष्ट्वा गुणैः सर्वैरलंकृताम् ।  
 अरुन्धत्युत्तमा स्त्रीणां पर्यपृच्छच्छुचिस्मितता ॥ २ ॥  
 शतशः सन्ति सावित्रि देवाः स्वर्गनिवासिनः ।  
 देवपत्न्यस्तथैवैताः सिद्धाः सिद्धाङ्गनास्तथा ॥ ३ ॥  
 न तेषामीदृशो गन्धो न कान्तिर्न सरूपता ।  
 नान्येषां विद्यते शोभा यथा ते पतिना सह ॥ ४ ॥  
 न चेवाऽऽकल्पजातानि भ्राजन्ते सुरयोपिताम् ।  
 यथा तव तथा पत्युर्भ्राजन्ते वरवर्णिनि ॥ ५ ॥  
 नास्ति कान्तिर्विमानानां शक्रादीनां दिवोकसाम् ।  
 विमानस्यापि ते कान्तिस्तरुणाकार्युतद्युतिः ॥ ६ ॥ १

\* न सादित्यादि माक्षे होत्यन्त शब्दज्ञान कथ्यगडजमक्षिनपुस्तकेषु नास्ति ।

तपः प्रभावो दानं वा कर्म वा क्रतुविस्तरम् ।

युवयोस्तन्मयाऽऽचक्ष्व यथावद्वरवर्णिनि ॥ ७ ॥

**सावित्र्युवाच**—शृणुष्वेतन्माहाभागे यत्कृतं पूर्वजन्मनि ।

भर्त्रो सह मया भद्रे शंभोरायतने शुभे ॥ ८ ॥

कृतं संमार्जनं भक्त्या गोमयेनोपलेपनम् ।

स्वर्गप्राप्तिरियं तस्य कर्मणः फलमुत्तमम् ॥ ९ ॥

तीर्थोदकैः सुगन्धैश्च(?) स्नापितो यदुमापतिः ।

तेन कान्तिरतीवैषा देहेऽभूत्रिदशेश्वरि ॥ १० ॥

मनःप्रसादं सौम्यत्वं शारीरी या च निर्वृतिः ।

यत्प्रियत्वं च सर्वस्य तद्दृष्टस्नानजं फलम् ॥ ११ ॥

आह्लादः परमस्वास्थ्यमारोग्यं चारुवेगता ।

प्राप्तिश्चाशेषकोमानां दधिक्षीरफलं शुभे ॥ १२ ॥

सौगन्ध्यं यत्परं देहे धूपदानस्य प्रत्फलम् ।

गीतैश्चैत्यस्तथा जाप्यैर्निपमैश्च पृथग्विधैः ॥ १३ ॥

तापितो भगवानीशस्तस्येयं पुष्टिरुत्तमा ।

खर्गोप्सुना सत्यवता मया च शुभदर्शने ॥ १४ ॥

कृतमेतदतो न स्यादावयोर्भोगसंक्षयः ।

ये निश्चिता नराः सम्यक्पूजयन्ति महेश्वरम् ॥ १५ ॥

तेषां ददाति विश्वेशो देवो मुक्तिं सुदुर्लभाम् ॥ १६ ॥

**मूत उवाच**—सैव मुक्ताऽथ सावित्र्या मुनीन्द्रा हृष्टमानसा ।

ब्रह्मस्तुषा शिवेशानो मणिपत्पेदमश्रवीत् ॥ १७ ॥

**अरुन्धत्युवाच**—सा पूज्या सा नमस्कार्या सा साध्वी सा पतिव्रता ।

या पूजयति सावित्रिं सदा हेमवतीपतिम् ॥ १८ ॥

यमाराध्यं दितिः पुत्राल्लेभे शक्रपुरोगमान् ।

दितिश्च दैत्यान्निविद्यान्यनता गरुडारुणौ ॥ १९ ॥

शष्पुर्वंशीमुत्साधान्याः संपूज्योमापतिं पुरा ।

प्रापुधाभिमतान्कतर्मांस्तमीशं को न पूजयेत् ॥ २० ॥

अभिनन्त्यापि तां चैवं वसिष्ठार्थशरीरिणी ।

जगाम स्वाश्रमं साध्वी सर्वदेवैर्गणान्विता ॥ २१ ॥

एवं समर्च्य गौरीशं श्रद्धधानाश्च योपितः ।  
 लभन्तेऽभिमतांभोगान्सावित्र्याह यथा द्विजाः ॥ २२ ॥  
 ये नराः सक्रदप्पत्र पूजयन्ति त्रिलोचनम् ।  
 ते धन्यस्ते महात्मानस्ते क्रतार्थाश्च पण्डिताः ॥ २३ ॥  
 धर्मार्थकाममोक्षाणां लिङ्गार्चा हेतुरुच्यते ।  
 सर्वेषां प्राणिनां विप्रा इन्द्रियाणां यथा मनः ॥ २४ ॥  
 हृत्पद्मकर्णिकावासं तेजोमूर्तिमसङ्गिनम् ।  
 निर्ममा निरहंकारा ध्यायन्ति ज्ञानिनः सदा ॥ २५ ॥  
 शैलजं चाणलिङ्गं वा पूजयेद्विधिवत्सदा ।  
 मृदारुघटितं वाऽपि रत्नजं वा गृहाश्रमी ॥ २६ ॥  
 साम्राज्यं मनुजैः कैश्चित्स्वाराज्यं च तथा परैः ।  
 तथा वैराज्यमन्यैश्च लिङ्गमिष्ट्यं तदैश्वरम् ॥ २७ ॥  
 शोचन्ते ते परं ह्रीना अभाग्याश्च दिने दिने ।  
 प्रमादेनापि यैर्नोक्तं शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥ २८ ॥  
 संपूज्ये सर्वसामान्ये स्वाराधये सर्वकामदे ।  
 भवेऽपि सति सीदन्ति भाविनो यत्तदद्भुतम् ॥ २९ ॥  
 उपसर्गाः क्षयं यान्ति च्छिद्यन्ते विघ्नपल्लवाः ।  
 मनः प्रसन्नतां याति पूज्यमाने महेश्वरे ॥ ३० ॥  
 पूजिते सर्वदेवेशे सर्वदेवनमस्कृते ।  
 पूजिताः सर्वदेवाः स्युर्यतोऽसौ सर्वगो विभुः ॥ ३१ ॥  
 शिवार्चनरतो नित्य महापातकसंभवैः ।  
 दोषैर्न लिप्यन्ते विद्वान्पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ३२ ॥  
 किमत्र शास्त्रमालाभिः सक्षेपेणोपदिश्यते ।  
 व्यापारान्सकलांस्त्यक्त्वा पूजयध्व महेश्वरम् ॥ ३३ ॥  
 निकटा एव दृश्यन्ते क्रतान्तनगरद्भुताः ।  
 शिवं स्मर शिवं ध्याय शिवं चिन्तय सर्वदा ॥ ३४ ॥  
 किं वेदैः किं मु वा शास्त्रैः किं वा तीर्थोदिसेवया ।  
 शिवः संपूज्यतां नित्यमुपदेशोऽर्घमुत्तमः ॥ ३५ ॥

अपमेव परोधर्मश्चिर्णमेतत्परं तपः ।  
 इदमेवाखिलं ज्ञानं पूजनं यन्महेशितुः ॥ ३६ ॥  
 शिवे दत्तं हुतं जप्तं बलिपूजानिवेदितम् ।  
 एकान्ततोऽत्यन्तफलं तद्भवेन्नात्र संशयः ॥ ३७ ॥  
 कर्मभूमौ हि मानुष्यं जन्मनां नियुतैरपि ।  
 स्वर्गापवर्गफलदं कदाचित्प्राप्यते नरैः ॥ ३८ ॥  
 तदीदृग्दुर्लभं प्राप्य नार्चयन्ति ह ये शिवम् ।  
 तेषां हि हस्ते मूर्खाणां विवेकः कुत्र तिष्ठति ॥ ३९ ॥  
 आराधितो हि यः पुंसांमैहिकामुष्मिकं फलम् ।  
 ददाति भगवान्शंभुः कस्तं नं प्रतिपूजयेत् ॥ ४० ॥  
 यो यमिच्छति विमेन्द्राः समाराध्य महेश्वरम् ।  
 निःसंशयं तमाप्नोति पुरा वैश्रवणो यथा ॥ ४१ ॥  
 दृष्टः संपूजितो ध्यातः संस्मृतो वा स्तुतोऽपि वा ।  
 यो ददाति त्रुणां मुक्तिं तस्मात्कौर्नार्च्यते शिवः ॥ ४२ ॥  
 श्वपचोऽपि मुनिश्रेष्ठाः शिवभक्तो द्विजाधिकः ।  
 शिवभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधमः ॥ ४३ ॥  
 यद्वा तद्वा शिवे कर्म पुमान्कृत्वा शिवान्पे ।  
 लोभात्सद्गात्ममादाद्वा पृथिव्यामेकराद्भवेत् ॥ ४४ ॥  
**ऋषय ऊचुः**—कथं वैश्रवणः पूर्वं समाराध्य महेश्वरम् ।  
 लब्धं तस्मात्कुवेरत्वं सूत तद्भक्तुर्महसि ॥ ४५ ॥  
**सूत उवाच**—शृणुष्वमृषयः सर्वे यदुक्तं सप्तमेऽन्तरे ।  
 माहात्म्यसूचनरूपा शिवस्य परमेष्ठिनः ॥ ४६ ॥  
 कश्चिदामीदृजोऽवन्त्यां तोमशर्मति विश्रुतः ।  
 पुत्रसैत्रकन्त्रादिन्यापारेषु रतः सदा ॥ ४७ ॥  
 पिदापाथ स गाहैस्त्वयं धनार्थं लोभमोहितः ।  
 प्रवचार महो सर्वां सप्रामपुरपत्तनाम् ॥ ४८ ॥  
 भार्या तस्य विशालाक्षी तस्मिन्गेहाद्विनिर्गते ।  
 स्वच्छन्दनामिणी नित्यं यभूवान्मोहिता ॥ ४९ ॥  
 तस्याः कदागित्पुत्रान् शूद्राज्ञातो विधेर्मान् ।  
 दुरात्माऽनीव निर्गुरो नासा दुःसट इत्युत ॥ ५० ॥

सोऽथ कालेन महता व्यसनोपप्लुतोऽभवत् ।  
 सर्वैर्बन्धुजनैस्तपक्तः परिपन्थिपथे स्थितः ॥ ५१ ॥  
 पूजोपकरणद्रव्यं स कस्मिंश्चिच्छिवालये ।  
 रजन्यां प्रविवेशाथ व्यसनेन प्रपीडितः ॥ ५२ ॥  
 यावद्दीपो गतप्रायो वीतिच्छेदोऽभवत्किल ।  
 तावत्तेन दशा दत्ता द्रव्यान्वेपणकारणात् ॥ ५३ ॥  
 प्रबुद्धश्चोच्छ्रितस्तत्र देवपूजाकरो नरः ।  
 कोऽयं कोऽयमिति प्रोचैर्व्याहरन्परिघामुधः ॥ ५४ ॥  
 स च प्राणभयान्नष्टो वित्रस्तश्चापि मूढधीः ।  
 न विन्दन्नात्मनो जन्म कर्म वाऽपि मुहुःस्वितः ॥ ५५ ॥  
 पुरपालैर्हृतोऽवन्त्यां मृतः कालादभूत्ततः ।  
 गान्धारविपये राजा ख्यातो नाम्ना मुदुर्मुखः ॥ ५६ ॥  
 गीतवाचरतः स्तब्धो वेश्यापानरुचिर्भृशम् ।  
 प्रजोपद्रवक्रन्मूर्खः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ ५७ ॥  
 किं त्वर्चयत्यसौ नित्यं लिङ्गं राज्यक्रमागतम् ।  
 पुष्पधूपसुनैवेद्यगन्धादिभिरमञ्जवित् ॥ ५८ ॥  
 स्मरन्वै पौर्विकं कर्म शिवस्याऽऽपतनेषु च ।  
 ददाति बहुशो दीपान्वर्तितैलसमुज्ज्वलान् ॥ ५९ ॥  
 कदाचिन्मृगयासक्तो ममाराथ स वीर्यवान् ।  
 पूर्वारिभिर्हतो युद्ध ऐरावत्यास्तटे शुभे ॥ ६० ॥  
 शिवपूजाप्रभावेन विध्वस्ताशेषकिल्बिषः ।  
 पुत्रो दिग्भयसङ्घातूत्सर्वथाहायियो बली ॥ ६१ ॥  
 कुबेर इति धर्मात्मा श्रुतिशास्त्रसमन्वितः ।  
 संपूज्याथ स चेशानं विधिवत्स्वर्धुनीतटे ॥  
 स्तोत्रेणानेन तुष्टाव भक्त्या तं सर्वकामदम् ॥ ६२ ॥

**कुबेर उवाच**—नमाम्यहं देवमजं पुराणमुपेन्द्रवेधोमरराजजुष्टम् ।  
 शशाङ्कसूर्याग्रसमाननेत्रं वृषेन्द्रचिह्नं विलयादिहेतुम् ॥ ६३ ॥  
 सर्वेश्वरैकं त्रिदशैकबन्धुं ध्यानाधिगम्यं जगतोऽधिवासम् ।  
 तं वाह्ययाधारमनन्तशक्तिं ज्ञानार्णवं स्थैर्यगुणाकरं च ॥ ६४ ॥

१ पिनाकपाशाद्गुशगूलहस्तैः कपर्दिनं मेघसहस्रघोषम् ।  
 सकालकूटं स्फटिकावभासं नमामि शंभुं भुवनैकनाथम् ॥ ६५ ॥  
 कपालिनं मालिनमादिदेवं जटाधरं भीमभुजंगहारम् ।  
 २ प्रशासितारं च सहस्रमूर्तिं सहस्रशीर्षं पुरुषं वरिष्ठम् ॥ ६६ ॥  
 पेमक्षरं निर्गुणमप्रमेयं तं ज्योतिरेकं प्रवदन्ति सन्तः ।  
 दूरंगमं वेदविदां च बन्धं सर्वस्य हृत्स्थं परमं पवित्रम् ॥ ६७ ॥  
 तेजोनिधिं बालमृगाङ्गमौलिं नमामि रुद्रं स्फुरद्गुणवक्रम् ।  
 कालेन्धनं कामदमस्तसङ्गं धर्मासनस्थं प्रकृतिद्वयस्थम् ॥ ६८ ॥  
 अतीन्द्रियं विश्वभुजं जितारिं गुणत्रयातीतमजं निरीहम् ।  
 मनोमयं वेदमयं च हंसं प्रजापतीशं पुरुहूतमिन्द्रम् ॥ ६९ ॥  
 अनाहतैकध्वनिरूपमाद्यं ध्यायन्ति यं योगविदो यतीन्द्राः ।  
 संसारपाशच्छिदुरं विमुक्त्यै पुनः पुनस्तं प्रणमामि नित्यम् ॥ ७० ॥  
 न यस्य रूपं न बलप्रभावो न च स्वभावः परमस्य पुंसः ।  
 विज्ञायते विष्णुपितामहाद्यैस्तं वामदेवं प्रणमाम्यचिन्त्यम् ॥ ७१ ॥  
 शिवं समाराध्य यमुग्रमूर्तिं पपौ समुद्रं भगवानगस्त्यः ।  
 लेभे दिलीपोऽप्यखिलां स चोर्वीं तं विश्वयोनिं शरणं प्रपद्ये ॥ ७२ ॥  
 संपूजयन्तो दिवि देवसंघा ब्रह्मेन्द्रमुख्या विविधांश्च कामान् ।  
 तं स्तौमि नौमीह जपामि शर्वं वन्देऽभिवन्द्यं शरणं प्रपद्ये ॥ ७३ ॥  
 स्तुत्वैवमीशं विरराम यावत्तावत्सदस्त्रार्कसमानतेजाः ।  
 ददौ स तस्मै वरदोऽन्धकारिवैरत्रयं वैश्रवणाय देवः ॥ ७४ ॥  
 कृत्वाऽधिराजं च ततस्त्रिनेत्रो यशस्विनं गुह्यकरामत्र ।  
 ब्रह्माच्युतेन्द्रादिनताङ्घ्रिपद्मो जगाम कैलासप्रमोघवाक्यः ॥ ७५ ॥  
 सख्यं च द्विकपालपदं चतुर्थं धनाधिपत्यं च दिवोकसां सः ।  
 तथाऽधिकं चैतदनिन्द्यकीर्तिः सुखी बभूवामतिमर्मभावः ॥ ७६ ॥  
 दोषाचरेन्द्रश्च तथा दशास्यः संपूज्य दोषाकरचारुमौलिम् ।  
 दोषाकरश्चाप्यजितेन्द्रियश्च मुक्तिं स लेभेऽस्तसमस्तदोषः ॥ ७७ ॥  
 स्वर्गस्य मार्गा बहवः प्रदिष्टास्ते क्रच्छ्रसाध्या बहवः सविघ्नाः ।  
 निमेषमात्रेण महाफलोऽयमृजुश्च पन्थाः स्मरणं पुरारेः ॥ ७८ ॥  
 दृष्टं तदेवाद्भुतमत्र मर्त्या माहात्म्यमैशं समुरामुराश्व ।  
 त्पक्त्वाऽऽत्मयोगं च भैस्त्रिक्रियाश्च यजन्यतत्त्रयम्बकमेव सर्वे ॥ ७९ ॥

१ ( ड. ज. ) यदक्षणे २ ( ड. ज. ) ०व तज्ज्योतिः ३ ( च ) ०जोमय का ४ ( घ. ड. )  
 घ. छ. ज. ) ०धिया वै त ५ ( ज ) ०प्रताप ॥ ७६ ॥ ६ ( घ. ड. ज. ) मक्ष मि ०

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।  
 स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥ ८० ॥  
 कर्मोप्यसंकल्पिततत्फलानि संन्यस्य रुद्रे परमात्मरूपे ।  
 अवाप्य ते कर्ममहीमनन्ते तस्मिच्छ्रयं ये त्वमलाः प्रयान्ति ॥ ८१ ॥  
 जानीष(?) नैतद्धि कदा विलीने शुभप्रदे कर्मणि देहबन्धः ।  
 प्रासाम खण्डे किले भारताख्ये कुलेऽकलङ्के शिवधर्मनिष्ठाः ॥ ८२ ॥  
 स्तोत्रेण येऽपि कचिदत्र भक्ताः प्रसंस्तुवन्ति प्रथमैकनाथम् ।  
 प्रयान्ति ते लोकमिहान्धकारेः परंदरोद्गीतमहाप्रभावाः ॥ ८३ ॥

**सूत उवाच**—एवं वैश्रवणो जातो महादेवप्रसादतः ।

सर्वमेतदशेषेण कथितं मुनिपुङ्गवाः ॥ ८४ ॥

\*यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

ब्रह्मलोके वसेत्कल्पमिति देवोऽब्रवीद्ब्रवीः ॥ ८५ ॥ २५३४ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादेऽरुन्धती-  
 सावित्रीसंवादादिकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

**सूत उवाच**—पुनर्वक्ष्यामि माहात्म्यं देवदेवस्य शूलिनः ।

पठतां गृण्वतां सद्योऽघानि हन्ति बहून्पि ॥ १ ॥

जितारीन्द्रियपद्भुर्गा योगिनोऽप्यनहंकृताः ।

यजन्ति ज्ञानयोगेन शिवमात्मस्वरूपिणम् ॥ २ ॥

तीर्थोदकैर्विशुद्धा ये दानयज्ञतपोव्रतैः ।

ते यजन्ति महेशानं कर्मयोगेन साधवः ॥ ३ ॥

लुब्धा व्यसनिनोऽज्ञाश्च न यजन्ति जगत्पतिम् ।

अजरामरबन्धूडास्तिष्ठन्ति नरकीटकाः ॥ ४ ॥

शिवधर्मरताः शान्ताः शिवशास्त्ररताः सदा ।

देवात्केऽपीह जायन्ते पृथिव्यां पुरुषोत्तमाः ॥ ५ ॥

रूपं न शक्यते तस्य संस्थानं वा कदाचन ।

निर्देष्टुं प्राणिभिः कैश्चिद्भृष्टं वाऽप्यकृतात्मभिः ॥ ६ ॥

क्रियतां मद्बचः कर्णे शिवे त्वात्मा नियुज्यताम् ।

आदीप्ते भवने कृपं खनितुं नैव शक्यते ॥ ७ ॥

\* घट्टसहितपुस्तकेष्वयं श्लोको न विद्यते ।

च. ) व्यं ते त्वण २ ( घ. ) विष्णु भाण ३ ( च. ) मन्त्रा प्रण ( घ. घ. )  
 स्तुण ( ४ ) ( घ. ड. घ. ज. ) प्रथमैकण ५ ( घ. ख. ग. घ. ज. ख. ) ० ह्वरेऽन्धण

सत्यं वच्मि हितं वच्मि सारं वाच्यं पुनः पुनः ।  
 असारे दग्धसंसारे सारं यच्छिवपूजनम् ॥ ८ ॥  
 तदस्य दग्धसंसारग्रन्थेरत्यन्तदुर्भेदः ।  
 परं निर्मूलविच्छेदि क्रियतीं तद्रवार्चनम् ॥ ९ ॥  
 मनस्तद्विद्विद्धि कर्मज्ञं शंकरं यत्प्रवर्तते ।  
 सा वाणी वाक्पतिं शंभुं या स्तौत्यच्युतमच्युता ॥ १० ॥  
 श्रवणौ तौ श्रुतौ याभ्यां श्रूयन्ते तत्कथाः शुभाः ।  
 पादौ तौ सफलौ पुंसां शिवायतनगामिनौ ॥ ११ ॥  
 ते च नेत्रे शुभापालं याभ्यां संदृश्यते शिवः ।  
 सफलौ तौ स्मृतौ विभास्तत्पूजाकारिणौ करौ ॥ १२ ॥  
 \*तदेव सफलं कर्म शिवमुद्दिश्य यत्कृतम् ।  
 सेयं लक्ष्मीः परा पुंसां सेयं भक्तिः समीहिता ॥ १३ ॥  
 श्रेयाश्श्रेयस्करौ भक्तिर्मुक्त्यो गिरिजापतेः ।  
 रिपवस्तं न हिंसन्ति न च स्वादन्ति राक्षसाः ॥ १४ ॥  
 न दंशन्ति च नागेन्द्रा नरं रुद्रपरायणम् ।  
 विर्षाककटुकान् रम्यान्विषयान्विषसंभिभान् ॥  
 संत्यज्याऽऽराधयेदेवं शंकरं लोकशंकरम् ॥ १५ ॥  
 आहिंसा सत्यमस्तेयं दया भूतेष्वनुग्रहः ।  
 यस्पैतानि सदा विभास्तस्य तुष्यति शंकरः ॥ १६ ॥  
 दृष्ट्वा संपूजितं लिङ्गं भक्त्या यश्चाभिनन्दति ।  
 तूर्यत्रिकं वा यः कुर्यात्तस्य तुष्यति शंकरः ॥ १७ ॥  
 वाङ्मनःकायकर्मेच्छा यस्य भक्तिर्महेश्वरे ।  
 व्यसनोपहतस्यापि तस्य तुष्यति शंकरः ॥ १८ ॥  
 यथा द्विजा हस्तपदे पदानि संलीपन्ते सर्वसत्त्वोद्भवानि ।  
 एवं धर्माः शिवधर्मे तु सर्वे संलीयन्ते नात्र चित्रं मुनीन्द्राः ॥ १९ ॥  
 अल्पाश्रयानल्पफलास्त्वेवरांश्च धर्मानन्यान्माहुरिह द्विजेन्द्राः ।  
 महाश्रयं बहुकल्पाणरूपं वदन्ति सन्तः शिवधर्ममेकम् ॥ २० ॥

\* यद्वचसाङ्गनपुस्तकेष्वयं श्लोको न विद्यते ।

† यद्वचसहितपुस्तकेष्वयं श्लोको न विद्यते ।



सर्वे वर्णा देवदेवस्य शंभोः पूजां कृत्वा सत्यवाक्यानि चोक्त्वा ।  
 त्यक्त्वा धर्मं दारुणं मृत्युलोके यान्ति स्वर्गं नाम कार्पो विचारः ॥२१॥  
 ये वामदेवं हि यजन्ति नित्यं सदृत्तशीलाः किल लिङ्गमूर्तिम् ।  
 ते ध्वस्तैदोषा हि भवन्ति मर्त्या भवान्बुराशिं विपमं तरन्ति ते ॥२२॥  
 तैरिष्टं विविधैर्यज्ञैर्देवर्षिपितृमानवाः ।  
 तर्पिताः स्युर्जगद्धेतुर्यैरिष्टो भगवान्भवः ॥ २३ ॥  
 पर्वतान्दश यदत्वा महादानानि षोडश ।  
 धेनूश्च दश यदत्वा तद्दृष्ट्वा लिङ्गमाप्नुयात् ॥ २४ ॥  
 शिवभक्तो न यो राजा भक्तोऽन्येषु सुरेषु सः ।  
 स्वपत्नीं युवतीं त्यक्त्वा यथैवान्यासु रज्यते ॥ २५ ॥  
 व्याजेनापि हि ये कुर्युः किञ्चित्कर्म शिवालये ।  
 न ते यान्तीह नरकं पापात्मानोऽपि मानवाः ॥ २६ ॥  
 संमार्जनादिकर्तारो मार्गेशोभाकराश्च ये ।  
 तेऽवश्यं पृथिवीपाला भवन्ति त्रिदशोपमाः ॥ २७ ॥  
 अस्मिन्नर्थे पुरा वृत्तं तच्छृणुध्वं द्विजोत्तमाः ।  
 यच्छ्रुत्वा प्राणिनः प्रायो न मोहमुपयान्ति ते ॥ २८ ॥  
 स्वाधंभुवेऽन्तरे त्वासीद्राजा परमधार्मिकः ।  
 पञ्चालविपये विप्रो नरवर्मेति विश्रुतः ॥ २९ ॥  
 दैवमन्त्रविदुत्साहशक्तियुक्तः प्रतापवान् ॥  
 पाङ्गुष्पविन्महासत्त्वः स्मितपूर्वाभिभाषितः ॥ ३० ॥  
 तस्य भार्यासहस्राणां दर्शनीयतमाकृतिः ।  
 दशानामग्रमहिषी सुदेवीत्यभिविश्रुता ॥ ३१ ॥  
 सर्वलक्षणसंपन्ना शचीव वरवर्णिनी ।  
 भर्तुश्चापि मिया साध्वी चन्द्रकान्तिसमप्रभा ॥ ३२ ॥  
 करोति प्रत्यहं राज्ञी भूमिसंमार्जनादिभिः ।

तां तथाऽभिरतां दृष्ट्वा तस्य राज्ञः पुरोहितः ।  
 पप्रच्छेदं स तन्वद्गी गालवो रहसि स्थिताम् ॥ ३४ ॥  
 ब्रूहि सुभृ महाभागे किमर्थं हरमन्दिरे ।  
 संमार्जनरता नित्यमन्यकमैपराङ्मुखी ॥ ३५ ॥  
 सैवमुक्ता तदा तेन मुनिना विनयान्विता ।  
 प्रहस्याऽऽह विशालाक्षी मुनीन्द्रं गालवं प्रति ॥ ३६ ॥  
 न मेऽन्यत्र परा भक्तिर्पथा संमार्जनादिषु ।  
 तवाहं कथयिष्यामि पुरा कर्म कृतं मया ॥ ३७ ॥  
 पूर्वमासमहं गृध्री पक्षिणी व्योमचारिणी ।  
 कदाचिद्भ्रममाणा तु गता किष्किन्धपर्वतम् ॥ ३८ ॥  
 सिद्धविद्याधराकीर्णं हेमकूटमिवापरम् ।  
 आश्चर्यवन्निरावाधं खलिङ्गं यत्र तिष्ठति ॥ ३९ ॥  
 यस्य संदर्शनादेव स्वर्गं यान्ति मनीषिणः ।  
 संपूज्याथ तमेवेशं पुष्पैर्भूपाक्षतादिभिः ॥ ४० ॥  
 न्यस्तं केनापि तत्पार्श्वे नैवेद्यं यत्तदैव हि ।  
 तदादातुं समागत्य खलिङ्गं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ४१ ॥  
 क्षुधातांऽहं महाभाग नैवेद्ये तु कृतोद्यमा ।  
 क्रमात्तन्नाग्रहीद्विष पक्षाभ्यां पांशुमार्जनम् ॥ ४२ ॥  
 कृतं देवस्य पुरतो दैवयोगात्क्षणात्ततः ।  
 तावत्तत्र समायातस्तस्य देवस्य पूजकः ॥ ४३ ॥  
 उद्गताऽहं ततः कालान्मृता जाता वसोर्युहे ।  
 त्रवर्मणे च तेनाहं प्रदत्ता प्रथमा वधूः ॥ ४४ ॥  
 दशराज्ञीसहस्राणामुत्तमा तत्प्रभावतः ।  
 मान्या च दयिता राज्ञः पुत्रपौत्रसमन्विता ॥ ४५ ॥  
 अकामादीश्वरागारे कृत्वैव पांशुमार्जनम् ।  
 दुहिताऽहं वसोजाता राज्ञो जातिस्मरा तथा ॥ ४६ ॥  
 कामात्समार्जनं कृत्वा भविष्यामि न वेन्नित् ।  
 एवमुक्तस्तथा राज्ञ्या प्रहृष्टस्तामथाब्रवीत् ॥ ४७ ॥  
 समाराध्य सुरेशानं सर्वदं त्रिपुरान्तकम् ।  
 किमाश्चर्यं गुणावासे यदेतत्प्राप्तवत्यसि ॥ ४८ ॥

चक्षुषा प्रेक्षणं चैव नमनं च प्रदक्षिणम् ।  
 लिङ्गमूर्तेः शिवस्यैव राज्यावाप्तिकरं स्मृतम् ॥ ४९ ॥  
 जातिस्मरत्वमैश्वर्यं विद्याज्ञानं प्रजासुखम् ।  
 अज्ञानाद्वा भयाद्वाऽपि दृष्ट्वैवेह महेश्वरम् ॥ ५० ॥  
 नाम्नाऽपि नरकच्छेदः स्मरणाद्वैबुधं पदम् ।  
 पूजनाद्यस्य निर्वाणं तमीशं को न संशयेत् ॥ ५१ ॥  
 फलं प्रसादाज्जायेत ध्रुवं कालिन देहिनाम् ।  
 अर्थिनां त्वखिलान्कामान्सद्यः फलति शंकरः ॥ ५२ ॥  
 शाब्देनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति महेश्वरम् ।  
 तेऽपि यान्ति तनुं त्यक्त्वा शिवलोकमनामयम् ॥ ५३ ॥  
 चराचरगुरोरस्य शंभोरमिततेजसः ।  
 न कृता यैर्दृढा भक्तिर्विश्रितास्ते स्फुटं जनाः ॥ ५४ ॥  
 प्रमादेनापि यैः क्वापि प्रणामः शूलिनः क्रतुः ।  
 कल्पान्तेऽपि भवग्रन्थिर्न तेषां जायते पुनः ॥ ५५ ॥  
 तावद्भ्रमन्ति संसारे शोकमोहपरायणाः ।  
 नार्चयन्ति विरूपाक्षं यावदेव शरीरिणः ॥ ५६ ॥  
 इतिहासपुराणादिशिवपुस्तकवाचनम् ।  
 ये कुर्युः सक्रदप्येवं भक्त्या शृण्वन्ति ये नराः ॥ ५७ ॥  
 व्रतोपवासदानेषु तीर्थस्नानेषु यत्फलम् ।  
 तत्तेषां स्यान्न संदेह इत्याह परमेश्वरः ॥ ५८ ॥

विनष्टलोभा विषयेषु निस्पृहाः प्रसन्नचित्ताश्च शिवार्चनोद्यताः ।  
 व्रजन्ति शंभोः परमं सनातनं निरामयं यत्प्रवदन्ति सूरयः ॥ ५९ ॥  
 कुलं पवित्रं पितरः समुद्धृता वसुंधरा तेन च पाविता द्विजाः ।  
 सनातनोऽनादिरनन्तविग्रहो हृदि स्थितो यस्य सदैव शंकरः ॥ ६० ॥ २५९४ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे सुदेव्युपाख्यानं  
 नामाष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

ऋषय ऊचुः—पार्वत्याः श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं रोमहर्षण ।

जघान सा यथा दैत्यान्रक्तामुरपुरोगमान् ॥ १ ॥

मूत उवाच—प्रणिपत्य महादेवीं शंकरार्धशरीरिणीम् ।

महेन्द्राणीश्वरनुतां भक्तानुग्रहकारिणीम् ॥ २ ॥

एकाक्षरीति विख्याता ब्राह्मी दक्षायणीति या ।  
 उमा हैमवती दुर्गा सती माता महेश्वरी ॥ ३ ॥  
 आर्याऽम्बिका मृडानी च चण्डी नारायणी शिवा ।  
 महालक्ष्मीर्जगन्माता कालिका भेनकात्मजा ॥ ४ ॥  
 नानारूपधरा सैवमवतीर्यैव पार्वती ।  
 धर्मसंस्थापनार्थाय निघ्नन्ती दैत्यदानवान् ॥ ५ ॥  
 परमात्मा यथा रुद्र एकोऽपि बहुधा स्थितः ।  
 प्रयोजनवशाद्देवी सैकाऽपि बहुधा भवेत् ॥ ६ ॥  
 आसीद्रक्तासुरो नाम महिषस्य सुतो बली ।  
 महाभायो महाबाहुर्हिरण्याक्ष इवापरः ॥ ७ ॥  
 स विजित्य सुरान्सर्वान्विष्ण्वन्द्राग्निपुरोगमान् ।  
 त्रैलोक्येऽस्मिन्निरातङ्गश्चक्रे राज्यं प्रतापवान् ॥ ८ ॥  
 तस्यैते मन्त्रिणश्चासन् रुद्रात्मानो मदोत्कटाः ।  
 \*त्रयस्त्रिंशद्विजश्रेष्ठाः सहस्राक्षौहिणीयुताः ॥ ९ ॥  
 सिंहस्कन्धा महाकाया दुरात्मानो महाबलाः ।  
 धूम्राक्षो भीमदंष्ट्रश्च कालपाशो महातनुः ॥ १० ॥  
 ब्रह्मघ्नो यज्ञकोपश्च स्त्रीघ्नो बालघ्न एव च ।  
 †विद्युन्माली च वन्द्यकः शङ्कुकर्णो विभावसुः ॥ ११ ॥  
 देवान्तको विधर्मश्च दुर्भिक्षः क्रूर एव च ।  
 हयग्रीवोऽश्वकर्णश्च केतुमान्वृषभो गजः ॥ १२ ॥  
 शलभः शरभो व्याघ्रो निकुम्भो मणिको बक ।  
 सूर्पको विक्षुरो माली कालो दण्डश्च कैरलः ॥ १३ ॥  
 स कदाचित्समासीनो दैत्यकोटिसमावृतः ।  
 सदस्यधात्रवीदैत्यान्दानवान्सनरास्तथा ॥ १४ ॥  
 मा यजध्वं स्तुवध्वं च पूज्योऽहं भवता सदा ।  
 यस्तु देवान्समातिष्ठेत्स गच्छेद्ब्रह्मपतां मम ॥ १५ ॥

\* घटसाहितपुस्तकयोर्मध्ये त्रयस्त्रिंशद्विजश्रेष्ठा इत्यन्त शब्दजात नास्ति ।

† सताहितपुस्तके विद्युन्मालीत्याम्भ्य एव चेत्यन्त शब्दजात नास्ति ।

दानयज्ञोपवासांश्च त्यक्त्वा देवप्रदाशितान् ।  
 प्रत्यक्षसौरूपान्भुञ्जीध्वं यथेष्टं सुरयोपितः ॥ १६ ॥  
 इति दैत्येन्द्रवाक्येन नष्टा यज्ञक्रियास्ततः ।  
 नाधीयन्ते तदा वेदान् पूज्यन्ते च देवताः ॥ १७ ॥  
 उत्सवा न प्रवर्तन्ते सर्वमासीत्तदाऽऽसुरम् ।  
 धर्महीनस्ततो लोको म्लेच्छाकुल इवाभवत् ॥ १८ ॥  
 धर्मनाशात्सुरेन्द्रस्य बलहानिरजायत ।  
 ज्ञात्वा हीनबलं शक्रं दानवास्तं समाद्रवन् ॥ १९ ॥  
 सोऽभिभूतोऽसुरैर्गाढं त्यक्त्वा राज्यं च देवराट् ।  
 बृहस्पतिमुपागम्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २० ॥  
 रक्तासुराभ्यनुज्ञाता दैत्याः कीदृसहस्रशः ।  
 आवाधन्ते स्म सर्वत्र मद्गर्धोर्यं न संशयः ॥ २१ ॥  
 न स्थानुमत्र शक्नोमि न गन्तुं तैस्त्वभिद्रुतः ।  
 सर्वथा योद्धुमिच्छामि यद्भाष्यं तद्भविष्यति ॥ २२ ॥  
 नश्यतो युध्यतो वाऽपि तावद्भवति जीवितम् ।  
 यावत्प्रमार्ष्टि च विधिर्भालेऽस्य लिखिताक्षरम् ॥ २३ ॥  
 जयमाशंस मे ब्रह्मन्योत्स्येऽहमरिभिः सह ।  
 मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न तु धूमार्पितं चिरम् ॥ २४ ॥  
 धिक्तस्य जीवितं पुंसः शत्रूणामाततायिनाम् ।  
 अपकर्तुमशक्तो यो जीवाभीत्यधिगच्छति ॥ २५ ॥  
 कर्मायत्तं किलैश्वर्यं भ्रमायत्तं च पौरुषम् ।  
 तस्माद्बुद्धं करिष्यामि ध्रुवं श्रेयो भविष्यति ॥ २६ ॥  
 श्रुत्वैवं मघवद्वाक्यं वाचस्पतिरथाब्रवीत् ।  
 न कालो विग्रहस्याद्य किं कोपेन शचीपते ॥ २७ ॥  
 न च र्वेदस्त्वया कार्यः कार्याणां गतिरीदृशी ।  
 दैवाद्भवन्ति भूतानां संपदो विपदोऽपि वा ॥ २८ ॥  
 स्वशक्तिं परशक्तिं च पाद्गुण्यविदुदारधीः ।  
 देशकालंबलोपेयाञ्ज्ञात्वा विग्रहमाचरेत् ॥ २९ ॥  
 देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।  
 क्रियमाणानि दुष्यन्ति हविरप्रयतेष्विव ॥ ३० ॥

१ ( क. ख. ग. घ. ) वेदाः पूज्यन्ते न च । २ ( क. ख. ग. ज. घ. ) ०धायाधुना विभो ॥ २१ ॥ ३ ( घ. ङ. च. ज. ) ०लवयोविद्वाऽशा० ।

सम्पन्विज्ञातशास्त्रार्थो राजा विजयमाचरेत् ।  
 सप्ताङ्गराज्यत्राणं च बुद्ध्वा वाऽरिविनिग्रहम् ॥ ३१ ॥  
 कुर्यादेवान्यथा नाशमुपयाति शचीपते ।  
 विश्वासयति भूतानि न च विश्वसते क्वचित् ॥ ३२ ॥  
 छिद्रेषु योऽन्वियाच्छत्रं स राज्यं महदश्रुते ।  
 सांप्रतं बद्धमूलोऽसौ त्वं दैवानवलोकितः ॥ ३३ ॥  
 अतो युद्धावकाशं ते न पश्यामि शतक्रतो ।  
 मत्सहायाश्च पे शूराः शक्तिमन्तो निरुत्सुकाः ॥ ३४ ॥  
 दुर्धर्षानपि ते शत्रूञ्जयन्त्येव सदा वृषाः ।  
 पुरोधसैवमुक्तस्तु पुनराह पुरंदरः ॥ ३५ ॥  
 अभिभूतो भृशं दैत्यैर्नाहं जीवितुमुत्सहे ।  
 शत्रुभिर्वर्तमानस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य च ॥ ३६ ॥  
 व्याधितस्य दरिद्रस्य श्रेयो मृत्युर्न जीवितम् ।  
 किमत्र बहुनोक्तेन योत्स्येऽहं दानवैः सह ॥ ३७ ॥  
 वृणां कर्मसमारम्भे श्रेयसी ह्येकचित्तता ।  
 गुणदोषावुभावेतावेकीकृत्य विचक्षणः ॥ ३८ ॥  
 कार्यमारभते यस्तु तस्य दोषाः पराङ्मुखाः ।  
 तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ॥ ३९ ॥  
 आगतं तु भयं दृष्ट्वा योद्धव्यं वाऽप्यभीरुवत् ।  
 मृतस्य जीवतो वाऽपि नरस्येह प्रमुध्यतः ॥ ४० ॥  
 श्रेय एव महद्भिः स्यात्तस्माद्योत्स्याम्यहं परैः ।  
 तयोः संवदतोरेवं ब्रह्माऽऽगत्पेदमब्रवीत् ॥ ४१ ॥  
 मा विपादं कृथाः शक्र शरणं ब्रज पार्वतीम् ।  
 या जग्ने महिषं दैत्यं रुरुं चित्रासुरं तथा ॥ ४२ ॥  
 सद्यो रक्तासुरं हत्वा स्वं राज्यं ते प्रदास्यति ।  
 एवमुक्त्वा हरिं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४३ ॥  
 शक्रोऽपि त्रिदशैः सार्धं जगाम हिमवद्गिरिम् ।  
 स तत्र गत्वा शर्वाणीं निर्भयो विगतज्वरः ॥ ४४ ॥

स्तोत्रेणानेन तुष्टाव शिवां शंकरवल्लभाम् ।

शक्र उवाच-जयाक्षरे जयानन्ते जयाव्यक्ते निरामये ॥ ४५ ॥

जय देवि महामाये जय त्रिदशवन्दिते ।

जय भद्रे विदेहस्थे जय्याऽऽद्ये त्रिगुणात्मिके ॥ ४६ ॥

जय विश्वंभरे गङ्गे जय सर्वार्थसिद्धिदे ।

जय ब्रह्माणि कौमारि जय नारायणीश्वरि ॥ ४७ ॥

जय वाराहि चामुण्डे जयेन्द्राणि महेश्वरि ।

जय मातर्महालक्ष्मि जय पार्वति सर्वगे ॥ ४८ ॥

जय देवि जगज्ज्येष्ठे जयैरावति भारति ।

मृगावति जयानन्ते तेजोवति जयामले ॥ ४९ ॥

जयेशानि शिवे सर्वे जय नित्ये जयाचिन्ते ।

मोक्षदे जय सर्वज्ञे जय धर्मार्थकामदे ॥ ५० ॥

जय गायत्रि कल्याणि जय संध्ये विभावरि ।

जय दुर्गे महाकालि शिवदूति जयाजये ॥ ५१ ॥

जय दण्डमहामुण्डे जय नन्दे शिवप्रिये ।

जय क्षेमकरि शिवे जय भ्रामणि रेवति ॥ ५२ ॥

जयोमे साध्वि मङ्गल्ये हरसिद्धे नमोऽस्तु ते ।

जयाऽऽनन्दे महावर्णे महिषासुरघातिनि ॥ ५३ ॥

जयानेवे विशालाक्षि जयानङ्गे सरस्वति ।

जयाशेषगुणावासे जय वृत्रासुरान्तके ॥ ५४ ॥

जय योगेशि संकल्पे जय त्रैलोक्यमुन्दरि ।

जय शुम्भनिशुम्भने जय पद्मेन्दुसंभवे ॥ ५५ ॥

जय कौशिकि कौमारि जय वारुणि कामदे ।

नमो नमस्ते शर्वाणि भूयो भूयो जयाम्बिके ॥ ५६ ॥

त्राहि नस्त्राहि नो देवि शरणागतवत्सले ।

य इमां कीर्तयिष्यन्ति जयमालां भवानि ते ॥ ५७ ॥

त्रिविधैरपि दुःखैर्विमुच्यन्ते परमेश्वरि ।

सर्वपापविनिर्मुक्ताः सर्वैश्वर्यसमन्विताः ॥ ५८ ॥

१ (घ ड च.) व्याजये जया २ (क ख ग झ) गच्छते । ३ (घ ड च ज) जये । साक्षदे । ४ (घ ड च ज) हरिसण ५ (घ ड च.) नन्दे विणे ६ (क ख ग ज झ.) वि शरण्ये शरणागतान् । य ।

भान्ति लोके तथाऽऽदित्याः सर्वरोगविवाञ्जिताः ।  
 देहावसाने तेऽवश्यं पश्यन्त्येव हि पार्वतीम् ॥ ५९ ॥  
 नेन्द्रियाणां विकलता यथाऽन्येषां भवेन्नृणाम् ।  
 देवीलोकं गमिष्यन्ति स्कन्दलोकोपरि स्थितम् ॥ ६० ॥  
 पुनरावृत्तिरहितं स्तोत्रजाप्यान्न संशयः ।

**मृत उवाच**—सर्वं स्तुता भगवती महेन्द्रेणाथ पार्वती ।

आत्मानं दर्शयामास सर्वालंकरणान्वितम् ॥ ६१ ॥

नमस्कृत्याथ तामूचुः सुरास्ते भयनाशनीम् ।

हत्वा रक्तासुरं दैत्यं पाहि नो महतो भयात् ॥ ६२ ॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा दत्त्वा तेष्योऽभयं ततः ।

बभूवादुतरूपा सा त्रिनेत्रा चन्द्रशेखरा ॥ ६३ ॥

सिंहाह्वया महादेवी नानाशस्त्रास्त्रधारिणी ।

सुवक्त्रा विंशतिमुजा स्फूर्जा विशुद्धतोपमा ॥ ६४ ॥

ततोऽग्निका ननादौर्ध्वैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ।

तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं जगत् ॥ ६५ ॥

प्रकम्पिताऽखिला चोर्वी तदा वारिधिमेखला ।

अलोलुङ्गस्तनी रम्या प्रमदेव भयातुरा ॥ ६६ ॥

तेऽपि तत्रासुराः प्राप्ताश्चतुरङ्गवलोत्कटाः ।

सम्यग्विदितवृत्तान्ताः कालान्तकयमोपमाः ॥ ६७ ॥

रक्षोदानवदैत्याश्च पातालेष्वपि ये स्थिताः ।

ते सर्वे एव दैत्येन्द्रं कीटिशस्तमुपागताः ॥ ६८ ॥

देवास्पस्तदा सर्वे संनद्धाश्चोच्छ्रितध्वजाः ।

पालिता दानवेन्द्रेण नानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥ ६९ ॥

तमालालिकुलाभासा जीमूतध्वनिनिःस्वनाः ।

युगान्तमिव कुर्वाणा नानालंकारभूषिताः ॥ ७० ॥

गजघण्टारवैश्चोर्ग्रैह्यानामथ हैपितैः ।

सिंहनादैश्च शूराणां शस्त्राणां कणितेन च ॥ ७१ ॥

रथनेमिनिनादैश्च कम्पयन्तो वसुंधराम् ।

ततस्ते दानवाः सर्वे देवीं दृष्ट्वा प्रहृषिताः ॥ ७२ ॥



भास्फोटयन्तः पटहान्भेरीजर्जरिणीमुखान् ।  
 अनेकान्वादयन्तोऽन्ये शङ्खमरुडिण्डिमान् ॥ ७३ ॥  
 मनोजवैर्हयैर्जात्यैर्गजैश्चांचलसंनिभैः ।  
 अन्यैर्विचित्रैराकृढा क्त्रिजुर्देत्यपुङ्गवाः ॥ ७४ ॥  
 एवंविधे समाजे तां भवानीं त्रिदशारयः ।  
 सर्वे एव समाजघ्नुः शर्वाणीं सर्वतोमुखीम् ॥ ७५ ॥  
 बाणैर्नानाविधैर्घोरैर्यमदण्डोपमैः सितैः ।  
 कुठारचक्रपरशुमुसलाङ्कुशलाङ्गलैः ॥ ७६ ॥  
 पाशतोमरशूलैश्च दण्डपट्टिशमुद्गरैः ।  
 परिघप्रासशक्त्यंष्ट्रिशतघ्नीकणपोपलैः ॥ ७७ ॥  
 आयोगुडैर्भृशुण्डीभिश्चक्रकुन्तगदादिभिः ।  
 छादयन्तो महादेवीं सिंहनादान्विनेदिरे ॥ ७८ ॥  
 सा हन्यमाना रोपेण जज्वाल समरेऽम्बिका ।  
 अग्रसत्साऽथ शर्वाणी शस्त्रास्त्राणि सुरद्विपाम् ॥ ७९ ॥  
 शैलेन्द्रतनया देवी स्तूयमाना सुरपिभिः ।  
 युयुधे दानवैः सार्धं महासमरदुर्दिने ॥ ८० ॥  
 तं हन्यमानाः पार्वत्या तामेवाभिप्रदुद्भुवुः ।  
 परिपूर्णे यथाकाले शलभा जातवेदसम् ॥ ८१ ॥  
 सैका प्रद्रवती तेषां बहूनामाततायिनाम् ।  
 दधार वेगं सर्वेषां मरुतामिव पर्वतः ॥ ८२ ॥  
 पार्वतीशस्त्रनिभिन्ना दैत्यास्ते क्षतजेक्षणाः ।  
 आलिङ्ग्य शरते क्षोणीं रते कान्तामिव प्रियाम् ॥ ८३ ॥  
 मण्डलीकृतकोदण्डां ददृशुश्चाम्बिकां तदा ।  
 मृत्युजिह्वोदिताकारां प्राणकर्षणतत्पराम् ॥ ८४ ॥  
 जघ्नुस्ते कोटिशो दैत्याः पार्वतीं समराङ्गणे ।  
 हुंकारेण निनादेन पातयन्ती सहस्रशः ॥ ८५ ॥  
 प्रचिच्छेद रणेऽरीणां शिरांसि निशितैः शरैः ।  
 देवीकार्मुकनिर्मुक्तौर्दिव्यैर्नानाविधैः शरैः ॥ ८६ ॥  
 दहन्तेऽमुरसैन्यानि तृणानीव दवाग्निना ।  
 सिंहवेगानिलोद्भूतांशूर्णयन्ती महारथान् ॥ ८७ ॥

ववर्ष शरवर्षाणि युगान्ताम्बुदसंनिभान् ।  
 गजवाजिरथानां च द्रवतां पततां तथा ॥ ८८ ॥  
 दैत्येन्द्राणां च भारेण श्वसतीव वसुंधरा ।  
 समुत्थितं रजो धोरं संस्पृष्ट्वाऽर्केन्दुमण्डलम् ॥ ८९ ॥  
 गजाश्वदैत्यरक्तौघैः प्रशान्तिमगमत्ततः ।  
 प्रावर्तत नदी तत्र शोणितोदतरङ्गिणी ॥ ९० ॥  
 हयमत्स्या गजग्राहा चर्मकूर्मास्थिसंकुला ।  
 महारथमहावर्ता पताकाछत्रफेनिला ॥ ९१ ॥  
 वहन्ती यमलोकान्तं दैत्यासुरत्तट्टुमान् ।  
 तद्गलं च वभौ शीघ्रं शस्त्रास्त्रक्षतकंधरम् ॥ ९२ ॥  
 गलद्गुधिरफेनौघं घूर्णितार्णवसंनिभम् ।  
 वधमानं स्वकं सैन्यं दृष्ट्वा देव्याश्च विक्रमम् ॥ ९३ ॥  
 रक्तासुरोऽभ्युवाचेदं सैनिकाञ्जातविस्मयः ।  
 हन्यतां हन्यतां शीघ्रं भवानी कालसंनिभा ॥ ९४ ॥  
 परिवृत्त्य रथैर्नागैर्हयैश्चैव पदातिभिः ।  
 दानवेश्वरवाक्पेन ततस्ते तस्य सैनिकाः ॥ ९५ ॥  
 त्यक्त्वाऽऽत्मानं महात्मानो देवीमापुर्वेलात्विताः ।  
 धूम्राक्षप्रमुखा धीराः पोडशैव महारथाः ॥ ९६ ॥  
 शरशक्तिगदागूलैस्ताडयन्तोऽम्बिकां रणे ।  
 श्वसन्त इव नागेन्द्राः प्रज्वलन्त इवाग्रयः ॥ ९७ ॥  
 जम्भन्त इव शार्दूला गर्जन्त इव तोषदाः ।  
 पुयुधुस्ते स्थिरीभूता विविधायुधयोधिनाः ॥ ९८ ॥  
 वृत्त्यन्तीव च रुद्राणी नूनं भाति महाहवे ।  
 पार्वती चण्डकोदण्डनादापूरितदिङ्गुखा ॥ ९९ ॥  
 पट्टिशामिहतान्कांश्चिन्मुसलोन्मथितांस्तथा ।  
 सारोहान्पातयामास गजानश्वान्श्च कोटिशः ॥ १०० ॥  
 कालपाशशिरशिच्छत्वा सार्धचन्द्रेण भासुरम् ।  
 गदया प्रममाथाऽऽशु देवान्तकमहाहनुम् ॥ १०१ ॥

ब्रह्मघ्नस्यासिना कायात्पातयामांस चाम्बिका ।  
 धूम्राक्षं कालदण्डेन वज्रेण क्रूरमेव च ॥ १०२ ॥ .  
 यज्ञदंष्ट्रं यज्ञकोपं विधर्मं च चमूपतिम् ।  
 रौद्रानन्यांस्त्रिशूलेन जवान परमेश्वरी ॥ १०३ ॥  
 संशङ्कुकर्णदुर्भिक्षविद्युन्मालिविभावसून् ।  
 दुर्वारपौरुषांश्चक्रे चक्रेणोत्कृतमस्तकान् ॥ १०४ ॥  
 रक्तासुरानुजौ चाम्बौ महाबलपराक्रमौ ।  
 कूष्माण्डशुभकाक्षौ तु जघ्नतुमुंशलाश्मभिः ॥ १०५ ॥  
 महाबलौ महाकायौ घोरौ तत्र महासुरौ ।  
 शरैराशीविपाकारैर्जघानाथ तदा द्विजाः ॥ १०६ ॥  
 ततः स्त्रीभ्रोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा तौ विनिपातितौ ।  
 तमप्यपातयद्भूमौ खड्गेनाभिहर्तं रुपा ॥ १०७ ॥  
 घण्टकश्चाथ दैत्येन्द्रो गिरीन्द्रसदृशो बली ।  
 परिघेणाऽऽपसेनाऽऽजौ देवीं क्रुद्धोऽभ्यताडयत् ॥ १०८ ॥  
 ततः सपरिघश्चासौ देव्याः करतलाहतः ।  
 स पपात तदा भूमौ वज्राहत इवाचलः ॥ १०९ ॥  
 प्रापश्चिको महाबाहुश्चक्रीकृतशरासनः ।  
 शक्त्या दग्धतनुत्राणो जगामान्तकमन्दिरम् ॥ ११० ॥  
 अष्टादशैव दुर्धर्पांश्चिहत्यासुरसैनिकान् ।  
 सानन्दा विननादोच्चैः संवर्तकघनोपमा ॥ १११ ॥  
 जघानं दानवानीकमेकाऽनेकस्वरूपिणी ।  
 विद्युत्संपातनिहादा विद्युत्संपातचञ्चला ॥ ११२ ॥  
 पातयन्ती चचाराऽऽजौ साऽसुरेन्द्रमहाचमूम् ।  
 तत्रातुल्यश्च तुमुलो नादो वाध्येषु शत्रुषु ॥ ११३ ॥  
 बभूव येन ब्रह्माण्डमकाण्डाकुलतां ययौ ।  
 जघानैवं चतुःसप्त त्रिदशैस्त्रिदशद्विषाम् ॥ ११४ ॥  
 अक्षौहिणीसहस्राणि त्रयस्त्रिंशत्सुरेश्वरी ।  
 एकत्रिंशत्सहस्राणि शतान्यष्टौ च सप्ततिः ॥ ११५ ॥  
 सानुगानां सपोधानां स्थानां वातरंहसाम् ।  
 संख्यैवैवा गजेन्द्राणामक्षौहिण्यां महौजसाम् ॥ ११६ ॥

- त्रिगुणं चतुरङ्गाणं पञ्च चैव पदातिनाम् ।  
 कंचिद्रथस्थिता सैव विविधायुधधारिणी ॥ ११७ ॥  
 जघानामुरसैन्यानि हयहस्तिमता क्वचित् ।  
 क्वचिच्च महिषारूढा वृषभे च स्थिता क्वचित् ॥ ११८ ॥  
 वेतालैः प्रेतभूतैश्च स्वेच्छासृष्टैर्वृताऽद्भुतैः ॥ ११९ ॥  
 कबन्धवृत्त्यसंकुले ह्यसृग्वसास्थिकर्दमे  
 रणाजिरे निशाचरास्ततो विरेजुर्हजिताः ।  
 शृगालग्रधवापसाः परं प्रपानमादधुः  
 क्वचित्परेतगावकाः प्रतीतशोणिता बभुः ॥ १२० ॥  
 क्वचित्पिनाकपाणयः पिशाचयक्षराक्षसाः  
 प्रतर्प्य चासृजा पितृन्समर्चयन्नथाऽऽमिषैः ।  
 गजाभरांस्तुरङ्गमान्प्रभक्षयन्ति निर्वृणा-  
 स्तदोडुपैस्तथाऽपरे तरन्ति ओणितापगाम् ॥ १२१ ॥  
 इति प्रगाढसंगरे सुरारिसंघसंकुले-  
 विराजतेऽम्बिका धनुःशरासिशूलधारिणी ।  
 गजेन्द्रवृन्दमदिनी तुरङ्गपथपोधिनी  
 महारथौघघातिनी सुरारिसैन्यनाशनी ॥ १२२ ॥  
 ततश्चण्डिकाचण्डकोदण्डमुक्तौर्दिवाहारिणां कोटयोऽष्टौ तथाऽष्टौ ।  
 हताः पट्टिशै राक्षसानां च लक्षास्यपत्तिशदष्टादशैवात्र कोव्यः ॥ १२३ ॥  
 ततो दानवेन्द्रं रणे तर्जयन्ती विलासोल्लसद्गाहुविन्यस्तशस्त्रा ।  
 ननताप्रमेयप्रभावा भवानी महेन्द्रादिदेवान्मुदा हर्षयन्ती ॥ १२४ ॥  
 हयप्रविमुख्याः पुनर्दत्यसंघा दशैवावशिष्टा महारौद्ररूपाः ।  
 नमस्कृत्य रक्तासुरं तेऽभ्यधावन्नरणे पार्वतीं ताडयन्तोऽस्रपूगैः ॥ १२५ ॥  
 समुद्धृत्य नेत्राणि किंचिद्भसन्ती द्विपत्सैन्यसंघानि सा संहरन्वी ।  
 न्यमुञ्चत्ततोऽद्याणि दिव्यानि देवी नदन्सार्पतूर्पेषु खेऽनन्तसत्त्वा ॥ १२६ ॥  
 ततो गिरीन्द्रजाऽरीणां चक्रे सैन्यानि भस्मसात् ।  
 रक्तासुरमथाभ्येत्य शस्त्राद्यधृतपाणिनम् ॥ १२७ ॥  
 पादाकान्त्यानतभुवं संक्षोभितजगन्नयम् ।  
 मण्डलीकृतकोदण्डं भर्जन्तं कालभेद्यवत् ॥ १२८ ॥  
 शरवर्षाणि मुञ्चन्तं पार्वती तमुवाच ह ।

दुष्टेत्युक्त्वाऽथ सा देवी शूलेनभिनन्दति ।  
 संभिन्नहृदयो दैत्यो मूर्तिं चक्रे मुदारुणाम् ॥ १३० ॥  
 रक्तविन्दुसमो दैत्यो देवीं व्यामोहयन्निव ।  
 जगामानेकरूपोऽसौ निहतोऽम्बिकया रणे ॥ १३१ ॥  
 रक्तासुरोऽपि निधनं गत्वा त्रिदशकण्टकः ।  
 पपात मुनिशार्दूलाः प्रज्वलज्ज्वलनोपमः ॥ १३२ ॥  
 हाहाकारं प्रकुर्वाणा दैत्यास्तेऽथ प्रदुह्वुः ।  
 केचिच्छिष्टा भयत्रस्ता विसृष्टायुधजीविताः ॥ १३३ ॥  
 केचित्समुद्रं विविथुरद्रीकेचिच्च दानवाः ।  
 केचिल्लुञ्चितमूर्धानो नग्रा भृत्वा वनेऽवसन् ॥ १३४ ॥  
 दयाधर्मं ब्रुवाणाश्च निर्भ्रन्ध्रतमाश्रिताः ।  
 केचित्प्राणपरा भीताः पाखण्डव्रतमाश्रिताः ॥ १३५ ॥  
 हेतुवादपरा मूढा निःशौचा निरपेक्षकाः ।  
 आसुरस्य जनस्थैते क्षपणा इव लक्षिताः ॥ १३६ ॥  
 ते चाद्यापीह दृश्यन्ते लोके क्षपणकाः किल ।  
 अर्हन्तश्च तथैवान्ये शिवशास्त्रवहिष्कृताः ॥ १३७ ॥  
 मन्त्रौषधप्रयोगैश्च जनवञ्चनकारकाः ।  
 समुत्पत्स्यन्ति दैत्याश्च घोरेऽस्मिन्वै कलौ युगे ॥ १३८ ॥  
 शिवोक्तं कर्मयोगं च द्विपन्तश्च कुयुक्तिभिः ।  
 देव्याः क्रोधाग्निना दग्धा वेदमार्गविनिन्दकाः ॥ १३९ ॥  
 शास्यन्ते नरकाग्नौ ते निःशेषाः पापकर्मिणः ।  
 न दृष्टा निष्कृतिस्तेषां शास्त्रेषु परमर्षिभिः ॥ १४० ॥  
 रराजाचिन्त्यमाहात्म्या चिद्रूपा परमेश्वरी ।  
 हत्वाऽरिं जगदैश्वर्यं दत्त्वा नमुचिशत्रवे ॥ १४१ ॥  
 जगामादर्शनं देवी व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।  
 \*शक्रोऽपि तां प्रणम्याथ सर्वज्ञां विश्वरूपिणीम् ॥ १४२ ॥

\* कथसहितपुरतस्त्रयोऽरिद श्लोकार्थं न दृश्यते ।

प्रययौ विभुवैः सार्धं स्वां पुरीममरावतीम् ॥ १४३ ॥ २७३७ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरै स्तशौनकसंवादे रक्तासुर-  
वधकथनं नामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

**मृत उवाच**-अथोपविश्य सुरैराद् पूज्यमानो वरासने ।

अप्सरोगणगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ॥ १ ॥

सहस्रानुचराणां च देवतानां महौजसाम् ।

निर्जरानां त्रयस्त्रिंशत्कोटिभिः परिवारितः ॥ २ ॥

सोऽभिपिक्तस्तदा सर्वैर्वृहस्पतिपुरोगमैः ।

त्रैलोक्येऽस्मिन्पुनः शक्रश्चक्रे राज्यमकण्ठकम् ॥ ३ ॥

समाजग्मुस्तदा द्रष्टुं प्राप्तराज्यं सुराधिपम् ।

मुनयश्चाङ्गिरा दक्षवसिष्ठक्रतुगौतमाः ॥ ४ ॥

पुलस्त्यपुलहागस्त्यविश्वामित्रात्रिशौनकाः ।

जमदग्निभरद्वाजभृगुभागुरिगालवाः ॥ ५ ॥

ऋभुः शाण्डिल्यदुर्वासोगर्जैमिनिनारदाः ।

दात्युहोदालवाभ्रव्यशरभङ्गनिशाकराः ॥ ६ ॥

मरीचिच्यवनोत्तङ्ककात्यायनपराशरीः ।

संवर्तशङ्खलिखितदेवभागभुपेणकाः ॥ ७ ॥

त्रितरैभ्ययवक्रीतश्वेतकेतूपमन्यवः ।

शाकटायनकौण्डिन्यकचयुंत्समदासिताः ॥ ८ ॥

देवरातश्च जावालिर्हारीतश्चैव कश्यपः ।

वृहदश्वाम्बिकौतथ्या जातूकर्ण्यः पराशरः ॥ ९ ॥

\*पैठीनसिर्षाप्रपादो वीतिहोत्राचलापनौ ।

शातातपो मधुच्छन्दा ऋचीकक्रतुदेवलाः ॥ १० ॥

वामदेवश्च मैत्रेयमार्कण्डेयपुरोगमाः ।

ऋष्णाजिनोत्तरीयास्ते जटिला भस्मभूषिताः ॥

रुद्रा इव महात्मानो वेदवेदाङ्गपारगाः ।

तानागतान्मुसंपूज्य कृत्वासनपरिग्रहान् ॥ १२ ॥

\* षडचक्रसहितादर्शपुस्तकेऽन्य धोको न विद्यते ।

ब्रह्मकल्पात्तृपीन्सर्वान्प्रच्छेदं पुरंदरः ।  
 कथमाराध्यते देवीं वरदाऽचलकन्यका ॥ १३ ॥  
 ते धन्यास्ते क्रतार्थास्ते यैः सम्यक्पूजिता शिवा ।  
 यस्याः प्रसादाद्भूयोऽपि राज्यं प्राप्तमिदं मया ॥ १४ ॥  
 भवान्याः सर्वमेवैतद्ब्रह्ममर्हथ सत्तमाः ।  
 ते चैवमुक्ताः शक्रेण मुनयो मुनिपुङ्गवाः ॥ १५ ॥  
 प्रत्यूचुस्तां नमस्कृत्य शर्वाणीं शिवरूपिणीम् ।  
 ते धन्यास्ते क्रतार्थाश्च साधवस्ते शचीपते ॥ १६ ॥  
 भक्त्या यजन्ति ये नित्यं पार्वतीं परमेश्वरीम् ।  
 कुर्वन्तोऽपीह कर्माणि चण्डिकार्पितमानसाः ॥ १७ ॥  
 सूर्याश्व इव जालैर्न बाध्यन्तेऽत्र किल्बिषैः ।  
 आयुरारोग्यसौख्यानि सौभाग्यं च वरस्त्रियः ॥ १८ ॥  
 भवन्ति तेषां ये नित्यं स्तुवन्ति परमेश्वरीम् ।  
 संवत्सरास्तथा मासा विफला दिवसाश्च ते ॥ १९ ॥  
 नराणां विषयान्धानां येषां गेहे न पार्वती ।  
 यत्र यत्रार्च्यते देवी वरदा परमेश्वरी ॥ २० ॥  
 तत्र तत्राक्षयं पुण्यं स्यादित्याह प्रजापतिः ।  
 नामोच्चारणमात्रेण यस्याः क्षीणाघसंचयः ॥ २१ ॥  
 भवेत्यवाप्तकल्याणः कस्तं नाऽऽराधयेच्छिवाम् ।  
 पथुभिस्त्वहं तुल्यास्ते मृदैर्वा ते शवा इव ॥ २२ ॥  
 ये मृदां नार्चयन्त्यायां पार्वतीं परमेश्वरीम् ।  
 अचिन्त्यां संस्वरूपां तां शाश्वतीं विश्वतोमुखीम् ॥ २३ ॥  
 ये यजन्तीह धन्यास्ते शिवां स्वर्गापवर्गदाम् ।  
 तपस्तीर्थप्रदानैश्च यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः ॥ २४ ॥  
 न तां गार्तिं लभन्तेऽत्र यां स्तुत्वाऽचलकन्यकाम् ।  
 सर्वान्कामानवाप्नोति यान्यानिच्छति मानवः ॥ २५ ॥  
 व्रतोपवासपूजाभिः समाराध्य महेश्वरीम् ।  
 व्रतेन येन देवेन्द्र प्रसीदत्याशु पार्वती ॥ २६ ॥

१ ( क. ख. ग. घ. ) ०शी विभक्त्या २ ( क. ख. ग. घ. ङ. ज. झ. ) इराजाण ३ ( क. ख. ग. घ. ) ०धयाः ॥ २१ ॥ ४ ( क. ख. ग. घ. ) भगवन्वापकल्याणः पण ५ ( क. ख. घ. ज. ) ते शिवा । ६ ( घ. ट. य. र. ) ०ह ते धन्याः शिवा

यच्चोल्लोकानवमीसंज्ञं शृणु सर्वफलप्रदम् ।  
 तस्यां नवम्यां शर्वाणी महिषादीन्महासुरान् ॥ २७ ॥  
 जघान समरे शक्र तेन सा नवमी प्रिया ।  
 अश्वयुक्शुक्लपक्षस्य नवम्यां प्रपत्तात्मवान् ॥ २८ ॥  
 स्नात्वाऽभ्यर्च्य पितृन्देवान्मनुष्यांश्च यथाक्रमम् ।  
 यजेत्पश्चान्महादेवीं महिषासुरघातिनीम् ॥ २९ ॥  
 पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैः पयोदधिकलादिभिः ।  
 भक्त्या संपूजयित्वा स्तुत्वा संप्रार्थयेत्ततः ॥ ३० ॥  
 मन्त्रेणानेन वृत्रारे श्रद्धावान्प्रयतो व्रती ।  
 महिषमि महामाये चामुण्डे मुण्डघातिनि ॥ ३१ ॥  
 द्रव्यमारोग्यविजयं देहि देवि नमोऽस्तु ते ।  
 भूतप्रेतपिशाचेभ्यो रक्षोभ्यश्च महेश्वरि ॥ ३२ ॥  
 देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च भयेभ्यो रक्ष मां सदा ।  
 सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥ ३३ ॥  
 उमे ब्रह्माणि कौमारि विश्वरूपे प्रसीद मे ।  
 कुमारीर्भोजयित्वा वा कुर्यादाच्छादनादिभिः ॥ ३४ ॥  
 यथावर्णं कुमारीश्च भोजयित्वा क्षमापयेत् ।  
 नव सप्तथ एकां वा चित्तवित्तानुसारतः ॥ ३५ ॥  
 श्रद्धया प्रीतिमाप्नोति देवी भगवती शिवा ।  
 अनेन विधिना वर्षं मासि मासि समाचरेत् ॥ ३६ ॥  
 ततः संवत्सरस्यान्ते भोजयित्वा कुमारिकाः ।  
 वस्त्रैराभरणैः पूज्याः प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ ३७ ॥  
 सरुक्मगृह्णां गां दद्यात्सुविप्राय सुशोभनाम् ।  
 नरो वा यदि वा नारी व्रतमेतत्करोति च ॥ ३८ ॥  
 उल्कावत्सा सपत्नीनां तेजसा भाति भूतले ।  
 श्रीमहानवमीत्येषा ख्याता सुरपतेऽधुना ॥ ३९ ॥

\* घडचसशित्तपुस्तकेष्वर्थं भ्रूको न विद्यते ।



सवासाद्धकरा पुण्या सर्वोपद्रवनीशिनी ।  
 नाऽऽध्यात्मिकं तस्य भयं देवं स्यान्नाऽऽधिभौतिकम् ॥४० ॥  
 रक्षत्येव सदा शक्र सर्वापत्सु च चण्डिका ।  
 शान्तिपुष्टिकरी<sup>१</sup> पुण्या पुत्रारोम्यार्थलाभदा ॥  
 अनुष्ठेया सदा पुंभिश्चतुर्वर्गफलार्थिभिः ॥ ४१ ॥  
 यश्छन्नाऽपि कुरुते व्रतमेतदित्यं  
 चण्डीप्रियं सुरपते मुनिसिद्धजुष्टम् ।  
 रुद्राङ्गनाकुलवराकुलितं विमानमारुह्य  
 याति स सुखेन शिवस्य लोकम् ॥ ४२ ॥  
 शूलाग्रभिन्नमहिपासुरपादपीठा-  
 मुत्खातखङ्गरुचिराङ्गदबाहुदण्डाम् ।  
 येऽभ्यर्चयन्ति हि तु नक्तभुजो नवम्यां  
 दुर्गातिदुर्गगहनं न विशन्ति मर्त्याः ॥ ४३ ॥  
 अन्येचदाह कपिलो भगवान्महात्मा  
 मेरो च दैत्यगुरवे भृगुनन्दनाय ।  
 तत्त्वं शृणुष्व सुभना मघवन्महान्त-  
 माराधनं कियदपि त्रिजगज्जनन्याः ॥४४ ॥  
 या कामधेनुसदृशी किल भक्तिभाजां  
 या कल्पपादपसमा सुकृतार्थिनां च ।  
 चिन्तामणीत्यवगता धनलिप्सुभिर्वा  
 कस्मान्न तां भृगुमुतात्र यजन्ति गौरीम् ॥ ४५ ॥  
 ये तां स्मरन्ति निगडैरपि चन्द्रपादा  
 व्याघ्राहिचौरदृपवह्निर्भयेषु दुर्गाम् ।  
 तेषां न किञ्चिदपि शत्रुभयं दृणां स्या-  
 द्भद्रास्तु मुक्तिमुपलभ्य सुखं लभन्ते ॥ ४६ ॥  
 हे भार्गवार्थ गिरिजाप्रणतिप्रसादे  
 देवं निरुद्धमपि न प्रभवत्पचश्यम् ।  
 आसन्नमेघसमयां वनरांजिमुच्चै-  
 श्रौण्मोऽपि पल्लवचयोपचितानं करोति ॥ ४७ ॥

धान्ना स्यहस्तलिखितानि ललाटपट्टे  
 दैवाक्षराणि दुरितैकनिबन्धनानि ।  
 गौरीप्रसादजनितेन जनः समस्त-  
 स्तान्येकतः स परिमार्जयतीति चित्रम् ॥ ४८ ॥  
 ते संमता जनपदेषु धनानि तेषां  
 तेषां यशांसि न च सीदति वन्धुवर्गः ।  
 धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा  
 येषां सदाऽभ्युदयदा गिरिजा प्रसन्ना ॥ ४९ ॥  
 यः कारयेद्धरपताकसिताभ्रगौरं  
 तद्रोपुरं च सुधयाऽऽयतनं भवान्याः ।  
 चन्द्रावदातभवने विपुले च सौख्यं  
 राज्यं श्रियं च भुवि काममुपैति सत्यम् ॥ ५० ॥  
 ये कारयन्ति भवनं भृगुनन्दनोऽऽर्याः  
 शक्त्या सुवर्णरजतायसताम्रशैलम् ।  
 सामन्तमौलिमणिरश्मिसमुज्ज्वले ते  
 सिंहासनेऽङ्गदकिरीटभृता रमन्ते ॥ ५१ ॥  
 ये मेरुमूर्ध्नि सुरसंघक्रताभिषेकां  
 पञ्चामृतैर्गिरिसुतामभिषेवयन्ति ।  
 ते दिव्यकल्पमनुभूय सुरेन्द्रराज्यं  
 राज्याभिषेकमतुलं पुनरामुवन्ति ॥ ५२ ॥  
 ये देवदारुमलयोद्भवचन्दनेन  
 ये कुङ्कुमेन च शिवामुपलेपयन्ति ।  
 ते दिव्यगन्धपट्टवाससुगन्धदेहा  
 नन्दन्ति नन्दनवनेषु सहाप्सरोभिः ॥ ५३ ॥  
 दिव्यैश्च पद्मकरवीरकजातिपुष्पै-  
 गौरां शुभैरनुदिनं ननु येऽर्चयन्ति ।  
 ते भूतले नरपतित्वमवाप्य योगा-  
 चास्पन्ति सौख्यमचिरेण परां च सिद्धिम् ॥ ५४ ॥  
 आमोदिभिर्मरुकपुष्पमुगन्धधूपैर्धूपै-  
 लोकनाथदपितामिह धूपयन्ति । 756

कपूरसारसमगन्धवराः सुरामा  
 आलिङ्गयन्ति दयिताः सुरराजलोके ॥ ५५ ॥  
 दोषूयते कनकदण्डविराजितैश्च  
 सचामरैः प्रचलकुण्डलमुन्दरीभिः ।  
 दिव्याम्बरस्त्रगनुलेपनभूषिताङ्गः  
 कृत्वा मृदानिभवने वरवस्त्रपूजाम् ॥ ५६ ॥  
 देदीप्यते स कनकोज्ज्वलपद्मराग-  
 रत्नप्रभाभरणहेममये विमाने ।  
 दिव्याङ्गनापरिवृतो मनसोऽभिरामः  
 प्रज्वाल्य दीपममलं भवने भवान्याः ॥ ५७ ॥  
 यो जागरं गिरिसुताभवने ददाति  
 चैत्रोत्सवादिदिवसेऽभ्यधि तूर्यनादम् ।  
 वीणामृदङ्गमधुरस्वरभाषिणीभिः  
 संगीयते स हि कृशोदरिकिनरीभिः ॥ ५८ ॥  
 कुर्वन्ति ये सदुपलेपनवासचित्रं  
 संमार्जनं गिरिसुतायतनेऽनुरक्ताः ।  
 मुक्ताकलापमणिकाश्चनभित्तिचित्रै-  
 र्वैदूर्यकुट्टिमत्तले भवने वसन्ति ॥ ५९ ॥  
 दद्याच्च यः परमभक्तियुतो भवान्या  
 घण्टावितानमथ चामरमातपत्रम् ।  
 केयूरहारमणिंकुण्डलमण्डितोऽसौ  
 रत्नाधिपो भवति भूतलचक्रवर्ती ॥ ६० ॥  
 अभ्यर्चयन्ति विधिवद्विधिक्षोपचारै-  
 र्गन्धर्वसिद्धविद्युंधस्तुतपादपद्माम् ।  
 भक्त्या प्रहृष्टमनसः प्रणमन्ति देवीं  
 ते भूर्भुवःस्वमहिमार्तफला (?) भवन्ति ॥ ६१ ॥  
 गापन्ति ये गिरिसुतां च विलोकयन्ति  
 ध्यायन्ति वाऽमलधियश्च शिवां स्मरन्ति ।  
 गौरीमुमां भगवतीं जगदेकदेवीं  
 ते ये प्रयान्ति परमं पदमिन्दुमौलेः ॥ ६२ ॥

देवीं समस्तभुवनादिविचित्रदेहां  
सूर्याग्निचन्द्रनयनामिह कालवक्त्राम् ।  
दीर्घाष्टदिग्भुजचयां मृदुभावहासां  
येऽभ्यर्चयन्ति हृदि हन्त त एव धन्याः ॥ ६३ ॥

इक्ष्वाकुपूरुप्रथुराघवधुन्धुमार-  
मांधानृहैहयषयात्यजमीढमुख्यैः ।

आरोग्यसंततिधराजयसौरुपलुब्धैः  
संपूजिता भगवती मनुजैर्भवानी ॥ ६४ ॥

योगेश्वरीं वेदवतीं भवानीं ब्राह्मीं कुमारीं सुभगां च वाणीम् ।  
नारायणीं हैमवतीमनन्तां विश्वादिभूतां भज भार्गवाऽऽर्याम् ॥ ६५ ॥  
यशांसि विद्याः सुखमर्थमायुर्विभूतयः पुष्टिरनर्थहानिः ।  
तद्भक्तिभार्जा भविनां विमुक्तये भवन्ति योगानुगताः समाधयः ॥ ६६ ॥

नीचोऽपि मन्दमतिरल्पकुलोद्भवोऽपि  
भीरुः शंठोऽपि चपलोऽपि निरुद्यमोऽपि ।

गौरीपदाब्जयजनार्थमिहोद्यतश्च  
संदश्यते ननु सुरैरपि गौरवेण ॥ ६७ ॥

तावत्कृताकृतमपि प्रतिघातयेति  
कर्माजितेन विधिनाऽपि कृतोद्यमेन ।

आपांपदाम्बुजरजो विरजः प्रणम्य  
यावन्न वत्स शिरसा ध्रियते जनेन ॥ ६८ ॥

विद्या तपः कुलजनिर्विविधं च शिल्पं  
शौचं मतिश्च विनयस्तु विदग्धतां च ।

एते गुणा गुणवतां परमे च भद्रा  
गौरीप्रसादरहितस्यं नृणीभवन्ति ॥ ६९ ॥

तावन्न सिध्यति रसो न रसायनानि  
मन्त्रा महोदयफन्दा विलसत्प्रवादाः ।

क्लिश्यन्ति साधकजना भुवि वर्तिकाश्च  
यावन्न तुष्यति कवे वरदा भवानी ॥ ७० ॥

गोब्राह्मणार्चनपराश्व रताः स्वधर्मे

ये मद्यमांसविमुखाः शुचयश्च शैवाः ।

सत्यप्रियाः सकलभूतहिते रताश्च

तेषां च तुष्यति सदा सुमते मृडानी ॥ ७१ ॥

भूतादिभूतां विषयेन्द्रियाणां परां तथाऽन्तःकरणात्मरूपाम् ।

सदाऽक्षयां कायमनोवचोभिः संचिन्तयाऽऽर्यां सकलार्थदात्रीम् ॥ ७२ ॥

अजामेकां लोहितशृङ्खवर्णां बह्वीः प्रजाः सृज्यमानां सुरुपाम् ।

अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ ७३ ॥

प्रभावमेतं त्रिजगज्जनन्यास्तवोदितं भार्गव वेदगुह्यम् ।

श्रोतुं यदिच्छा तद्बुदीरयस्व विप्रेषु किं वाऽकथनीयमस्ति ॥ ७४ ॥

शृण्वन्ति ये वाऽथ पठन्ति मर्त्याः स्तवान्विताख्यानमिदं भवान्याः ।

भुक्त्वाऽक्षयान्कामसुखांश्च तेऽत्र प्रयान्ति शंभोः परमं पदं च ॥ ७५ ॥

**मूत उवाच**—एवं मुनीनां गदितं भवान्याश्चरितं शुभम् ।

श्रुत्वा पुरंदरः श्रीमान्भक्त्या परमया द्विजाः ॥ ७६ ॥

आराधयामास तदा पार्वतीं परमेश्वरीम् ।

वरांश्च विविधाह्लैब्ध्वा चक्रे राज्यमकण्ठकम् ॥ ७७ ॥ २८१४ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे पार्वती-

प्रभावकथनं नाम पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥

**ऋषय ऊचुः**—तिथीनां निर्णयं सूत प्रायश्चित्तविधिं तथा ।

वक्तुमर्हसि चास्माकं व्यासशिष्य महामते ॥ १ ॥

**मूत उवाच**—शृणुध्वमृषयः सर्वे तिथीनां निर्णयं परम् ।

अनिर्णीतासु तिथिषु न किञ्चित्कर्म सिध्यति ॥ २ ॥

श्रौतं स्मार्तं व्रतं दानं यच्चान्यत्कर्म वैदिकम् ।

निर्णीतासु तिथिष्वेव कर्म कुर्वीत नान्यथा ॥ ३ ॥

प्रायः प्रान्तमुपोष्यं स्यात्तिथेर्देवफलेषुभिः ।

मूलं हि पिबृतुद्वयं पित्र्यं चोक्तं महर्षिभिः ॥ ४ ॥

यां प्राप्यास्तमुपेत्यर्कः सा चेत्स्यान्निमुहूर्तिका ।

धर्मकृत्येषु सर्वेषु संपूर्णां तां विदुस्तिथिम् ॥ ५ ॥

क्षये पूर्वा भक्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ।

तिथेस्तस्यात्त्रिंशत्तयाः क्षयवृद्धित्वकारणम् ॥ ६ ॥

१ ( क. ख. ग. घ. ) ये प्राण २ ( क. ख. ग. घ. ) परिस्ताः पुण ३ ( क. घ ) श्याती  
रेव ४ ( द. ) तिथी । पण

अष्टम्येकादशी पृथ्वी तृतीया च चतुर्दशी ।  
 कर्तव्याः परसंयुक्ता अपराः पूर्वमिश्रिताः ॥ ७ ॥  
 \*वृहत्तल्पा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी ।  
 कृष्णाष्टमी च भूता च कर्तव्या संमुखी तिथिः ॥ ८ ॥  
 शुक्ले द्वे द्वे तथा कृष्णे युगादी कवयो विदुः ।  
 शुक्ले पूर्वाह्निके कार्ये कृष्णे चैवापराह्निके ॥ ९ ॥  
 नामविद्धा तु या पृथ्वी शिवविद्धा तु सप्तमी ।  
 दशम्येकादशीविद्धा नोपोष्यैव कथंचन ॥ १० ॥  
 ज्ञात्वैवं सूर्यचन्द्राम्भ्यां तिथिं स्फुटतरं व्रती ।  
 एकादशीं तृतीयां च पृथ्वीं चोपवसेत्सदा ॥ ११ ॥  
 फलमेकादशी हन्ति विहितं दशमीयुक्ता ।  
 पार्ष्णं तु त्रयोदश्यामुल्लङ्घ्य द्वादशीव्रतम् ॥ १२ ॥  
 पारणाहे न लभ्येत द्वादशी सकलाऽपि चेत् ।  
 तदानीं दशमीविद्धा ह्युपोष्यैकादशी तिथिः ॥ १३ ॥  
 शुक्ले वा यदि वा कृष्णे भवेदेकादशीद्वयम् ।  
 उत्तरां तु यतिः कुर्यात्पूर्वामिव सदाऽथही ॥ १४ ॥  
 दर्शं च पौर्णमासं च सप्तमीं पितृवासरम् ।  
 पूर्वविद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥ १५ ॥  
 सिनीवाली द्विजैर्ग्राह्या साग्निर्कैः श्राद्धकर्मणि ।  
 कर्द्वैः स्त्रीभिस्तथा शूद्रैरपि चान्यैरनाग्निर्कैः ॥ १६ ॥  
 पारणे भरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।  
 निशाव्रतेषु च ग्राह्या प्रदोषव्यापिनी सदा ॥ १७ ॥  
 उपोषितव्यं नक्षत्रं पेनास्तं याति भास्करः ।  
 यच्च वा युज्यते विषाः प्रदोषे हिमरश्मिना ॥ १८ ॥  
 अर्वाक्पोढश नाट्येस्तु परतथैव षोडश ।  
 पुष्पकान्त्रोऽर्कसंक्रान्तौ स्नानदानजपादिषु ॥ १९ ॥

\* यमत्रिनपुमनर एष भेषो नास्ति ।

१ ( क. रा. ग. झ. ) षड्भुजा तम २ ( क. रा. ग. झ. ) द्वे शुक्ले द्वे तम ३ ( क. रा. ग. झ. ) षडसं वम ४ ( रा. ) षण्णा तु ५ ( य. झ. य. ज. ) षण्ण य प्र ६ ( क. रा. ग. झ. ) षण्मा च ७ ( क. रा. ग. झ. ) षुः नृदेव्या शोभित ८ ( य. झ. य. ) ष्वी तिथि ९ १० ॥ ९ ( ग. ) षण्ण य पण १० ( क. रा. ग. झ. ) षण्णैः शोभ ११

आसन्नसंक्रमं पुष्यं दिनार्धं स्नानदानयोः ।  
 रात्रौ संक्रमणे भानोर्विषुवत्ययने दिने ॥ २० ॥  
 सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम् ।  
 न स्वप्यान्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः ॥ २१ ॥  
 आदित्यशीतकिरणौ ग्रस्तावस्तं गतौ यदा ।  
 दृष्ट्वा तदाऽन्यदिवसे स्नात्वा भुञ्जीत वाग्यतः ॥ २२ ॥  
 सूतके मृतके वाऽपि नोपवासं त्यजेद्धृती ।  
 यस्माद्ग्रत्रतोऽतीव गर्हितो वेदवादिभिः ॥ २३ ॥  
 तस्मात्प्रमादद्दुःखे वा सूतके व्यसनेऽपि च ।  
 स्नात्वा कार्यं व्रतं विप्रा अन्यथा व्रतलोपभाक् ॥ २४ ॥  
 देवार्चनादिकं कर्म कार्यं दीक्षान्वितैः सदा ।  
 नास्तिं शावं यतस्तेषां सूतकं च यदात्मनाम् ॥ २५ ॥  
 शिवे देवार्चनं यस्य यस्य वाऽग्निपरिग्रहः ।  
 ब्रह्मचारियतीर्ना च शरीरे नास्ति सूतकम् ॥ २६ ॥  
 महच्छब्दप्रयुक्ता या या च सोपपदा तिथिः ।  
 साऽमावास्याऽप्रमा ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥ २७ ॥  
 मार्गा ह्यपरपक्षे तु पूर्वमध्या तु शब्दिता ।  
 स्पुश्चतुरष्टकास्तिस्त्रः सप्तम्यादिष्वनुक्रमात् ॥ २८ ॥  
 माघे पञ्चदशी कृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी ।  
 तृतीया माघवे शुक्ला नवमी कार्तिके सिता ॥ २९ ॥  
 एता युगादर्थेः प्रोक्ताः सर्वाश्चाक्षयपुण्यदाः ।  
 सिंहद्वारिष्वयोः कुम्भसंक्रान्तिषु(?) भवन्त्युत्त ॥ ३० ॥  
 क्रमात्कृतयुगादीनां युगान्ताश्च महर्षयः ।  
 श्राद्धपक्षे त्रयोदश्यां मघास्विन्दुः करे रविः ॥ ३१ ॥  
 यदा तदा गजच्छाया श्राद्धे पुण्यैरवाप्यते ।  
 धनुस्त्रीमीनयुगमाङ्गाः पडशीतिमुस्ताः स्मृताः ॥ ३२ ॥  
 अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके सिता ।  
 तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥ ३३ ॥

फाल्गुनस्य त्वमात्रास्या पौषस्पैकादशी तथा ।  
 आपाढस्पापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥ ३४ ॥  
 श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढी च पौर्णिमा ।  
 कार्तिकी फाल्गुनी चैव ज्येष्ठे पञ्चदशी सिता ॥ ३५ ॥  
 मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः ।  
 संक्रान्तपस्तथा पुण्या भास्वतो द्वादशैव हि ॥ ३६ ॥  
 पर्वस्वतेषु दानानि धेनुशैलादिकानि च ।

प्रयच्छन्ति द्विजेन्द्रेभ्यो लभन्ते चाक्षयां गतिम् ॥ ३७ ॥

पानीयमप्येषु तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।

श्राद्धं कृतं तेन समासहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ॥ ३८ ॥ २८५२॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरि सूतशौनकसंवादे तिथिनिर्णयादि-  
 कथनं नामैकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

**सूत उवाच-**प्रापश्चित्तं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वं मुनिपुङ्गवाः ।

सर्वेषामेव वर्णानां शुद्धिमाह यथा रविः ॥ १ ॥

द्विविधं पापमित्युक्तं प्रकटे गुप्तमेव च ।

प्रकटे प्रकटेनैव रहस्येन तथेतरत् ॥ २ ॥

वेदशास्त्रार्थविद्वांसो धर्मशास्त्रार्थपारगाः ।

कामक्रोधविनियुक्ताः शान्तात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ ३ ॥

समाः शत्रौ च मित्रे च हिंसालोभविर्वाजिताः ।

एकाविंशतिसंख्याकाः सप्तपञ्च त्रयोऽथ वा ॥ ४ ॥

यं शृणुरुक्तसंख्याकाः स धर्मः स्यादिति श्रुतिः ।

ब्रह्महा मद्यपः स्तेयी गुरुतल्पग एव च ॥ ५ ॥

महापातकिनश्चैते यश्च तैः सह संवसेत् ।

यस्तु संवस्तरं त्वेभिः पतितैः सह संवसेत् ॥ ६ ॥

यानशय्यासनैर्नित्यं जानन्वै पतितो भवेत् ।

ब्रह्महा द्वादशाब्दानि निपतात्मा बने वसेत् ॥ ७ ॥

भिक्षाहारेण सततं धृत्वा शवशिरोभ्वजम् ।

एककालं चरेद्भक्षं दोषं विरूपायपश्रृणाम् ॥ ८ ॥

पूर्णे तु द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्या व्यपोहति ।

अयामस्य स्मृता शुद्धिः यामतो मरणान्तिथी ॥ ९ ॥



ज्वलन्तं प्रविशेदग्निं भृगोः पतन्मेव च ।  
 कुर्यादनशनं वाऽपि ब्राह्मणार्थं त्यजेदसून् ॥ १० ॥  
 गुर्वर्थे वा त्यजेत्प्राणान्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।  
 गत्वा वाराणसीं वाऽपि कालात्तत्र त्यजेदसून् ॥ ११ ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो याति शैवं परं पदम् ।  
 सुरापस्तु सुरां तन्नामग्निवर्णां पिबेत्ततः ॥ १२ ॥  
 शुद्धो भवति निर्दग्धस्तद्धर्णं वा पयः पिबेत् ।  
 गोमूत्रं वा घृतं वाऽपि तत्पापान्मुच्यते द्विजः ॥ १३ ॥  
 ब्रह्महत्याव्रतं चापि चरेत्तत्पापशान्तये ।  
 अभिगम्य तु राजानं सुवर्णस्तेयवान्द्विजाः ॥ १४ ॥  
 स्वकर्म ख्यापयन्द्रूयात्त्वं मां हन्तुमिहार्हसि ।  
 श्हीत्वा मुशलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् ॥ १५ ॥  
 वधे तु मुच्यते तेन कृच्छ्रैर्वा विविधैर्द्विजाः ।  
 \*अवगृहेत्स्त्रियं तन्नामायसीं गुरुतल्पगः ॥ १६ ॥  
 यस्य यस्य च संपर्कात्तत्संयोगी भवेद्विजाः ।  
 तस्य तस्य धृतं कुर्यात्तत्तत्पापापनुत्तये ॥ १७ ॥  
 स्नात्वाऽश्वमेधावभृथे सर्वं पातकिनो द्विजाः ।  
 शुद्धयेरंस्तत्क्षणादेव रविरित्यब्रवीत्स्वयम् ॥ १८ ॥  
 † मातृष्वसां मातुलानीं तथैव च पितृष्वसाम् ।  
 भागीनेयीं समारुह्य कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रकौ ॥ १९ ॥  
 चान्द्रायणं वा कुर्वीत तस्य पापापनुत्तये ।  
 ज्ञातृभाषां भागिनेयीं तस्य पापापनुत्तये ॥ २० ॥  
 चान्द्रायणानि चत्वारि पञ्च वा कथितानि वै ।  
 मातुलस्य सृतां गत्वा ससिभाषां तथैव च ॥ २१ ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ।  
 उदक्या गमने चैव त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥ २२ ॥

\* षड्चक्रसहितपुस्तकेष्विदं धीयार्थं नास्ति ।

† इतिहितपुस्तकेऽप्य धीयैः नास्ति ।

ब्राह्मणो ब्राह्मणो गत्वा कृच्छ्रमेकं समाचरेत् ।  
 कन्यकागमने चैव चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ २३ ॥  
 रेतः सिक्त्वा जले यस्तु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ।  
 वैश्याया गमने चैव प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २४ ॥  
 नान्यासां निष्कृतिर्दृष्टा शास्त्रेषु परमांपिभिः ।  
 संवत्सरस्य चाभ्यासाद्गुरुतल्पव्रतं स्मृतम् ॥ २५ ॥  
 यदि तत्र प्रजोत्पत्तिर्निष्कृतिर्न विधीयते ।  
 शूद्रा भवति चेदूढा ब्राह्मणस्य यदा तदा ॥ २६ ॥  
 न तस्या गमने पापं प्रजोत्पत्तौ तथैव च ।  
 रण्डाया गमने चैव चरेत्सांतपनं व्रतम् ॥ २७ ॥  
 संवत्सरेण भवति गुरुतल्पसमो हि सः ।  
 नद्यौ शैलपिकां चैव रजकीं वेणुजीवनीम् ॥ २८ ॥  
 गत्वा चान्द्रायणं कुर्यात्तथा चर्मोपजीवनीम् ।  
 दीक्षितं क्षत्रियं हत्वा चरेद्ब्रह्महर्षो व्रतम् ॥ २९ ॥  
 अदीक्षितस्य हनने षड्वदं कृच्छ्रमाचरेत् ।  
 वैश्यं तु कामतो हत्वा त्र्यब्दकृच्छ्रं समाचरेत् ॥ ३० ॥  
 निहत्य ब्राह्मणो विभस्त्वष्टवपं व्रतं चरेत् ।  
 वर्षपट्टं तु राजन्यां वैश्यां संवत्सरत्रयम् ॥ ३१ ॥  
 वैत्सरेण विशुद्धः स्याच्छूद्रघ्नीवध एव च ।  
 वैश्यां हत्वा प्रमादेन किञ्चिदानमिहोचितम् ॥ ३२ ॥  
 मर्कटं नकुलं काकं वराहं मूपकं तथा ।  
 मार्जारं वाऽथ मण्डूकं श्वानं वै कुट्टं स्वरम् ॥ ३३ ॥  
 पादकृच्छ्रं चरेद्भत्वा कृच्छ्रमश्वधे स्मृतम् ।  
 तप्तकृच्छ्रं हस्तिवधे पाराकं गोवधे स्मृतम् ॥ ३४ ॥  
 पामतो गोवधे नैव शुद्धिर्दृष्टा मनीषिभिः ।  
 भक्ष्यभोग्यापहरणे यानशय्यासनस्य च ॥ ३५ ॥  
 पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोषनम् ।  
 मृणफाद्युद्दुर्माणां च शुष्कान्नस्य गुह्यस्य च ॥ ३६ ॥  
 चेलचर्मोपिपाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ।  
 हंसं कार्ण्डव्यं चैव चक्रवाकं च टिट्टिमम् ॥ ३७ ॥

थुकं च सारसं चैव उलूकं च कृपोतकम् ।  
 चापं च शिशुमारं च बल्लोकां च वकं तथा ॥ ३८ ॥  
 जग्ध्वा चैतान्द्विजः कुर्याद्वादशाहमभोजनम् ।  
 नालिकां तन्डुलीयं च जग्ध्वा कृच्छ्रं समाचरेत् ॥ ३९ ॥  
 \*कामतोदुम्बरं जग्ध्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ।  
 अलातुं किंथुकं जग्ध्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ४० ॥  
 यानि क्षीराण्यपेयानि तेषां पानाद्गतं त्विदम् ।  
 गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुध्यति ॥ ४१ ॥  
 अमुरा(?)मद्यपानेन कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम् ।  
 प्राजापत्यं चरेत्सम्यग्रेतोविष्णुमूत्रभक्षणे ॥ ४२ ॥  
 विड्वराहस्वरोष्णां गोमायोः कपिकाकयोः ।  
 एतेषां भक्षणे चैव द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ ४३ ॥  
 ब्राह्मणो ब्राह्मणोच्छिष्टं भुक्त्वा कृच्छ्रं समाचरेत् ।  
 क्षत्रिये तप्तकृच्छ्रं स्याद्वैश्ये चैवातिकृच्छ्रकम् ॥ ४४ ॥  
 शूद्रोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ।  
 सुराभाण्डोदकं पीत्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ ४५ ॥  
 महापातकिनं स्पृष्ट्वा वेदविक्रयिणं तथा ।  
 रजस्वलां च चाण्डौलीमज्ञात्वा यदि भोजयेत् ॥ ४६ ॥  
 त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।  
 तैलाभ्यंक्तो द्विजो यस्तु कुर्यान्मूत्रपुरीषके ॥ ४७ ॥  
 अहोरात्रेण शुद्धिः स्याच्छुश्रुकर्मणि मैथुने ।  
 स्वरयानं समरिह्य तथा चैवोष्णयानकम् ॥ ४८ ॥  
 नम्रो यस्तु विशेषापत्त्रिरात्रेण विशुध्यति ।  
 पापानामधिकं पापं देवतानां च निन्दनम् ॥ ४९ ॥  
 मोहाद्वै कुरुते यस्तु कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ।  
 सकृद्यः कुरुते निन्दां शिवस्य परमेष्ठिनः ॥ ५० ॥  
 तस्य शुद्धिर्न दृष्टाऽस्ति पुराणे मुनिभिः कृता ।  
 कुर्याद्यदि गुरुः शुद्धिं कारुण्यात्परमेष्ठिनः ॥ ५१ ॥

\* यजुसामाङ्गतपुस्तकयोरेव धोको न विद्यते ।

चान्द्रायणत्रयं ब्रह्मन्नाल्पया शुद्धिरिष्यते ।  
 शृणोति गुरुनिन्दां यस्तस्य चान्द्रायणत्रयम् ॥ ५२ ॥  
 एकासनं चोपविशेद्गुरुणा सह मूढधीः ।  
 प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति पापं गुरुतरं हि तत् ॥ ५३ ॥  
 प्रायश्चित्तमपीच्छन्ति केचिदज्ञानतः क्रते ।  
 कुर्यात्सातपनं चैव चान्द्रायणचतुष्टयम् ॥ ५४ ॥  
 योऽयं शुद्धिविधिः प्रोक्तो गुरोरङ्गीकृतेऽप्यस्य ।  
 वाग्दत्तस्याप्रदानेन ब्रह्महत्यासमं भवेत् ॥ ५५ ॥  
 प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति दत्तैर्ग्रामशतैरपि ।  
 शिवद्रव्यापहरणं गुरोरप्यणुमात्रकम् ॥ ५६ ॥  
 कुत्सनं च तथा शंभोर्गुरोरपि तथैव च ।  
 तथा च शिवभक्तानां ज्ञानस्य च विदूषणम् ॥ ५७ ॥  
 गिरिजापाश्र्व विष्णोश्च स्कन्दस्येभमुत्सवश्च ।  
 योगिनां च तथा निन्दा निन्दनाऽपि तथा द्विजाः ॥ ५८ ॥  
 पापान्येतानि सर्वाणि ब्रह्महत्यासमानि वै ।  
 तस्मान्न निन्देदेतांस्तु कर्मणा मनसो गिरा ॥ ५९ ॥  
 यदीच्छेच्छाश्वतं स्थानमिति देवोऽब्रवीद्भिविः ।  
 प्रायश्चित्तस्य सर्वस्य पश्चात्सायो हि कारणम् ॥ ६० ॥  
 न तेन रहितं पापं गच्छतीति हि निश्चितम् ।  
 प्रायश्चित्ते क्रते पश्चात्तन्मिन्पापे प्रवर्तते ॥ ६१ ॥  
 क्रतं त्वक्रतमेव स्यात्तत्पापं पूर्ववतिस्थितम् ।  
 स्थूलानि यानि पापानि सूक्ष्माणि विविधान्यपि ॥ ६२ ॥  
 तानि नागयति क्षिप्रं मुहूर्ते शिवचिन्तनम् ।  
 सर्वपापापनोदार्थं प्रायश्चित्तं वदाम्पहम् ॥ ६३ ॥  
 समाहितो जले मग्नः शिवं ध्यायन्प्रसन्नधीः ।  
 अष्टक्रत्वो हर इति जपन्पापैः प्रमुच्यते ॥ ६४ ॥  
 कार्तिक्यां शुक्लपक्षस्य या सा पुण्या चतुर्दशी ।  
 तस्यां संपूज्य देवेशं देवदेवमुमापतिम् ॥ ६५ ॥  
 जप्त्वाऽधर्वेशिरो पस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोदति ।  
 तस्यामेव नवम्यां च भगवन्तमुमापतिम् ॥ ६६ ॥

उद्दिश्य दद्याद्यत्किंचित्सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
 पौर्णमास्याममावास्यां ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ६७ ॥  
 पञ्चामृतैः सुसंस्नाप्य लिङ्गमूर्तिधरं हरम् ।  
 पूजयित्वा विधानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६८ ॥  
 मन्दवारयुता पुण्या शुक्लपक्षे त्रयोदशी ।  
 तस्यामुपोष्य विधिना संपूज्य गिरिजापतिम् ॥ ६९ ॥  
 ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्तो भवति मानवः ।  
 वृतीया या समारव्याता वैशाखेऽक्षयसंज्ञिता ॥ ७० ॥  
 तस्यां शिवाय यात्किंचिदद्याद्वा शिवयोगिने ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः परां गतिमवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥  
 ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्तो लोकविनिन्दितः ।  
 शंकरं शरणं गत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७२ ॥ २९२४ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे प्रायश्चित्त-  
 विधिकथनं नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥  
**ऋषय ऊचुः**—श्रुतमस्माभिरखिलं ज्ञानं माहेश्वरं महत् ।  
 वर्णाश्रमविधिश्चैव प्रायश्चित्तमशेषतः  
 इदानीं श्रोतुमिच्छामो विवाहं गिरिजापतेः ॥ १ ॥  
**सूत उवाच**—पदुवाच पुरा देवः पृष्ठो मार्तण्डसूनुना ।  
 स्तुत्वा च स्तोत्रवर्षेण तच्छृणुध्वं द्विजोत्तमाः ॥ २ ॥  
**मनुर्वाच**—भगवन्यद्यथा पृष्ठ तत्तथैव त्वयोदितम् ।  
 श्रुतं तदखिलं तात हृदि तच्च स्थिरीकृतम् ॥ ३ ॥  
 जानासि त्वं भगवतो माहात्म्यं पार्वतीपतेः ।  
 भवतो नापरः कश्चिद्वेत्ताऽस्तीत्यब्रवीच्छ्रुतिः ॥ ४ ॥  
 त्वमीशस्पापरा भूर्तिर्पतोऽसि परमेश्वरः ।  
 अतस्त्वमेव जानासि महिमानं महेशिलुः ॥ ५ ॥  
 त्वामेव रुद्रं वरदं शिवं परमकारणम् ।  
 तपनं शरणं यामि सहस्राक्षं हिरण्यपम् ॥ ६ ॥  
 सूर्यं प्रभाकरं भानुं ज्योतिषां ज्योतिरव्यपम् ।  
 अम्बिकापतिभीशानं ज्योतिर्ष्मन्तं दिवाकरम् ॥ ७ ॥  
 हिरण्यवाहुं जटिलमोकाराख्यं प्रचेतसम् ।  
 इहि मे देवदेवेश विवाहं परमेष्ठिनः ॥ ८ ॥

कान्ती हेमवती गौरी पुनर्जाता कथं विभो ॥ ९ ॥  
 भानुस्वाच-शृष्टं पतन्मवक्ष्यामि शृणुष्व मनुजेश्वर ।  
 सर्वपापक्षयकरं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ १० ॥  
 नीलप्रीयो महादेवः शरण्यो गोपतिर्विराट् ।  
 मयच्च त्वां महेशानमुग्रं शर्वं कपादिनम् ॥ ११ ॥  
 त्वां नमामि परं हंसं पशुभर्तारमीश्वरम् ।  
 सर्वेषां स्मरणादेव देदिनां मोक्षसाधनम् ॥ १२ ॥  
 य एतैर्नामभिः स्तोति मातः संपयतात्मवान् ।  
 तस्य पापं क्षयं याति लक्ष्मीश्चैव मयर्थते ॥ १३ ॥  
 सर्वरोगविनिमुक्तो जीवेद्द्विपशतं नरः ।  
 मृत उवाच-एवं मनोरञ्जः श्रुत्वा पदुवाच दिवाकरः ॥ १४ ॥  
 तदहं संभवक्ष्यामि शृणुष्व मुनिपुङ्गवाः ॥ १५ ॥  
 या सा दक्षमुता देवी मती भ्रेन्मोक्षयुजिता ।  
 त्यक्त्वा दासं शरीरं च चभुवाचलकन्यवा ॥ १६ ॥  
 नाम्ना कान्तीति विरपाता विश्वरूपा महेश्वरी ।  
 जगद्येतन्परुषां च जगद्येतन्पद्मोधिनी ॥ १७ ॥  
 अधिष्ठितस्तया काल्या दिमवान्पर्वतोत्तमः ।  
 पुण्यस्थानमभूद्विमा मोक्षदः सर्वदेदिनाम् ॥ १८ ॥  
 मिद्धानां च मुनीनां च गन्धर्वाणां दिवोकसाम् ।  
 आवामः विनराणां च स्मरणात्पुण्यदो वृणाम् ॥ १९ ॥  
 शिवं भर्तारमिच्छन्ती तस्मिन्निगिरिवरोत्तमे ।  
 तपस्तप्तुं गता कान्ती शिवा वित्रोरनुज्ञया ॥ २० ॥  
 अधास्मिन्नन्तरे दैत्यस्तारको लोककण्ठकः ।  
 जातो दैत्यकुले वीरो मृत्युरूपो दिवोकसाम् ॥ २१ ॥  
 ब्रह्माणं तपसाऽऽराध्य वरं तस्मादवाप ह ।  
 देवाः पत्न्यापितास्तेन तारकेण कान्तीयसा ॥ २२ ॥  
 देवानां योपितो पाश्च बलादपहृतांश्च ताः ।  
 दुःस्वामिना मुसंतप्ताः शक्राद्याः प्रथितौजसः ॥ २३ ॥

१ ( क ख ग घ ङ च छ ) ०शुर्ध्वं मुनिपुङ्गवाः । २ ( क ख ग ज झ ) सनिय०  
 ३ ( घ ङ च ) ०सर्वपापक्षिण ४ ( य ङ च छ ) ०या सा ज० ५ ( य ख ग ङ छ )  
 ०वाप्य च । दे० ६ ( घ ङ च छ ) ०नारतनः । दु०

गताः सशक्राः शरणं ब्रह्माणं त्रिदशेश्वरम् ।

आगतांश्च सुरान्दृष्ट्वा ततः प्रोवाच पद्मजः ॥ २४ ॥

**ब्रह्मोवाच**—कस्मान्नस्ताः सुरा यूयमागता वै ममान्तिके ।

ब्रूत तत्सकलं देवा उपायं वच्मि वः स्फुटम् ॥ २५ ॥

**देवा ऊचुः**—तारकाद्भयसंनस्ताः शरणं देवमागताः ।

यथा मृत्योर्भयं देव तस्मान्नत्तातुमर्हसि ॥ २६ ॥

अपि क्षणं सुरश्रेष्ठ न लभामो वयं सुखम् ।

त्रिंशद्द्वर्षसहस्राणि हरितारकयोस्तदा ॥ २७ ॥

अहर्निशमविश्रान्तं युद्धमासीत्सुदारुणम् ।

तथाऽपि न जितस्तेन देवदेवेन चक्रिणा ॥ २८ ॥

अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा ययौ त्यक्त्वा महोदधिम् ।

भ्रान्तचित्तस्तद्वा शार्ङ्गं गतस्तूर्णं महाबलः ॥ २९ ॥

वयमप्येवमेवं हि भीतास्त्वां शरणं प्रभो ।

आगताऽह्यहि नस्तस्मात्सुखदो भव पद्मज ॥ ३० ॥

**ब्रह्मोवाच**—शृणुध्वं मेऽमराः सर्वे युष्माकं सुखदं महत् ।

योऽसौ दृप्तस्सारकाल्यस्तताप परमं तपः ॥ ३१ ॥

तस्य दैत्यस्य तपसा दह्यमानं चराचरम् ।

दृष्ट्वा तद्भरदानार्थं गतोऽहं तारकान्तिकम् ॥ ३२ ॥

उक्तं मया वरं वत्स-वरयेति महासुरः ।

अब्रवीदैत्यराजो मामभिवन्द्य कृताञ्जलिः ॥ ३३ ॥

**तारक उवाच**—अवध्योऽहं सुरैः सर्वैर्विष्ण्वाद्यैः पद्मसंभव ।

भवाम्यहं यथा देव तथा त्वं देहि मे वरम् ॥ ३४ ॥

एवमस्त्वित्यहं तस्मै वरं दत्त्वा सुरोत्तमाः ।

अन्यच्चोक्तं हितार्थं वः कस्माद्दध्योऽसि तद्भद ॥ ३५ ॥

**तारक उवाच**—\*योऽयं देवाधिदेवेशः कपर्दी नीललोहितः

तस्य रेतः सुराः पीत्वा सैगर्भो विष्णुना सह ॥ ३६

भविष्यन्ति ततो जातान्मृत्युरिष्टो न वाऽपरः ।

तथास्त्विति तत्तश्चोक्त्वा गतोऽहं मेरुर्ध्वनि ॥ ३७

\* कजसंज्ञितपुस्तकयोरय श्लोको नास्ति ।

१ ( क घ ग झ. ) ०२५० ॥ २५ ॥ २ ( क ख ग ज झ. ) ०१ विमं.  
 ड. च. छ ) ०३ सुराः । ४ ( क. घ. ड. च. झ. झ. झ. ) सभार्या वि० ५ ( च. छ. )  
 ०५ यति त० ६ ( च. छ. ) ०६ जन्म मृ० ७ ( च. छ. झ. ) ०७ परम् ।

गच्छध्वं शरणं तस्माच्छरण्यं सर्वदेहिनाम् ।  
 विश्वेश्वरमुमाकान्तं शंकरं लोकशंकरम् ॥ ३८ ॥  
 मुक्त्वा हरात्मकं देवं त्रैलोक्ये सचराचरे ।  
 न तं पश्यामि भो देवास्तारकं यो वधिष्यति ॥ ३९ ॥  
 ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा सहस्राक्षः शचीपतिः ।  
 कथं भविष्यतीत्येवमालोक्य मनसा द्विजाः ॥ ४० ॥  
 गुरुणा देवतैः सार्धं पुनरेव स देवराट् ।  
 हरस्यैव मुतोत्पत्तावुपायश्चिन्त्यतां सुराः ॥ ४१ ॥  
 इत्युक्त्वा प्रययुर्देवाः शक्राद्या ब्रह्मणा सह ।  
 मेरीरुत्तरतः शृङ्गं यत्र तिष्ठति माधवः ॥ ४२ ॥  
 \*गुप्तस्तिष्ठत्यमेयात्मा तारकाद्गणपीडितः ।  
 सत्रह्मकान्मुरान्दृष्ट्वा हृष्टः प्रोवाच माधवः ॥ ४३ ॥

**माधव उवाच**—उपायश्चिन्तितः कोऽत्र वधार्थं तारकस्य हि ।

अस्ति चेद्बुध्यतां देवाः शर्म नो जायते यथा ॥ ४४ ॥

**सूत उवाच**—एवं विष्णोर्वचः श्रुत्वा ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः ।

यथोक्तं ब्रह्मणा तेभ्यस्तथोक्तं विष्णवे सुरैः ॥ ४५ ॥

किमिदानीं तु कर्तव्यमिति संचिन्त्य देवराट् ।

सोऽस्मरन्मनसा काममजेयमसुरैः सुरैः ॥ ४६ ॥

शक्रस्य चिन्तितं ज्ञात्वा कामो रतिपतिः स्वयम् ।

शचीपतिं समागम्य प्राह पुष्पधनुर्धरः ॥ ४७ ॥

**काम उवाच**—किं कार्यं त्रिदशश्रेष्ठ कर्तव्यं किं मया प्रभो ।

तीव्रेण तपसा को हि स्थानमीहितं तावकम् ॥ ४८ ॥

किं वा काचित्तवाऽऽदेशं कर्तुं नेच्छति चाङ्गना ।

तां कामिनीं करोम्यद्य तव ध्यानपरायणाम् ॥ ४९ ॥

न कश्चिदस्ति मे शूरो न मानी न च पण्डितः ।

व्यापयामि जगत्कृत्स्नं ब्रह्मार्थं स्तम्बगोचरम् ॥ ५० ॥



अथ किं बहुनोक्तेन दुर्वासा वा महामुनिः ।  
 सोऽपि विद्वः पतत्प्राशु मद्भागैर्मरुतां पते ॥ ५१ ॥  
 इन्द्र उवाच—जानाम्यहं रतेनाथ सामर्थ्यं पुष्पधन्विनः ।  
 नूनं हि सर्वकार्याणि त्वत्तः सिध्यन्ति नान्यथा ॥ ५२ ॥  
 गच्छ पार्श्वं महेशस्य सुराणां हितकाम्यया ।  
 चित्तं हरस्य संक्षोभ्य पार्वत्याः संगमं कुरु ॥ ५३ ॥  
 एतदेव हि मे कार्यमेव एव मनोरथः ।  
 एतस्मात्कारणात्त्वं हि स्मृतः पुष्पधनुर्धर ॥ ५४ ॥  
 एवं शक्रवचः श्रुत्वा बलवान्मकरध्वजः ।  
 मधोः सखा रतीयुक्तः पञ्चबाणो मनोभवः ॥ ५५ ॥  
 यत्राऽऽस्ते भगवाञ्शंभुर्ध्यानदृष्ट्या समाहितः ।  
 निष्कम्पः स्वात्मनाऽऽत्मानं चिन्तयानो महेश्वरः ॥ ५६ ॥  
 प्राप्य शंभोरापतनमपश्यन्मकरध्वजः ।  
 शैलार्दं द्वारदेशे तु मेरुशृङ्गमिवोदितम् ॥ ५७ ॥  
 सर्वाभरणसंपुक्तं सहस्रादित्यवर्चसम् ।  
 शूलहस्तं त्रिनैत्रं च चन्द्रायवचभूषणम् ॥ ५८ ॥  
 वज्रपाणिं चतुर्बाहुं द्वितीयमिव शंकरम् ।  
 तं दृष्ट्वा मदनो विप्राश्चिन्ताक्रान्तस्तदाऽभवत् ॥ ५९ ॥  
 कथं प्रविश्य वक्ष्यामि शंभुं त्रिदशवन्दितम् ।  
 कथं कार्यं करिष्यामि सुराणां प्रीतिवर्धनम् ॥ ६० ॥  
 चिन्तयित्वा तु बहुधा वञ्चनार्थाय नन्दिनः ।  
 वायुद्वयं ततः कृत्वा सुगन्धं मृदुशीतलम् ॥ ६१ ॥  
 प्रविवेश तदा कामो दक्षिणां दिशमाश्रयम् ।  
 तेन याम्यां दिशि गतो वायुर्वाति सुखावहः ॥ ६२ ॥  
 अद्यापि कारणात्सोऽयं सुगन्धो (?) मृदुशीतलः ।  
 अपश्यत्तत्र मदनः सूर्यकोटिमिवोदितम् ॥ ६३ ॥  
 सहस्रनयनं देवं सहस्रतनुमीश्वरम् ।  
 नीलकण्ठं सुधाभासं शृङ्गखण्डेन्दुधारिणम् ॥ ६४ ॥  
 जगदुत्पत्तिसंहारस्थित्यनुग्रहकारिणम् ।  
 शुद्धस्पटिकसंकाशं विधूममिव पावकम् ॥ ६५ ॥

रुण्डमान्त्राचिंतं देवं सूर्यमालाविभूषितम् ।  
 अनौपम्यमसाहस्यमप्रमेयमनाकुलम् ॥ ६६ ॥  
 जगच्चक्षुर्जगद्धातुं जगच्छीर्षं जगन्मयम् ।  
 जगत्पादं जगच्छ्रोत्रं सूक्ष्मस्थल परात्परम् ॥ ६७ ॥  
 रुद्रं सर्वं पशुपतिमुग्रं भीमं भवं द्विजाः ।  
 महादेवं महेशानमष्टभूर्तिं जगत्पतिम् ॥ ६८ ॥  
 व्यक्ताव्यक्तं त्रिलोकेशं पूजितं च सुरासुरैः ।  
 अथ दृष्ट्वा महादेवं प्रहृष्टो मकरध्वजः ॥ ६९ ॥  
 निक्रम्य चापमौष्यं स्थितः पश्यन्भवोद्भवम् ।  
 एवं स्थितस्य कामस्य सहस्राण्ययुतानि पद् ॥ ७० ॥  
 गतानि तस्य वर्षाणि मुनीन्द्राश्चित्तजन्मनः ।  
 ततः स भगवान्देवो नेत्रे उन्मीलय शंकरः ॥ ७१ ॥  
 अपश्यद्विरिजां देवीमग्रे विश्वेश्वरः जिवः ।

॥ गिरीन्द्रपुत्रीं तपसः प्रसक्तां लज्जयान्विताम् ॥ ७२ ॥

दृष्ट्वा किमत्रेतिविकल्पबुद्ध्या कामोऽयमत्रेति विचिन्त्य शर्वः ।

ज्ञात्वा विलोक्य प्रविक्रष्टचापं नेत्राग्रिनाऽसौ मदनोऽपि दग्धः ॥ ७३ ॥ २९२७ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे मदनदहनं

नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

**सूत उवाच-**दग्धे रतिपतौ शंभुरुवाचाचलकन्यकाम् ।

किमहं तव देवेशि करोमि मनसि स्थितम् ॥ १ ॥

वरं शृहि महादेवि दास्याम्यद्य सुरेश्वरि ।

मयि प्रसन्ने देवेशि किं दुर्लभमिहास्ति ते ॥ २ ॥

**श्री पार्वत्युवाच-**हते तु कामे वद नीलकण्ठ वरेण किं देव करोमि तेऽद्य ।

विनेव कामेन न चास्ति भावः स्त्रीपुंसयोर्भास्करकोटिकल्पः ॥ ३ ॥

भावस्य हानेः सुखसंनिकर्षः कथं भवेद्भृहि सुरेश्वर्य्य ।

उवाच भूयो मदनान्तकारी देहे न चाहं मदनं मुनेत्रं ॥

नेत्रस्य चैव ज्वलनात्मकस्य स्वरूपमेतद्बद किं करोमि ॥ ४ ॥

\* यस्तगश्मतिनपुस्तनेषु गिरान्द्रेत्यादिधोकार्थस्याय इदं धाकार्थमस्ति । तपसा गिरान्द्रपुत्री तपसः प्रसक्ता लज्जयान्विता पुत्रशरान्तकारा-ज्ञान ।

१ (क. ख. ग. घ.) पलाशत्रय । २ (क. ख. ग. घ.) ०२ ॥ १७७ ॥ १०१ । ३ (घ. ङ. च. छ.) ०१ ॥ १७७ ॥ १०१ । ४ (घ. ङ. च. छ.) देव्यास्य । ५ (घ. ङ.) ०१ ॥ १०१ ॥ ६ ॥

**देव्युवाच**—वालेति मत्वा भव भूतनाथ व्यामोहसे किं त्वमनिन्द्यवर्षे ।

रवतन्नवृत्तिर्यदि वा तवैषा तदा दहेर्मांमपि चाग्रसंस्थाम् ॥ ५ ॥

यदि विश्वेश्वरो देवो ब्रह्मादीनां हरः शिवः ।

प्रतारणे प्रवृत्तश्चेत्को भिवारयितुं क्षमः ॥ ६ ॥

नाहं प्रतार्या भगवंस्त्वामहं शरणं गता ।

गतिर्नान्यास्ति मे देव तस्मान्मां त्रातुमर्हसि ॥ ७ ॥

त्वमेव चक्षुर्जगतस्त्वमेव वचसां पतिः ।

त्वमेव धाता जगतो विधाता विश्वतोमुखः ॥ ८ ॥

नमाम्यहं देववरं पुराणमुपेन्द्रवेधोमरराजजुष्टम् ।

शशाङ्कसूर्याग्रिमयं त्रिनेत्रं ध्यानाधिगम्यं जगतः प्रकाशम् ॥ ९ ॥

त्वां वाङ्मयाधारमनन्तवीर्यं ज्ञानार्णवं चैव गुणार्णवं च ।

परापरं धामनिधिं सुसूक्ष्ममनादिमध्यान्तविहीनरूपम् ॥ १० ॥

हिरण्यगर्भं जगतः प्रसूतिं नमामि देवं हरिणाङ्गुचिह्नम् ।

पिनांकपाशाङ्कुशगूलहस्तं कपर्दिनं मेघसहस्रवीपम् ॥ ११ ॥

तमालकण्ठं स्फटिकावदातं नमामि शंभुं भुवनैकसिंहम् ।

\*दशार्धवक्त्रं सुरसिन्धुशीर्षं शशाङ्गुचिह्नं नरसिंहदारुणम् ॥ १२ ॥

त्वां नमामि शरभरूपधरोरगेन्द्रराजहारं चलद्वलयभूषणं हरम् ।

वरविबुधमुकुटाचिंताङ्गिं नमामि हि हरिचर्भवसनं त्वाम् ॥ १३ ॥

यदक्षरं निर्गुणमप्रमेयं यज्ज्योतिरेकं प्रवदन्ति सन्तः ।

दूरंगमं देवमनन्तमूर्तिं नमामि सूक्ष्मं परमं पवित्रम् ॥ १४ ॥

नमामि रुद्रं प्रमथाधिनाथं धर्मासनस्थं प्रकृतिद्वयस्थम् ।

तेजोनिधिं बालशशाङ्कमौलिं कालेन्धनं वाह्वरवीन्दुनेत्रम् ॥ १५ ॥

**सूत उवाच**—प्रसन्नोऽथाब्रवीद्देवीं कालीं त्रिपुरहा हरः ।

वरयस्व वरं देवि ददामि तव सुव्रते ॥ १६ ॥

**देव्युवाच**—जीवत्वयं महादेव कामो लोकप्रतापनः ।

विना कामेन भगवन्नाहं याचे कथंचन ॥ १७ ॥

**ईश्वर उवाच**—भवत्वन्ङ्गो मदनस्त्वत्प्रियार्थं सुलोचने ।

तेन रूपेण लोकस्य क्षोभणाय भवत्वलम् ॥ १८ ॥

\* घट छसहितपुरेषु दशार्धेणादिधोनार्थस्थाने भिन्न भोकार्थे दृश्यते । तद्यथा—दशार्धवक्त्र-सिन्धुशीर्षं शशाङ्गुचिह्नं नरसिंहदारुणम्—इति ।

ततोत्थितो वायुर्निवाप्रमेयस्त्वन्नङ्गरूपो मकरध्वजश्च ।  
हरस्य वाक्पादुमपेरितश्च सचापत्राणः सरतिर्वभूव ॥ १९ ॥  
इति प्रीत्या महेशानो वरं दत्त्वा हरः स्वयम् ।  
स्मरस्य पञ्चत्राणस्य तत्रैवान्तरधीपत ॥ २० ॥  
यः पठेद्विममध्यायं भक्त्या देवस्य संनिधौ ।  
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीपते ॥ २१ ॥ ३०१८ ॥  
इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसीरे सूतशौनकसंवादे महादेव-  
वरप्रदानं नाम चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

**सूत उवाच**—शंकराच्च वरं लब्ध्वा देवी त्रैलोक्यपूजिता ।

उमा भगवती काली समाप्ता पितृभन्दिरम् ॥ १ ॥

अपश्यद्विरराजस्तां चन्द्रकान्तिनिभाननाम् ।

दीपयन्तीं जगत्सर्वं विद्युत्पुञ्जसमप्रभाम् ॥ २ ॥

अङ्गे कालीं समाधाय शिरस्याप्राप च द्विजाः ।

उवाच परया प्रीत्या विश्वेशीं पर्वतेश्वरः ॥ ३ ॥

**हिमालय उवाच**—तपसा तोषितः शंभुरभेयात्मा सनातनः

कीदृशश्च वरो लब्धस्त्वया देवान्महेश्वरात् ॥ ४ ॥

**देव्युवाच**—तपसाऽऽराध्य विश्वेशं गोपतिं शूलपाणिनम् ।

तमेवेशं पतिं लब्ध्वा कृतार्थोऽस्मीति मे वरः ॥ ५ ॥

भेदोऽस्ति तत्त्वतो राजन्न मे देवान्महेश्वरात् ।

तिद्धमेवाऽऽवयोरैक्यं वेदान्तार्थविचारणात् ॥ ६ ॥

यदेतदैश्वरं तेजस्तन्मां विद्धि नगेश्वर ।

सर्वभूतात्मकं शान्तं विश्वं यत्र प्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥

अहं सर्वान्तरा शक्तिर्माया मायी महेश्वरः ।

अहमेका परा शक्तिरेक एव महेश्वरः ॥ ८ ॥

नाऽऽवयोर्विद्यते राजन्भेदो वै परमार्थतः ।

एकाऽहं विश्वगाऽनन्ता विश्वरूपा सनातनी ॥ ९ ॥

पिनाकपाणेर्दयिता नित्या गिरिवरोत्तमा ।

ज्ञातुं न शक्ता ब्रह्माद्या मत्स्वरूपं हि तत्त्वतः ॥ १० ॥

इच्छाशक्तिरहं राजन्ज्ञानशक्तिरहं पुनः ।

क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिः शक्तिमान्भगनेत्रहा ॥ ११ ॥

कूटस्थमचलं सूक्ष्मं सत्यं निर्गुणमव्ययम् ।  
 आनन्दमक्षरं ब्रह्म तात जानीहि मत्पदम् ॥ १२ ॥  
 तत्पदं ते अपश्यन्ति येषां भक्तिर्मयि स्थिरा ।  
 नान्यथा कर्मकाण्डैश्च सपोभिश्चापि दुष्करैः ॥ १३ ॥  
 शिवस्य परमा शक्तिर्नित्याऽऽनन्दमयी ह्यहम् ।  
 ब्रह्मणो वचनाद्राजन्नभवं दक्षकन्यका ॥ १४ ॥  
 शूलिनो देवदेवस्य निन्दकं परमेष्ठिनः ।  
 विनिन्द्य पितरं दक्षं जाताऽस्मि तव कन्यका ॥ १५ ॥  
 स्वेच्छयैवावतारो मे नैव चान्यवशात्पितः ।  
 तस्मान्मां परमां शक्तिमिति ज्ञात्वा सुखी भव ॥ १६ ॥  
 नाशयामि तवाज्ञानं भवबन्धनकारणम् ।  
 दिव्यं ददामि ते ज्ञानं दुःखत्रयविनाशकम् ॥ १७ ॥  
 एवं देव्याः प्रसादेन हिमवान्पर्वतेश्वरः ।  
 लब्ध्वाऽमाहेश्वरं ज्ञानं जीवन्मुक्तस्तदाऽभवत् ॥ १८ ॥  
 अपश्यदोखिलं विश्वमुमामहेश्वरात्मकम् ।  
 नित्यानन्दं निर्विभागमात्मानं च तदात्मकम् ॥ १९ ॥  
 मानमेयादिरहितं भेदाभेदविवर्जितम् ।  
 बाह्याभ्यन्तरनिर्मुक्तं शुद्धं निर्गुणमव्ययम् ॥ २० ॥  
 न समीपं न दूरस्थं न स्थूलं नापि वा क्रशम् ।  
 न दीर्घं नापि वा ह्रस्वं न पीतं नापि लोहितम् ॥ २१ ॥  
 न नीलं न चं क्रुष्णं च न शुक्लं नापि कर्बुरम् ।  
 पाणिपादविनिर्मुक्तं न श्रोत्रं न च चाक्षुषम् ॥ २२ ॥  
 अनासिकमजिह्वं च मनोलुब्धिविवर्जितम् ।  
 बन्धमोक्षविनिर्मुक्तं बोधाबोधविवर्जितम् ॥ २३ ॥  
 नाऽऽधारस्थं न नाभिस्थं न हृदिस्थं न कण्ठगम् ।  
 नापि नासाग्रगं विप्रा न भ्रूमध्यगतं हि तत् ॥ २४ ॥  
 न नाडीत्रयमध्यस्थं द्वादशान्तगतं न च ।  
 नोर्णातन्तुनिर्भं तत्तु विद्युत्पुञ्जनिर्भं न च ॥ २५ ॥  
 सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं चैतन्यं सर्वगं शिवम् ।  
 तदेवेदमिदं विश्वं तस्मादन्पन्न विद्यते ॥ २६ ॥

आस्थाय परमां भक्तिं शिवयोः पादपङ्कजे ।  
 पित्रोर्हिरण्यगर्भस्य शाङ्गिणश्चापि सुव्रत ॥ २७ ॥ ३०४५ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे माहेश्वर-  
 ज्ञानकथनं नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

**सूत उवाच-**आह्वानयत्ततो विश्वकर्माणं पर्वतेश्वरः ।

विवाहमण्डपं कर्तुं नानाश्रयविभूषितम् ॥ १ ॥

तेनाऽऽहूतस्ततः शीघ्रं विश्वकर्मा महामतिः ।

प्रययौ हिमवत्पार्श्वं कुशलो विश्वकर्माणि ॥ २ ॥

दृष्ट्वाऽथ विश्वकर्माणं दृष्टः पर्वतराट् स्वयम् ।

स्वागतासनपाद्याद्यैः सादरस्तमपूजयत् ॥ ३ ॥

विधिवत्पूजयित्वा तु विश्वकर्माणमब्रवीत् ॥ ४ ॥

**पर्वतराडुवाच-**विश्वकर्मन्महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।

यत्कारणादिहाऽऽहूतो मया त्वं तद्भवीम्यहम् ॥ ५ ॥

विश्वेश्वरो महादेवो भगवान्नीललोहितः ।

आगमिष्यति विश्वेशो परिणेतुं शिवः स्वयम् ॥ ६ ॥

मण्डपस्तत्र कर्तव्यो यज्ञार्थं हि हिरण्यमयः ।

योजनायुतविस्तीर्णमनेकाश्रयसंयुतम् ॥ ७ ॥

दृष्टमंत्रेण सर्वस्य प्रीतिर्भवति वै यथा ।

तथा त्वं मण्डपं शीघ्रं कुरु विश्वेश्वरमियम् ॥ ८ ॥

एवमुक्तस्तदा तेन गिरिणा विश्वकर्मकृत् ।

वैवाहं मण्डपं शीघ्रमसृजद्रत्नविग्रहम् ॥ ९ ॥

स्तम्भैर्हममयैश्चित्रैर्मणिभिः सूर्यसन्निभैः ।

इन्द्रनीलमयैर्द्वयैर्वैङ्ग्यैर्विहुभैरपि ॥ १० ॥

मौक्तिकैर्वज्रनीलैश्च चन्द्रकान्तमयैरपि ।

स्फटिकैर्विहुमैश्चापि मुक्तादामविलम्बितैः ॥ ११ ॥

चामरालंक्रतैरुच्चैर्दर्पणैर्विविधैरपि ।

\*सूर्यविम्बप्रतीकाशैश्चन्द्रविम्बसमप्रभैः ॥ १२ ॥

\*सूर्यविम्बेत्यादि शोभितमित्यन्तं कश्चमहितपुस्तकयोर्नोस्ति ।

( क. ख. ग. झ. ) ०व्रताः ॥ २७ ॥ २ ( घ. ङ. च. छ. ) ०राटूतः । स्त्रा० ३ ( घ. र तम० ) ४ ( क. ख. ग. झ. ) जिमालय उवा० ५ ( ङ. च. छ. ) ०माश्रय म० । ०५ । विवाहम० ७ ( घ. ) ०विधिवत्पूजयित्वादिपदेः । ६० ।

ध्वजमालाकुलं दिव्यं पताकानेकशोभितम् ।  
 रत्नजैः सिंहशाट्टैर्गजवर्णैर्निरन्तरम् ॥ १३ ॥  
 रेचितं मण्डपं दिव्यं प्रियं त्रिपुरविद्विषः ।  
 रुद्राणां च तथा रूपैर्गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥ १४ ॥  
 देवैश्चैव मनोहार्पिमर्त्यजैश्च तथा परैः ।  
 मालाभिस्तवकैर्विप्रा रत्नजैः कुमुमैर्भृशम् ॥ १५ ॥  
 \*कचिच्चाभीकरेणाथ हृद्यां भूमिं विनिर्ममे ।  
 कचित्पद्मदलाकारामिन्द्रापुधसमप्रभाम् ॥ १६ ॥  
 कचिन्नीलोत्पलाभासां नीलजीमूतसप्रभाम् ।  
 मनसैव यथा ब्रह्मा विश्वमेतद्वि निर्ममे ॥ १७ ॥  
 कचिद्भ्रूकसंकाशां दीप्तां विद्रुमसंनिभाम् ।  
 अनेकाकारविन्यासैस्ततो धात्रीं विनिर्ममे ॥ १८ ॥  
 कचित्कलशविन्यासैः कचित्स्वस्तिकभूपितैः ।  
 हरिचन्दनगन्धाद्यैः कर्पूरोद्गारगन्धिभिः ॥ १९ ॥  
 जातीपाटलपद्मानां चम्पकानां सुगन्धिभिः ।  
 आसनैर्विविधैः पूतैश्चन्द्रजीमूतसंनिभैः ॥ २० ॥  
 उदयार्कसमाकारैर्मैरुगृह्णोपमैर्भृशम् ।  
 तमालचम्पकामैश्च इन्द्रनीलमयैस्तथा ॥ २१ ॥  
 सिन्दूरचयसंकाशैर्जपाकुमुमसंनिभैः ।  
 संव्यारागनिभैश्चान्यैर्दाडिभीकुमुमप्रभैः ॥  
 हेमकुम्भनिभैश्चान्यैर्मुक्ताफलनिभैरपि ॥ २२ ॥  
 तारकापुञ्जसंकाशैः पद्मनीलेन्द्रनीलजैः ।  
 तत्रैव मण्डपे दिव्ये तोपस्थानान्यकल्पयत् ॥ २३ ॥  
 दीर्घिकास्तोत्रपूर्णाश्च क्षीरपूर्णास्तथैव च ।  
 दधिहृदाननेकांश्च सुधासंपूरितानि वै ॥ २४ ॥  
 घृतपूर्णा महानद्यो रत्नसोपानमण्डिताः ।  
 वृक्षांश्च कामिकान्दिव्यान्दीर्घिकाणां तथोभयोः ॥ २५ ॥

\* गजसहितपुस्तकयोरेवेद श्लोकार्धमास्ति ।

† दाडिभीत्याद्यन्यैरित्यन्त घटचण्डजसहितपुष्पकेषु नास्ति ।

अमृतक्रीडनार्थाय सदा पुष्पफलान्वितान् ।  
 भक्ष्यैर्नानाविधैर्दिव्यैः फलितान्मुनिपुङ्गवाः ॥ २६ ॥  
 कदलीखण्डमध्ये तु तमालगहनेष्वपि ।  
 क्रीडावाप्यः सुशोभाढ्यान्तथैवाशोकसंकुलाः ॥ २७ ॥  
 दीर्घिकाणां तटे रम्ये तरुणाः स्निग्धशाखिषु ।  
 दोलाश्चाऽऽबन्धयामासुर्मुक्तादामभिरुज्ज्वलैः ॥ २८ ॥  
 रमणीयानि दिव्यानि मनस्तुष्टिकराणि च ।  
 उद्यानवनखण्डानि स्थाने स्थानेष्वकल्पयत् ॥ २९ ॥  
 त्रैलोक्यतिलके तस्मिन्हेमपीठस्य मध्यगाम् ।  
 सिंहेश्च विधृतां श्वेतैः सहस्रदलमण्डिताम् ॥ ३० ॥  
 पारिजातद्रुमाणां च मञ्जरीभिरलंकृताम् ।  
 इन्द्रनीलमयी वेदि चारुसोपानभूषिताम् ॥ ३१ ॥  
 शतयोजनविस्तीर्णां स्तम्भैश्च कलशान्विताम् ।  
 नानानैकाप्सरोभिश्च रत्नजां दिव्यरूपिणीम् ॥ ३२ ॥  
 पीनोरुजघनास्ताश्च पीनोन्नतपयोधराः ।  
 चामराग्रकरास्तास्तु हारावालिविभूषिताः ॥ ३३ ॥  
 वीणावेणुकराश्चान्याः वात्रीगुणविराजिताः ।  
 चञ्चलायतनेत्राश्च तिलकालकमण्डिताः ॥ ३४ ॥  
 मध्यक्षामाश्च विम्बोष्ठीः कमलोत्पलमालिकाः ।  
 अनेकाकारविन्यासैर्निर्ममे ताः पृथक्पृथक् ॥ ३५ ॥  
 एवं हि दिव्यैः सुरमुन्दरीभिर्नानाप्रयोगैर्विधैश्च चित्रैः ।  
 मनोभिरामैर्नयनाभिरामैर्युक्तान्तवेदि त्वरितश्चकार ॥ ३६ ॥ ३०८१ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे साम्बविवा-  
 हमण्डपवर्णन नाम पट्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥  
 सूत उवाच-मण्डपं निमित्तं श्रुत्वा शंकरो विश्वकर्मेणा ।  
 शैलादिमन्त्रीदेवो विश्वेशो विश्वपूजितः ॥ १ ॥  
 श्रीभगवानुवाच-हितार्थं सर्वदेवानामस्मारु च विशेषतः ।  
 विवाहयज्ञ भारव्यो नगराजैर्न धीमता ॥ २ ॥

\* यत्तनाहनपुनर्वेदे ५।१। न २१२३ ।



दानार्थमद्रिकन्यायाः प्रस्थितो हिमवान्स्वयम् ।  
 अहं तत्र गमिष्यामि सुरैर्ब्रह्मादिभिः सह ॥ ३ ॥  
 त्वमिहाऽऽवाहय सुरान्कालाद्यादीन्द्भजांस्तथा ।  
 द्वीपांश्च सागरांश्चैव पर्वतांश्च नदीस्तथा ॥ ४ ॥  
 मण्डपं सुन्दरं यत्र निर्मितं विश्वकर्मणा ।  
 तत्र तिष्ठत्युमा देवी मम ध्यानपरायणा ॥ ५ ॥  
 विद्युल्लतेव भासन्ती चन्द्रकोटिनिभानना ।  
 एवमुक्तो महेगेन नन्दी सूर्यायुतप्रभः ॥ ६ ॥  
 नत्वा विश्वेश्वरं देवं ध्यानारूढस्तदाऽभवत् ।  
 व्यातः क्षणात्समायातः कालाग्निर्विश्वदाहकः ॥ ७ ॥  
 रुद्रैः परिवृतो देवः कोटिकोटिगणेश्वरैः ।  
 ततोऽब्रवीत्स कालाग्निः सर्वज्ञं नन्दिकेश्वरम् ॥ ८ ॥  
 किमर्थमहमाहूतो देवदेवेन शंभुना ।  
 उपस्थितो वा प्रलयः संहरिष्यामि तत्क्षणात् ॥ ९ ॥  
 एवमुक्तस्तदा तेन शैलादिस्तमथाब्रवीत् ।  
 प्रलयार्थं न चाऽऽहूतरत्वे विश्वेशेन शंभुना ॥ १० ॥  
 ग्रहीष्यति गिरेः पुत्रीं पत्नीत्वेन महेश्वरः ।  
 तदर्थं त्वमिहाऽऽहूतो ब्रह्माद्याश्च दिवोकसः ॥ ११ ॥  
 नन्दिनो वचनं श्रुत्वा कालाग्निरिदमब्रवीत् ।  
 द्रष्टुकामा वयं सर्वे ब्रह्माद्याः गूलपाणिनम् ॥ १२ ॥  
 शीघ्रं दर्शय शैलादे निर्वृताः स्मो यथा वयम् ।  
 विज्ञापय महादेवं ब्रह्माद्याश्चाऽऽगता इति ॥ १३ ॥  
 सर्वे त्वद्भ्याननिरताः सर्वे त्वदर्शनोत्सुकाः ।  
 कालाग्निमुग्वानां च वचः श्रुत्वा गणाग्रणीः ॥  
 प्राह विश्वेश्वरं देवं स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥ १४ ॥  
**नन्दिकेश्वर उवाच**—ब्रह्माद्याश्चाऽऽगताः सर्वे गूलपाणे त्वाऽऽज्ञया ।  
 द्रष्टुमिच्छन्ति ते सर्वे नमस्कर्तुं तथा मुदा ॥ १५ ॥  
 दिशाऽऽदेशं पुरारे मां किं वक्ष्यामि सुरासुरान् ।  
 वारिता द्वारमूलेषु द्रष्टुकामाश्च संस्थिताः ॥ १६ ॥

पत्ते निरुपमं रूपं तेजोमयमनिन्दितम् ।  
 यदधोभागमाश्रित्य रुद्रः कालाग्निर्संज्ञितः ॥ १७ ॥  
 पश्यन्तु चैते भूतेशं शूलं चैव सदोज्ज्वलम् ।  
 ततो विवेश कालाग्निर्विष्णुर्ब्रह्मा शतक्रतुः ॥ १८ ॥  
 अन्ये च देवगन्धर्वा ऋषयो मनवस्तथा ।  
 सर्वे कोलाहलं कृत्वा देवासुरमहोरगाः ॥ १९ ॥  
 विविशुर्हरसंस्थानं नद्याद्या इव सागरम् ।  
 प्रविश्य भवने रम्ये नानाधातुविचित्रिते ॥ २० ॥  
 गणकोटिसमाकीर्णं रुद्रकोटिमुसेविते ।  
 अग्रजन्मगुरुः पूर्वं रुद्रैर्देवैर्वृतस्तदा ॥ २१ ॥  
 भवारिमन्धकारिं तमपश्यदन्तकानलः ।  
 मुक्ताचलप्रतीकाग्रं शशाङ्कवयसंनिभम् ॥ २२ ॥  
 नीलकण्ठं त्रिनेत्रं च शूलिनं सर्वतोमुखम् ।  
 कोटिसूर्यप्रतीकार्णं जगदानन्दकारिणम् ॥ २३ ॥  
 कपालमालिनं देवं कपर्दकृतभूषणम् ।  
 दशबाहुं दशार्धास्पमनन्तं तेजसां निधिम् ॥ २४ ॥  
 जगद्दुत्पत्तिसंहारस्थित्यनुग्रहकारिणम् ।  
 क्षममेयमनाकारमपञ्चमनाकुलम् ॥ २५ ॥  
 सिंहासनस्थमचलं चराचरविभूतिदम् ।  
 क्षीरोदमिव निष्कम्पं त्रैलोक्यप्रभवं शिवम् ॥ २६ ॥  
 सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।  
 सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य संस्थितम् ॥ २७ ॥  
 सुरासुरैर्वन्द्यमानं ध्यायमानं मुमुक्षुभिः ।  
 इदं रूपं सभोलोक्य देवदेवस्य शूलिनः ॥ २८ ॥  
 अग्रे स्थितः स कालाग्निर्मैरी मेरुरिवापरः ।  
 अथोवाच स शैलादिः प्रणिपत्य सनातनम् ॥ २९ ॥  
 नरकाणामधोभागे पुरत्रयं प्रतिष्ठितम् ।  
 योजनायुतविस्तीर्णं कामदं शुभलक्षणम् ॥ ३० ॥

यस्यैवोर्ध्वं निगलम्बं शतयोजनमानतः ।  
 ज्वालामालाकुलं दिव्यं सर्वलोकभयंकरम् ॥ ३१ ॥  
 प्राकाराट्टालकेर्घुक्तं गोपुरैस्तोरणान्वितम् ।  
 रक्तनीलसमानाभैर्भूमिथोपैर्दुरासदैः ॥ ३२ ॥  
 वृतो रुद्रसहस्रैस्तु सिंहरूपैर्महाबलैः ।  
 नियम्य च स्वकं तेजः प्रीत्यर्थं तेऽधुनाऽऽगतः ॥ ३३ ॥  
 ध्वान्तचामीकराभासश्चन्दनागरुगन्धपुक् ।  
 नीलकण्ठस्त्रिनेत्रश्च वृषकेतुर्महाबलः ॥ ३४ ॥  
 द्वीपिचर्मपरीधानः पञ्चवक्त्रेन्दुभूषणः ।  
 अनन्तमेखलाधारी कुण्डलीकृततक्षकः ॥ ३५ ॥  
 \*दशबाहुर्महातेजाः पीनवक्षा महाभुजः ।  
 प्रलयोदनिघेर्घोपो रक्तनीलमहातनुः ॥ ३६ ॥  
 आगतः सौम्यरूपेण तव देव समीपतः ।  
 पश्यतां मृदुभावेन देवदेव जगत्पते ॥ ३७ ॥  
 एते चैव महावीर्याः कालाग्नेस्तु समीपतः ।  
 तिष्ठन्ति ज्वलनाभासा रुद्राश्च शतकोटयः ॥ ३८ ॥  
 त्वन्नियोगान्महादेव कालाग्न्यादेशकारिणः ।  
 तिष्ठन्ति स्वपुरे रम्ये क्रीडमाना मनोरमे ॥ ३९ ॥  
 तवानुज्ञागता ह्येते शशाङ्कमौलिनोऽमलाः ।  
 शुद्धस्पटिकसंकाशाः पद्मरागसमप्रभाः ॥ ४० ॥  
 तडिदृङ्गिणरसंकाशा वज्रगूलधनुर्धराः ।  
 नीलकण्ठास्त्रिनेत्राश्च सुखदुःखविवाजिताः ॥ ४१ ॥  
 सर्वाभरणसंपन्ना अनन्तवलविक्रमाः ।  
 जैरामरणनिर्मुक्ताः शार्दूलचर्मवाससः ॥ ४२ ॥  
 इमानपि महादेव पश्यन्प्रीतिकरो भव ।  
 हरिचन्दनलिप्ताङ्गानशोककमलाचिंतान् ॥ ४३ ॥

\* घटचछत्रसहितपुस्तकेष्वयं धोत्रो नास्ति ।

१ ( ड. च छ. ) ०न्विते । २ ( क. ख. ग. ज. झ ) पर्येन मृ० ३ ( क. ख. ग. घ. ) ०धे शार्दूलचर्मवाससः ॥ ४१ ॥ ४ ( क. ख. ग. घ. ज. झ. ) ०रा मशोयसत्यता । ५ ( क. ख. ग. ज. झ. ) ०काः सुखदुःखविवाजिताः ॥ ४२ ॥

दैत्याधिपत्तयश्चैव भृङ्गादाद्या महाबलाः ।  
 समागता महादेव नागाः शेषादयः शिव ॥ ४४ ॥  
 सर्वाः पातालवासिन्यो ह्यपयौवनगर्विताः ।  
 आगता देवदेवेश द्वीपैश्च सह सागराः ॥ ४५ ॥  
 गन्धर्वाः किंनरा यक्षाः सिद्धविद्याधराः शिव ।  
 उर्वश्याद्याश्चाप्सरसो नद्यः पापहराः शुभाः ॥ ४६ ॥  
 एते च मुनयो देव भृग्वाद्याः प्रथितौजसः ।  
 संप्राप्तानि पुराणीह शक्रादीनां महात्मनाम् ॥ ४७ ॥  
 एते लौकाः समापाताः सत्यान्ताः सप्त शंकर ।  
 मूर्तयस्तव देवेश भवाद्याश्च समागताः ॥ ४८ ॥  
 आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्चैव मरुद्गणाः ।  
 सनकाद्या महात्मानः सत्यलोकनिवासिनः ॥ ४९ ॥  
 पद्मरागनिभो देवो वन्धुककुसुमद्युतिः ।  
 जटाभिस्तु शिरोनद्धो रत्नमालाविभूषितः ॥ ५० ॥  
 कमण्डलुधरः श्रीमान्दण्डहस्तः सुलोचनः ।  
 कृष्णाजिनोत्तरीयेण रक्तमाल्याम्बरेण च ॥ ५१ ॥  
 सुवर्णमेखलाधारी रौक्मकुण्डलमण्डली ।  
 हेमध्वजश्चतुर्बाहुः सुरासुरनमस्कृतः ॥ ५२ ॥  
 सावित्र्या सहितो देवः पद्मयोनिरिहाऽऽगतः ।  
 भतसीपुष्पसंकाशस्तमालदलवर्चसः ॥ ५३ ॥  
 पीताम्बरधरः श्यामः पीतगन्धानुलेपनः ।  
 शङ्खचक्रगदाधारी शार्ङ्गी गरुडवाहनः ॥ ५४ ॥  
 किरीटी कुण्डली हारी कौस्तुभामरणान्वितः ।  
 केयूरवल्गुपापीडः पीनवक्त्रा गदान्वितः ॥ ५५ ॥  
 चामीकरसुमालाभिर्दीप्यमानो विराजते ।  
 स्रष्टोपुतप्रतीकाशो नीलोत्पलदलेक्षणः ॥ ५६ ॥  
 क्षीरोदार्यवशाधी च नीलजीमूतनिःस्वनः ।  
 रामामर्दितसर्वाङ्गः शेषपर्यङ्गलालसः ॥ ५७ ॥

गुरूणां च गुरुर्देव ईश्वराणामपीश्वरः ।  
 वरदो भव वात्सल्यो दैत्यकोटिक्षयंकरः ॥ ५८ ॥  
 आगतोऽयं महादेव विष्णुः प्रियतरस्तव ।  
 तप्तचामीकरमुखो वज्रहस्तो महाबलः ॥  
 पट्टांशुकपरीधानो हेममालाविभूषितः ॥ ५९ ॥  
 प्रख्यातवीर्यो बलवृत्रहन्ता बालार्कभासो हरिचन्दनाङ्कः ।  
 पुंनगनागैर्वकुलैश्च जुष्टो मुक्ताफलांलंकृतकण्ठदेशः ॥ ६० ॥  
 अयं समागतः शक्रो वह्निर्वैवस्वतस्तथा ।  
 निर्ऋतिर्वैरुणो वायुः कुबेरश्च समागतः ॥ ६१ ॥  
 ईशानश्च महाभागस्त्रिशत्कोटिगणैर्वृतः ।  
 आगतस्त्रिजगद्योने पिनाकी च गणेश्वरः ॥ ६२ ॥  
 दशकोटिगणैर्युक्तः\* कालकण्ठस्तथैव च ।  
 सप्तकोटिगणैर्युक्तो घण्टाकर्णो महाबलः ॥ ६३ ॥  
 दशकोटिगणैर्युक्तो वसुधोषो महाबलः ।  
 चतुष्कोटिगणैर्दण्डी शिखण्डी दशकोटिभिः ॥ ६४ ॥  
 पङ्क्तिर्मयूरवदन् सिंहास्यो दशकोटिभिः ।  
 सप्तकोटिगणैर्युक्तः किरीटी च समागतः ॥ ६५ ॥  
 कालान्तकस्तु दशभिर्नकुली दशकोटिभिः ।  
 पङ्क्तिस्तु मुण्डमाली च त्रिशूली पञ्चकोटिभिः ॥ ६६ ॥  
 अष्टाभिर्विश्वमाली च त्रिभूर्तिर्नैवकोटिभिः ।  
 एते गणेश्वराः सर्वे तथा चान्ये गणेश्वराः ॥ ६७ ॥  
 येषां संख्या न जानन्ति ब्रह्माद्या देवतागणाः ।  
 आगतानां महादेव शृणु कोलाहलं विभो ॥ ६८ ॥  
 अमरेशः प्रभासश्च गुष्करो नैमिषस्तथा ।  
 आपाटी दण्डी मुण्डी च भारभूतिस्तथा कुली ॥ ६९ ॥  
 तीर्थाधिपतयो देवा आगता दिव्यमूर्तयः ।  
 एते गुह्याष्टका देव कामरूपा महाबलाः ॥ ७० ॥

\* सप्तसप्ततितपुस्तकेषु कालकण्ठ इत्यादि दशकोटिगणैर्युक्त इत्यन्तं शब्दजातं नास्ति ।

१ ( ख. घ. ) णा हि गुण २ ( ज. , ०२३स्तु जुण ३ ( क ख. ग. ज. झ. ) ०युक्तः सुषो  
 पथ मण ४ ( च. ) ०युक्तदशनः ५ ( ख. ग. ) ०टीं समुपागण ६ ( क ख. ग. झ. ) ०भिर्लुण  
 ७ ( द. स. ) ०नुलेईशण ८ ( क. ख. ग. च. झ ) ०द्विध मण ९ ( ख. ग. ) शणाधिपः ॥६७॥

तवाऽऽज्ञयाऽऽगता देव ब्रह्माण्डान्तरवासिनः ।  
 कोटिकोटिगणैर्युक्ता देवदेव महेश्वर ॥ ७१ ॥  
 विश्वेश्वरजटोद्भूता सिन्धुश्चैव सरस्वती ।  
 यमुना गण्डकी नागा विपाशा नर्मदा शिवा ॥ ७२ ॥  
 रुक्मा घण्टा च निर्विन्ध्या देविका च हृष्यती ।  
 शतद्रुश्च पयोष्णी च चन्द्रभागा च गोमती ॥ ७३ ॥  
 चर्मण्वती च कावेरी सरयूश्च परावती ।  
 धृतपापा च सारथ्या माणा माला मुगन्धिका ॥ ७४ ॥  
 जम्बू तापी वनी गूरा कौशिकी कुमुदा करा ।  
 मन्दाकिनी चन्द्रलेखा चम्पकाऽऽमोदवाहिनी ॥ ७५ ॥  
 ऐरावती कामवेगा मेङ्गला कामचारिणी ।  
 पूर्णभद्रा महामोदा गम्भीरावतीनी स्मृता ॥ ७६ ॥  
 मेघमाला मेघवर्णा सदानीरा च नन्दिनी ।  
 वेदा वेदवती वीणा सीता चित्रोत्पला तथा ॥ ७७ ॥  
 वैत्रवती च वृत्रघ्नी पिप्पला जैञ्जली तथा ।  
 खरजा कुमुदा शिखा कौशिकी नियथा सिता ॥ ७८ ॥  
 वैतरणी सिनीवाली वेगवती पुनः पुनः ।  
 गौरी कृष्णा तथा दुर्गा तुङ्गभद्रोत्पलावती ॥ ७९ ॥  
 स्वर्णा भीमरथी श्रद्धा कृतमाला तरङ्गिणी ।  
 एता देव महानद्यः पावनाः कल्मषापहाः ॥ ८० ॥  
 शक्तिमत्पस्तवेशान उत्सवे त्विह आगताः ।  
 सर्वा एता महादेव पश्य कारुण्यवारिधे ८१ ॥  
 भवन्ति कृतिनः सर्वे त्वयि हृष्टे महेश्वर ।  
 एवमुक्त्वा तदा नन्दी देवदेवस्य चाग्रतः ॥ ८२ ॥  
 पपात दण्डवद्भूमौ भक्त्या परमया युतः ।  
 नन्दिनं तं महात्मानं दृष्ट्वा विश्वेश्वरः प्रभुः ॥ ८३ ॥  
 प्रीतो भूत्वाऽऽह कालारिभिन्दरे चारुकन्दरे ॥ ८४ ॥

इदं यः पठते नित्यं शृणुयाद्वाऽपि भक्तितः ।

प्रीताः स्युर्देवताः सर्वास्तस्याभीष्टफलप्रदाः ॥ ८५ ॥ ३१६६ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे कालाङ्गा-  
चागमनकथनं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

**सूत उवाच**—अथासौ हिमवान्विप्रा देवीमात्मसुतामुमाम् ।

प्रदानार्थं महेशाय संप्राप्तो मन्दरं क्षणात् ॥ १ ॥

आह दृष्ट्वा गिरिं नन्दी देवदेवं पिनाकिनम् ।

वक्तुकामः समायातो भगवान्पर्वतेश्वरः ॥ २ ॥

श्रुत्वा तु वचनं श्लक्ष्णं व्यक्तं नन्दीमुखात्तदा ।

मेघगम्भीरया वाचा महादेवोऽब्रवीदिदम् ॥ ३ ॥

वदत्वयं गिरिश्रेष्ठो हृदये प्रत्प्रतिष्ठितम् ।

कामस्तेस्य चिरादेव भविष्यति न संशयः ॥ ४ ॥

एवमुक्तस्तदा विप्रा देवदेवेन शंभुना ।

उवाच गिरिशार्दूलो भूत्वाऽग्रेऽवनताञ्जलिः ॥ ५ ॥

**हिमवानुवाच**—याऽऽसीत्पूर्वं च ते पत्नी साऽवतीर्णा गृहे मम ।

तामेव तव दानार्थमागतोऽस्मि महेश्वर ॥ ६ ॥

अभी ब्रह्मादयो देवास्त्वत्समीपमिहाऽऽगताः ।

किं गोत्रमिति पृच्छामि ह्येषामग्रे विभो वद ॥ ७ ॥

श्रुत्वा तु भारतीं तस्य विश्वेशो विश्ववन्दितः ।

किं गोत्रमिति संचिन्त्य नोत्तरं प्रससर्ज ह ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा निरुत्तरं शंभुं जहसुर्देवदानवाः ।

एष एव जगन्घोनिगोत्रमस्य कथं भवेत् ॥ ९ ॥

इत्पूचुर्विबुधाः सर्वे हिमवन्तं नगोत्तमम् ।

देवानां च वचः श्रुत्वा गिरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥ १० ॥

विश्वेश्वरं परं धाम परमात्मानमव्ययम् ।

शाश्वतं गिरिशं स्थाणुं विश्वाकारं सनातनम् ॥ ११ ॥

दत्ता दत्ता पुनर्दत्ता उमा सत्येन ते प्रभो ।

ततो महान् रवो विप्रा जपशब्दादिमङ्गलैः ॥ १२ ॥

दुन्दुभीर्नां च वाद्यानामभवत्सागरोपमः ।  
 यहीतेति शिवः प्राह पार्वती पर्वतेश्वरम् ॥ १३ ॥  
 तद्वस्ते भगवाञ्शंभुरङ्गुलीयं प्रवेशयत् ।  
 इमं च कलशं हैममादाय त्वं नगोत्तम ॥ १४ ॥  
 याहि गत्वा त्वनेनैव तामुमां स्नापय त्वरा ।  
 अन्येषां परिहारार्थमेव एव विधिः सदा ॥ १५ ॥  
 जगन्नयेऽपि नूनं स्याद्वज्र तूर्णं नराधिप ।  
 ततस्तुष्टो महाशैलोऽभोजयत्सुसमाहितः ॥ १६ ॥  
 एवं यज्ञरतो विप्रास्तर्पणाय चराचरान् ।  
 अभवद्देवमुदिश्य शंकरं स गिरिस्तदा ॥ १७ ॥  
 तथाऽस्मिन्नन्तरे देवो धर्मकेतुर्महेश्वरः ।  
 उत्थितो मुनिशार्दूलाः समालोक्य च शार्ङ्गिणम् ॥ १८ ॥  
 अभवज्जयशब्दानां तुमुलो हि महान्तदा ।  
 पुष्पवृष्टिनिपातश्च सत्पलोकाद्द्विजोत्तमाः ॥ १९ ॥  
 नानावनाधिपाश्चैव क्रतवश्च मुदान्विताः ।  
 कुसुमैर्दिग्गयन्धाढ्यैर्वृषुर्भैधवृन्दवत् ॥ २० ॥  
 वीणावेणुमृदङ्गानां दुन्दुभीर्नां ततो रवः ।  
 हरिर्विरश्चिशक्राद्याः पूरयन्ति सुरास्तदा ॥ २१ ॥  
 विप्रास्तैलोक्यनादेन वेदघोषं प्रचकिरे ।  
 गायत्री चैव सावित्री रुद्रकन्यास्तथैव च ॥ २२ ॥  
 विद्याधर्योऽथ नागिन्यो देवानां च तथाऽङ्गनाः ।  
 सिद्धकन्या मनोहार्या यक्षकन्यास्तथैव च ॥ २३ ॥  
 मातरः सप्त याश्चैव याश्च नक्षत्रमातरः ।  
 गिरीणां च तथा नार्यः समुद्राश्च सरांसि च ॥ २४ ॥  
 मङ्गलं गापमानाश्च अर्घमष्टाङ्गसंपुतम् ।  
 सुप्रहृष्टा ददुः सर्वा देवदेवस्य पादयोः ॥ २५ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे विप्रा हिमवत्संप्रणोदितः ।  
 मैनाकस्तत्र संप्राप्तो हेमकुम्भकरः सुधीः ॥ २६ ॥  
 सालह्वायनपीत्रस्य गत्वा तस्याग्रतः स्थितः ।  
 तेनापि देवदेवस्य ज्ञापितो गिरिरग्रतः ॥ २७ ॥



तथा देवैः स वेधाञ्जैर्वृतं (?) छत्रेण संयुतम् ।  
 जयेत्युक्त्वा नगेन्द्रस्तु ह्यात्तमालयाम्बरस्तदा ॥ २ ॥  
 उत्थितः सहसा विमाः पुष्पहस्तो महेश्वरः ।  
 मुदा परमया युक्तो भक्त्या चानन्यया द्विजाः ॥ ३ ॥  
 वचैर्नानाविधैश्चक्रे मार्गभृपां तदा गिरिः ।  
 पताकाभिर्जयन्तीभिः स्वरदामैर्दिव्यगन्धिभिः ॥ ४ ॥  
 ध्वजैश्च विविधाकारैः पञ्चवर्णैर्मनोरमैः ।  
 चामरैश्चन्द्ररम्यैस्तु लम्बकैश्च समन्ततः ॥ ५ ॥  
 मुक्तानां प्रकरैश्चैव पुष्पाणां तु तथैव च ।  
 एवमाद्यैरनेकैश्च शोभा कृत्वा नगोत्तमः ॥ ६ ॥  
 स्थितस्तु वीक्षमाणोऽसौ त्रिश्वव्यापिनमीश्वरम् ।  
 संपूर्णचन्द्रवदना मदनानलदीपिताः ॥ ७ ॥  
 शतकोट्योऽप्सराणां तु निर्ययुः समुखाश्च तम् ।  
 हेमपात्रकरासक्ताः पद्मेन्दीवरहस्तकाः ॥ ८ ॥  
 मणिपात्राणि पूर्णानि दूर्वासिद्धार्थकाङ्क्षितैः ।  
 दधिरोचनमादाय व्रीहिभिश्चम्पकैर्षवैः ॥ ९ ॥  
 हरिचन्दनलिप्ताद्वा हरिचन्दनहस्तकाः ।  
 विद्रुमाङ्गुरहस्ताश्च तथैवोत्पलशेखराः ॥ १० ॥  
 चतुर्भ्रुवहस्ताश्च पारिजातकराः परा ।  
 स्वादूदकेन संपूर्णभृङ्गारकरपल्लवा ॥ ११ ॥  
 हावभावविल्लासिन्यो मदनानुरविह्वलाः ।  
 मदनारिं प्रणेमुस्ता गायमानास्त्रिलोचनम् ॥ १२ ॥  
 अथासौ भगवाञ्छ्रुत्वा चान्तर्यामी महेश्वरः ।  
 त्रैलोक्यपतिलके तस्मिन्क्षणादाविर्बभूव ह ॥ १३ ॥  
 ततो धनैर्बहुविधैः पूजयामास पर्वतः ।  
 स्तुत्वा च पूजयित्वा च ननाम च पुनः पुन ॥ १४ ॥  
 गीतैश्च विविधैर्वाक्पैः प्रविवेश हरस्तदा ।  
 भवोऽभवत्तदा बालो ह्यष्टवर्षाकृतिः स्वपम् ॥ १५ ॥

\* कश्चिदाशतपुराणयोरिदं धीकार्यं कारितम् ।

हेमाङ्गो भगवान्शंभुः किरीटी कुण्डली हरः ।  
 सुरासुराश्च विभेन्द्रा दृष्ट्वा रूपं पिनाकिनः ॥ १६ ॥  
 अवलोक्य मुखाऽन्योन्यं जहमुस्ते मुदाऽन्विताः ।  
 आसने हेमजे विप्रा नागारत्नैश्च भूषिते ॥ १७ ॥  
 विवेश भगवान्शूली महादेवो जगत्पतिः ।  
 हरस्य दक्षिणे वेधा वामभागे जनार्दनः ॥ १८ ॥  
 शैलादिरग्रतः शंभोः कालरुद्रश्च सुव्रताः ।  
 रुद्रैर्गणेश्वरैर्देवैः सिद्धैश्च मुनिभिस्तथा ॥ १९ ॥  
 उपविष्टेषु सर्वेषु गन्धर्वाद्याः समन्ततः ।  
 जगुर्गीतं च हिन्दोलं तुम्बुरुर्नारदादयः ॥ २० ॥  
 मत्तमातङ्गगामिन्यो गेयं ताललयान्वितम् ।  
 रम्भाद्याप्सरसः सर्वाः किनर्यो नचतुर्द्विजाः ॥ २१ ॥  
 वीणावह्लकिवेणुनां मृदङ्गानां विशेषतः ।  
 ध्वनिभिर्मनसस्तुष्टिर्जज्ञे सुमनसां तदा ॥ २२ ॥  
 अथ विश्वेश्वरः शंभुर्भूपणं नभसि स्थितम् ।  
 प्रायच्छद्विरिज्जये तदालहादजनकं मुदा ॥ २३ ॥  
 अनेनार्कृता देवि मम योग्या भविष्यसि ।  
 पितुर्देवस्यै यः कोपः पूर्वजस्य वरानने ॥ २४ ॥  
 प्रहास्यसि तमेवाऽऽशु भावं चैव तु तामसम् ।  
 ततः सा पार्वती देवी शृहीत्वाऽऽकाशमण्डलात् ॥ २५ ॥  
 पितुः समीपमंगमद्वत्साभरणमुत्तमम् ।  
 महता ह्युत्सर्वेनाऽऽशु भूषयित्वा जिवां नगः ॥ २६ ॥  
 वस्त्रैराभरणैर्देवी दिव्यैर्वै सिंहवाहिनीम् ।  
 मेनोत्सङ्गतां भूषश्चन्द्रलेखेव तोषदे ॥ २७ ॥  
 दधती निर्वृता देवी वभौ तामरसेक्षणा ।  
 अथ देवैः परिवृतो विष्णवाद्यैश्चिपुरान्तकः ॥ २८ ॥  
 चभ्राम मुनिशार्दूलाः क्रीडास्थानानि कृत्स्नशः ।  
 भगवन्देवदेवेश विश्वेशान्धकसूदन ॥ २९ ॥  
 मणम्य परया भक्त्या शैलादिरिदमब्रवीत् ॥ ३० ॥

नन्दिकेश्वर उवाच-वेदीयमिन्द्रनीलाभा भाति विश्वभरा शिव ।

संयं जलमयी नाथ निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ ३१ ॥

या चेयं परेमा रम्या तोयानां भ्रान्तिकारिणी ।

सेयं भाति महादेव रत्नानीदीदृशी प्रभा ॥ ३२ ॥

इदं च द्वारसंस्थानं दृश्यते लम्बकैर्दृष्टम् ।

कुड्यस्य रत्नविन्यासे लक्ष्यते द्वाररूपता ॥ ३३ ॥

इदं चित्ररथाकारं दृश्यते वनमुत्तमम् ।

प्रतिविम्बं महादेव रत्नभूमेर्न संशयः ॥ ३४ ॥

इदं च भैन्दिराकारं तोयानचयमण्डितम् ।

प्रतिविम्बमिदं चैव दृश्यते नवमण्डितम् ॥ ३५ ॥

या चेयं सागराकारा दृश्यते तोयरूपिणी ।

एषाऽपि परमेशान रत्नभूमिर्जलोपिता ॥ ३६ ॥

यदिदं गगनाभासं मूर्तिद्रव्यैस्विवोजितम् ।

क्रीडामण्डपमेतस्मिन्मदेशे देव तिष्ठति ॥ ३७ ॥

अभ्यराभैर्महारत्नैर्वाह्वदेशे विनिर्मितम् ।

अनेकवाद्यसंयुक्तं रमणीयं ययौ हरः ॥ ३८ ॥

एवं क्रीडति देवेशे सुरासुरमहोरगाः ।

विद्याधरास्तथा यक्षा गन्धर्वाप्सरसादयः ॥ ३९ ॥

दीर्घिकासु तडागेषु नदीषु च हृदेषु च ।

क्रीडावापिषु ते रम्यैर्मन्त्रैर्नाविधैर्भृशम् ॥ ४० ॥

यभ्युर्देवताः सर्वाः क्रीडारतिषु लालसाः ।

अथ संक्रीड्य विश्वात्मा निवृत्तस्तत्प्रदेशतः ।

वेद्याः मभीषमगमस्तूषमानो मुनीश्वरैः ॥ ४१ ॥

मात्स्याऽऽरुद प्रसभं सुरेशस्तदिन्द्रनीलामलवेदिकान्तम् ।

सहस्रपत्रैर्बकुलैश्च नागैः कीर्णं दि पत्काञ्चनपारिजातैः ॥४२॥

ततः प्रविष्टो हरिणाहुचिह्नः सरश्मिजान्नाकुलवेदिकान्तम् ।

विवेश स्रष्ट्यायुतसुभामो वृतो विरञ्ज्यादिहरैः समन्तात् ॥४३॥

\* इत्यतमण्डपमुत्तमं श्रीशे नानि ।

अथोपविष्टं संवीक्ष्य विश्वेशं पर्वतेश्वरः ।

तस्य संस्थाप्य पुरतो देवेशीमब्रवीदिदम् ॥ ४४ ॥

**हिमवानुवाच**—त्वमेवैकः परं धाम अर्धनारीश्वरस्ततः ।

देवतानां हितार्थाय जगतो ह्यर्धतनुः पृथक् ॥ ४५ ॥

दक्षस्य दुहिता देवी जगद्धात्री ह्युमा सती ।

विनिन्द्य च ततो दक्षं त्यक्त्वा देहं निजं पुनः ॥ ४६ ॥

तवैव पत्नी देवेश जाता मम सुता सती ।

ततः श्रुत्वा गिरीन्द्रस्य वचस्त्रिभुवनेश्वरः ।

प्रसन्नो वरदः शंभुरब्रवीत्पर्वतेश्वरम् ॥ ४७ ॥

**ईश्वर उवाच**—जानाम्यहं येन ममैव माया शक्तिर्वरैषा नगराजसिंह ।

संत्यज्य देहं तव धाम्नि जाता योगात्स्वयं चारुशाशङ्कवक्त्रा ॥ ४८ ॥

आचारार्थं गिरिश्रेष्ठ दत्तां गृह्णामि पार्वतीम् ।

अदत्ता यदि गृह्णामि तथा लोकेऽपि वर्तते ॥ ४९ ॥

अथ दिव्योदकैः पूर्णमादाय कलशं गिरिः ।

परिपूर्णस्य नित्यस्य नित्यानुग्रहकारिणः ॥ ५० ॥

प्रक्षाल्य पादौ शिरसा प्रणम्य भृङ्गारमादाय स शैलराजः ।

मुमोच तोयं भवपाणिपथे दत्तेति दत्तेति तदा प्रजल्पन् ॥ ५१ ॥

ततो मङ्गलनिर्घोषः समभूच्चिदिवोकसाम् ।

वीणावेषुमृदङ्गानां काहलानां च निःस्वनः ॥ ५२ ॥

सा हारकण्ठी कटिसूत्रदामा मुभ्रूलता चारुविलोलनेत्रा ।

मेरोपर्यथैवोपरि चन्द्रलेसा तथा बभौ पर्वतराजपुत्री ॥ ५३ ॥

अथ वेद्यां गतो ब्रह्मा विश्वमायां स्मरारणिम् ।

ददर्शोदकपात्रेण विभावसुपुरस्थितः ॥ ५४ ॥

माहेश्वरीं काममयीं दृष्ट्वा तां तु पितामहः ।

अक्षरत्सहसा शुक्रं भग्नकुम्भादिवोदकम् ॥ ५५ ॥

पादेन तन्ममर्दाऽऽशु शुक्रं तत्पन्नसंभवः ।

पञ्चजोऽपि महातेजा देवदेवस्य पश्यतः ॥ ५६ ॥

भैवं मर्देति तं दृष्ट्वा त्रिपुरारिः पितामहम् ।

कुरुष्वेतीति हीवाच भगवानीललोहितः ॥ ५७ ॥

अमोघं तत्तदा विद्याः शुक्रमग्नौ प्रजापतिः ।  
 जुहोति वचनाच्छंभोर्वायेनाऽऽदाय पाणिना ॥ ५८ ॥  
 हवनाच्च ततः प्राप्ताः सवित्तरं विपद्रतम् ।  
 तेजोप्रयाश्च ते सर्वे तपोनिष्ठाः समन्ततः ॥ ५९ ॥  
 अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयस्तूर्ध्वरेतसः ।  
 माने त्वङ्गुष्ठमात्रास्तु जाताह्वय सुवर्चसः ॥ ६० ॥  
 बभूवुस्ते महात्मानः पतङ्गसहचारिणः ।  
 निःस्पृहा रश्मिपाः सर्वे सर्वे ज्वलनसंनिभाः ॥ ६१ ॥  
 ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च मुनयस्तथा ।  
 पिशाचा दानवा दैत्याः किंनराश्च महोरगाः ॥ ६२ ॥  
 विद्याधराश्चाप्सरसस्तथा चान्ये सुरासुराः ।  
 प्रहृष्टाः सर्वे एवैते पार्वत्या हरसङ्गमात् ॥ ६३ ॥  
 मुमोच वृष्टिं क्रतुराद्भुतुष्टः पुष्पैरनेकैर्भ्रमराकुलैश्च ।  
 वाद्यैर्विचित्रैर्वरंशङ्खनादैः सुगीतगानैर्वरमङ्गलैश्च ॥ ६४ ॥  
 वीणारवैर्हुन्दुभिर्वेणुनादैः समन्ततः कर्णसुखं प्रजज्ञे ।  
 आनृत्यतीभिः सुरमुन्दरीभिर्जेगीयतीभिर्वरकिंनरीभिः ॥ ६५ ॥  
 २ दैत्याङ्गनाभिश्च वसीदतीभिः कामापतेऽतीव तदुत्सवं च ।  
 काञ्चीरवेणाय नितम्बिनीनां मनोभिरामेण च नूपुराणाम् ॥ ६६ ॥  
 तासां स्मितेनाय मुनीन्द्रवर्या बभूव कामानलदीपचर्या ।  
 होमावसाने मधुपर्कयुक्तं देवाय तस्मै मधुभाजनं च ॥ ६७ ॥  
 ततो निवेद्य प्रमथाधिपाय चकार तृष्टिं परमां विरञ्चिः ॥ ६८ ॥  
 अथ देवेषु विश्वेशो वरदोऽभूद्विजोत्तमाः ।  
 वरांश्च विविधान्दत्त्वा ब्रह्मादिभ्यो महेश्वरः ॥ ६९ ॥  
 व्यसर्जयत्ततः सर्वांस्थावराञ्जङ्गमांस्तथा ।  
 विसर्जिताः प्रणम्येशं प्रीतिं ते परमां गताः ॥ ७० ॥  
 एवं संक्षेपतो विद्या विवाहो गिरिजापतेः ।  
 कथितो रविणा पूर्वं यथावत्समुदीरितः ॥ ७१ ॥  
 गृणोति श्रद्धया यस्तु पठेद्वा प्रपत्तात्मवान् ।  
 सर्वान्कामानवाप्नोति वर्षादर्वाद्भु संशयः ॥ ७२ ॥

सवपापावानमुक्तस्तेजस्वी प्रियदर्शनः ।

जीवेद्वर्षशतं सांश्रं गच्छेद्ब्रह्मपदं ततः ॥ ७३ ॥ ३२७८ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे साम्बविवाह-  
वर्णनं नामैकोनपष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

मृत उवाच—किवाह्याद्रिमृतां शंभुर्ययौ कैलासपर्वतम् ।

क्रीडां वै वर्षसाहस्रीमकरोत्तत्र शंकरः ॥ १ ॥

गणैर्नानाविधैश्चैव सिंहास्यैः शरभाननैः ।

कैश्चिद्वाप्रमुखैर्भामैः कैश्चिद्गृध्रमुखैरपि ॥ २ ॥

कैश्चिद्भ्रजमुखैरन्यैः कैश्चिन्मृगमुखैरपि ।

कैश्चिद्द्रुमुमुखैर्दीर्घैः कैश्चिद्द्वयमुखैरपि ॥ ३ ॥

कैश्चिच्चित्रमुखैरन्यैः कैश्चिद्द्रुकमुखैरपि ।

मृषकास्यैस्तथा चान्यैर्माजोरवदनैरपि ॥ ४ ॥

सर्पास्यैर्नकुलास्यैश्च जम्बुकास्यैस्तथाऽपरैः ।

शिथुमारमुखैश्चान्यैर्ऋक्षवक्रैस्तथाऽपरैः ॥ ५ ॥

मयूरवदनैरन्यैर्वकवक्रैस्तथाऽपरैः ।

शाखाभृगमुखैश्चान्यैः स्वरास्यैश्च तथाऽपरैः ॥ ६ ॥

अन्यैरसंख्यैः प्रमथैर्जरामरणवर्जितैः ।

नित्यतृप्तैर्निरातङ्कैः कालसंहरणक्षमैः ॥ ७ ॥

सहस्रकोटिसंख्याकैः स्वच्छन्दगतिचारिभिः ।

क्रीडां विधाय भगवान्कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ ८ ॥

तपसा महता शंभुरनुग्रह्य च मन्दरम् ।

कैलासं संपरित्यज्य मन्दरे चारुकन्दरे ॥ ९ ॥

तत्रापि रभमाणस्य गते वर्षसहस्रके ।

देवतानां हितार्थाय प्रकृत्या सह शूलधृत् ॥ १० ॥

\* कैश्चिद्भ्रजमुखैरित्यादिः कैश्चिद्द्रुमुमुखैरित्यन्तः सार्धैश्चोक्तः वक्ष्यतेऽज्ञितपुस्तकयोर्नास्ति ।

† खगसहितपुस्तके विना सर्वेष्वप्यादर्शेषुस्तत्रेणु माजोरवदनैरित्यादि शिशुमारमुखैरित्यन्त शब्दजात नास्ति ।

‡ इदं श्लोकार्थं चसहितपुस्तके नास्ति ।

प्रक्रीडतीह विश्वात्मा कामासक्तश्च सर्वथा ।  
 प्रार्थितोऽहं सुरैः पूर्वं तारकस्य वधेऽसया ॥ ११ ॥  
 मद्भेतसः समुत्पन्नस्तारकं स हनिष्यति ।  
 इति मत्वा महादेवे रममाणो सहोमया ॥ १२ ॥  
 उत्पाताश्च महाघोराः संप्रवृत्ताः मुदारुणाः ।  
 रुधिरास्थीनि वर्षन्ति नदन्तो मेघसंकुलाः ॥ १३ ॥  
 वापवश्च महावेगाः पर्वतांश्चान्यन्ति ते ।  
 विमानानि सुराणां च निपेतुर्वसुधातले ॥ १४ ॥  
 उल्काभिर्गगनं व्याप्तं पतन्तीभिर्द्विजोत्तमाः ।  
 केतवशोदिताः सर्वे जृम्भन्त इव पावकाः ॥ १५ ॥  
 दिग्दाहाश्च महाघोरा दावाग्निरिव संक्षये ।  
 मृत्युकाले यथा जन्तुर्नैव सोरुपमवाप्तुयात् ॥ १६ ॥  
 जगन्नयमिदं कृत्स्नं न लभेत तथा सुखम् ।  
 न वेदाः पठितास्तस्मिन्न विद्या जजपुर्जपम् ॥ १७ ॥  
 पार्वत्पां कम्पमानायां कम्पमाने च अंकरे ।  
 त्रैलोक्यमभवन्नतं कम्पमानं भयातुरम् ॥ १८ ॥  
 कौन्त्यादिकम्पितो देवो विरश्चिर्मुनिभिः सह ।  
 चक्रापुधोऽपि चात्यर्थमिन्द्राद्यैः परिवारितः ॥ १९ ॥  
 ये केचिद्देवगन्धर्वाः सिद्धा गगनचारिणः ।  
 विद्याधराश्च यज्ञाश्च संप्राप्ताश्च वसुंधराम् ॥ २० ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे प्राग्ः अक्रं देवापिसत्तमः ।  
 यथावन्मधुपर्काद्यैः अक्रस्तमभ्यपूजयत् ॥ २१ ॥  
 अत्रवीदेवराजस्तमुपविष्टं महामुनिम् ।  
 त्रिकाल्दशिनं शान्तमात्मनिष्ठ तपोनिधिम् ॥ २२ ॥  
**शक्र उवाच**—उत्पाताश्च महाघोराः संप्रवृत्ता मुदारुणाः ।  
 कारणं वद मे सर्वं शान्तिश्चैव यथा भवेत् ॥ २३ ॥  
**नारद उवाच**—उमया सहै विश्वेशः परं ज्यातिर्महेश्वरः ।  
 अहर्निशमविश्रान्तं युक्त एव प्रवर्तते ॥ २४ ॥

तस्माद्धेतोः प्रवर्तन्त उत्पाता कृत्रहन्किल ।

विघ्नं तस्य प्रकर्तव्यं यदीच्छसि परं सुखम् ॥ २५ ॥

उमागर्भसमुत्पन्नः सर्वस्मादधिको हि सः ।

कथं धारयितुं शक्ता ब्रह्माद्याः समुरासुराः ॥ २६ ॥

जगन्नयमिदं कृत्स्नं धरणी धारयिष्यति ।

नापत्यधारणे शक्ता संजातं शिवयोः खलु ॥ २७ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा शक्रो विस्मयेतां गतः ।

तदा चिन्तार्णवे मग्नो देवैः सह पुरंदरः ॥ २८ ॥

पङ्के गौरिव सीदत्सु देवेष्वथ जनार्दनः ।

उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवानां हितकाम्यया ॥ २९ ॥

**श्रीविष्णुरुवाच-**शृणुध्वं देवताः सर्वाः कामासक्तो न शंकरः ।

युष्माकं हितकामाय भोगयुक्तोऽभवच्छिवः ॥ ३० ॥

स्वतन्त्रशक्तिविश्वात्मा जितकामः स्वभावतः ।

संपूर्णकामः स विभुः कथं कामेन बाध्यते ॥ ३१ ॥

तद्रेतसा समुत्पन्नस्तारकं स बधिष्यति ।

एतस्मात्कारणाद्देवो देव्या युक्तोऽभवत्सुराः ॥ ३२ ॥

किंतु तत्केवलोत्पन्नं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।

तेजो धारयितुं तस्य न शक्यमिति निश्चितम् ॥ ३३ ॥

इदं यत्कार्यमुत्पन्नं व्याधिर्ह्यपि दिवौकसाम् ।

उपेक्षितं न संदेहो हन्यान्नूनं जगन्नयम् ॥ ३४ ॥

यदि तत्केवलो जातो भविष्यति सुरास्तदा ।

असह्यो दुर्धरो घोर इति तथ्यं न संशयः ॥ ३५ ॥

स एव विष्णुर्बलवानिन्द्रश्चैव प्रजापतिः ।

स चाऽऽदित्यः कुबेरश्च ईशानो वरुणस्तथा ॥ ३६ ॥

स यमः स च सोमश्च स वायुः स्वर्गवासिनः ।

स एव सर्वं भविता भवद्भिश्चेदुपेक्षितः ॥ ३७ ॥

दृश्यतेऽत्राप्युपायेश्च कार्यस्यास्य सुरोत्तमाः ।

यस्मादग्निमुखा यूयं तस्मादग्निर्हि नान्यथा ॥ ३८ ॥



यदुग्रं गहनं घोरमप्रधृष्यमगोचरम् ।

हृदि यद्भवतां कार्पमग्निस्तत्साधयिष्यति ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वाऽथ विश्वादिः शङ्खचक्रगदाधरः ।

अश्र्वीत्क्रण्णवत्मानं देवानां सदासि स्थितम् ॥ ४० ॥

**श्रीविष्णुरुवाच**—शृणु मद्बचनं वदन् देवानां यदुपस्थितम् ।

त्वया तत्साधनीयं हि हितार्थं त्रिदिवीकसाम् ॥ ४१ ॥

योऽसौ देवः परं ज्योतिर्नोऽग्नीवोऽविन्दोहितः ।

रमते चोमया साधे चराचरपतिः शिवः ॥ ४२ ॥

भयं तस्मात्समुत्पन्नं कारणाद्भि दिवीकसाम् ।

तस्माद्धिताय गच्छ त्वं महादेवस्य संनिधौ ॥ ४३ ॥

मुयं त्वमेव सर्वेषां कार्याणां चैव साधकः ।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा पावकः केशवात्तदा ॥

उवाचेदं मुनिश्रेष्ठाः श्रीवत्सादितवक्षसम् ॥ ४४ ॥

**अग्निरुवाच**—पदुक्तं भवता देव किं त्वयुक्तं सनातन ।

महेऽस्य रहःस्थस्य प्रवेष्टु नैव सांप्रतम् ॥ ४५ ॥

ध्यानयुक्तो जनः कश्चिन्मन्त्रभोजनतत्परः ।

रहसिस्थोऽथ दानस्थस्तदयुक्तं प्रवेशनम् ॥ ४६ ॥

\*ज्योत्सोपहारयुक्तो वा होमयुक्तोऽथवा भवेत् ।

अर्चनाभिरतः कश्चित्तदयुक्तं प्रवेशनम् ॥ ४७ ॥

प्राकृतस्यापि देवेऽ रहःस्थस्य रमापते ।

तस्मिन्काले सुरेशान गीहितं तु प्रवेशनम् ॥ ४८ ॥

किं पुनर्भगवान्भीमस्तिग्मरश्मिर्भैश्वरः ।

देवानां च हितार्थाय प्रकृत्या सह संगतः ॥ ४९ ॥

नाहं तत्र विशे नूनं त्रिभेमि मधुसूदन ।

आगतं मां समालोक्य क्षणाच्छंभुर्हनिष्यति ॥ ५० ॥

जुगुप्सितमिदं कार्पयिमिति कष्टं भयावहम् ।

विवर्त्ता जननीं देवीं कथं द्रक्ष्यामि केशव ॥ ५१ ॥

\* नक्षपुस्तनयोरेव ध्रुवा नास्ति ।

किं वक्ष्यति प्रविष्टस्य वक्ष्यामि. किमहं विभो ।  
 जरूपयिष्यति मां देवो धिङ्मुखोऽयमिति ध्रुवम् ॥ ५२ ॥  
 यद्भाव्यं तद्भवत्तद्य न करोमि च निन्दितम् ।  
 अग्निना चैवमुक्तस्तु विष्णुर्दानवसूदनः ॥ ५३ ॥  
 भयदं मोहदं श्रुत्वा वाक्यं हृदयकम्पनम् ।  
 उवाच भगवान्विष्णुः पुनर्वाङ्मिति रतुवन् ॥ ५४ ॥  
 त्रैलोक्यरक्षणार्थाय शक्रादीनां च संनिधौ ॥ ५५ ॥  
**विष्णुरुवाच**—यदुक्तं भवता बह्वे सत्यमेतन्न संशयः ।  
 आत्महेतोर्विरुद्धं स्यात्परार्थं नैव दुष्यति ॥ ५६ ॥  
 प्रदिष्टो देवदेवेन संहारार्थं कपर्दिना ।  
 प्रविश त्वमणो रूपमादाय न हि दुष्यति ? ॥ ५७ ॥  
 प्रस्तुताप्रस्तुतं नास्ति तेजोभूर्तेस्तवानघ ।  
 सर्वदा सर्वगस्त्वं हि न क्वचित्प्रतिहन्यसे ॥ ५८ ॥  
 भूतग्रामि समस्तं वै त्वमेको व्याप्य तिष्ठोसि ।  
 उदरस्थः पचस्यन्नं प्राणिनां मेपवाहन ॥ ५९ ॥  
 त्वयैकेन जगत्क्रत्स्नं गोप्यते यदि पावक ।  
 किं न प्राप्तं त्वया ब्रहि दोषः कः स्याद्भुताशन ॥ ६० ॥  
 जुगुप्साऽस्मिन्न कर्तव्या त्वया वै हव्यवाहन ।  
 उत्पन्नस्यास्य कार्यस्य काल एव तवानघ ॥ ६१ ॥  
 त्रिदशाः शर्पां प्राप्ता हुतभुवत्त्वां विभावसो ।  
 अहो ग्रन्थतरश्चासि श्लाघ्यो यदि करिष्यसि ॥ ६२ ॥  
 कुरु कार्यं सुराणां त्वं मग्नानां करुणां कुरु ।  
 सर्वकाले यथा मर्त्या वीक्षमाणास्तु भास्करम् ॥ ६३ ॥  
 तथा तवाऽऽननं बह्वे पश्यन्ति सुरसत्तमाः ।  
 चारुचन्द्रप्रतीकाशं कुण्डलाभ्यामलंकृतम् ॥ ६४ ॥  
 अनेन किं न पर्याप्तं वद नृनं विभावसो ।  
 एवं सर्वोध्यमानोऽग्निविष्णुना द्विजसत्तमाः ॥ ६५ ॥  
 हृदये चिन्तितं तेन यास्यामि हरसंनिधौ ।  
 ततो मनोगतं ज्ञात्वा अभेर्देवास्तदाऽनघा. ॥ ६६ ॥

सेन्द्राः सवरूपादित्याः सयक्षोरगराक्षसाः । ..

तुष्टुवुस्ते शुभैर्वाक्पैः पावकं द्विजसत्तमाः ॥ ६७ ॥ ३३४५ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीक्षीरे सूतशौनकसंवादे साम्बकी-

डादिवर्णनं नाम पष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

देवा ऊचुः—जलभीरो जलोत्पन्न जलाजल जलेचर ।

जलजामल्पत्राक्ष यज्ञदेव हुताशन ॥ १ ॥

ऋष्णकेतो ऋष्णवर्त्मन्स्वर्गमार्गप्रदर्शक ।

यज्ञाहुतिहुताहार यज्ञाहार हराकृते ॥ २ ॥

पूर्णगर्भं गवां गर्भं जय देव महाशन ।

तमोहर महाहार स्वाहाभर्तर्नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥

हृष्यवाहन सप्तार्धे चित्रभानो महाद्युते ।

अनलाग्ने यज्ञमुख जय पावक सर्वग ॥ ४ ॥

विभावसो महाभाग वेदभापार्थभाषण ।

ऋशानो ऋतुसंभारप्रिय विश्वप्रभाविन ॥ ५ ॥

सागराम्बुघृतं देव त्वमश्वमुखसंश्रितः ।

पिचंश्चैवोद्भिरंश्चैव न नृप्तिमधिगच्छसि ॥ ६ ॥

त्वं वाक्येष्वनुवाक्येषु निपत्सूपनिपत्सु च ।

ब्राह्मणा ब्रह्मर्षीनि त्वां स्तुवन्ति त्वत्परायणाः ॥ ७ ॥

तुभ्यं कृत्वा नमो विप्राः स्वकर्मविहितां गतिम् ।

ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राणां लोकान्संप्राप्नुवन्ति च ॥ ८ ॥

\*त्वमन्तः सर्वभूतानां भुक्तं भोक्ता जगत्पते ।

पचसे पचतां श्रेष्ठ त्रील्लोकान्संक्षीप्यंष्यसि ॥ ९ ॥

साक्षी लोकत्रयस्यास्य त्वया तुल्यो न विद्यते ।

शरणं भव देवानां विश्वत्रयमहेश्वर ॥ १० ॥

इत्येवं स्तुयमानोऽसावुत्थाप ज्वलनस्तदा ।

देवान्मदक्षिणीकृत्य ययौ शंभुर्हृदं द्विजाः ॥ ११ ॥

तत्रापश्यत्पतीहारं महादेवसमं वले ।

एजितं सेन्द्रकेर्देवैर्महादेवदिदक्षुभिः ॥ १२ ॥

\* इत्येवमित्युक्तं श्रीगौरय प्रोक्तं नास्ति ।

† असदित्युक्तं श्रीगौरय प्रोक्तं नास्ति ।

कपीन्द्रवन्दनं देवं कुलिशोद्यत्पाणिनम् ।  
 शूलहस्तं महावीर्यं सूर्यायुतमिवोदितम् ॥ १३ ॥  
 नन्दिनं तु तदा दृष्ट्वा पावकश्च द्विजोत्तमाः ।  
 वेगस्तस्यातुलस्तीक्ष्णः सहसैव व्यहन्यत् ॥ १४ ॥  
 तत्रस्थश्चिन्तयामास पश्यामीति कथं हरम् ।  
 नन्दिना द्वारसंस्थेन पुमान्न प्रविशेद्गृहम् ॥ १५ ॥  
 पश्यमानस्य शैलादेः प्रविशे यद्यहं गृहम् ।  
 फलसिद्धिं न मच्छेत्(?) नन्दिना कुपितेन च ॥ १६ ॥  
 एवं चिन्तार्णवे मग्नो यावत्तिष्ठत्यसौ कविः ।  
 द्विजान्नानाविधांस्तावद्गममाणांश्च दृष्टवान् ॥ १७ ॥  
 तान्दृष्ट्वा चिन्तयामास हंसस्य हरसंनिधौ ।  
 रूपं कृत्वा प्रवेक्ष्यामि इत्युपायमचिन्तयत् ॥ १८ ॥  
 आदाय हंसरूपं तु प्रविष्टः पावकस्तदौ ।  
 प्रविश्य शङ्करहितः सूक्ष्मरूपो व्यवस्थितः ॥ १९ ॥  
 पार्वत्या वाहनं सिंहर्षेपश्यच्च विभावसुः ।  
 गोक्षीरधवलाभासं महालाङ्गुलशोभितम् ॥ २० ॥  
 जाज्वलयमाननयनं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ।  
 प्रसारितच्छटाटोपं हुंकारकृतेभूपणम् ॥ २१ ॥  
 दानवानां क्षयकरं देवानामभयप्रदम् ।  
 हुंकारेण ततस्तस्य ज्वलनो बधिरीकृतः ॥ २२ ॥  
 अहोद्दुःखमिदं प्राप्तमिति संचिन्त्य चेतसा ।  
 यदि जीवन्गामिष्यामि सिंहादस्मादहे तदा ॥ २३ ॥  
 तेन पर्याप्तकामोऽहमिति संचिन्त्य निर्गतः ।  
 यत्र देवा महेन्द्राद्याः संस्थिता मेरुमूर्धनि ॥  
 देवाः सर्वे सुसंहृष्टा ऊचुस्तं जातवेदसम् ॥ २४ ॥  
 देवा ऊचुः—अस्मत्कार्यं त्वया वल्ले गत्वा तत्र यथा कृतम् ।  
 तत्सर्वं ब्रूहि नः क्षिप्रं शर्मास्माकं यथा भवेत् ॥ २५ ॥

१ ( ह. ख. ग. घ. ) ०न नः पुमान्प्रवि० २ ( क. ख. ) ०दा । तथा प्रविश्य निःसङ्गः सू०  
 ३ ( ग. ) ०श तत्र निःसङ्गः सू० ४ ( ख. ग. घ. ) ०नयापश्यद्देवाः ५ ( ह. ख. ग. ) ०त  
 भाष० ६ ( ग. ख. ग. घ. ) ०वा उयेन्द्रा० ७ ( ख. ग. ) ०दृष्टाः प्रोचु०

अग्निस्वाच-गतोऽहं तस्य भवनं देवदेवस्य शूलिनः ।

मया नन्दीश्वरो दृष्टो द्वारदेश उपस्थितः ॥ २६ ॥

हंसरूपं ततः कृत्वा प्रविश्यान्तः पुरं सुराः ।

तत्र सूक्ष्मवपुर्भूत्वा यावत्क्षणमहं स्थितः ॥ २७ ॥

तावत्पञ्चाननो दृष्टो गिरिजायास्तु वाहनम् ।

अतिरौद्रो महाकायः प्रलयान्तकसंनिभः ॥ २८ ॥

भीतोऽहं निर्गतस्तस्माददृष्टैव पिनाकिनम् ।

युष्मत्कार्यमकृत्वैव संप्राप्त इह भो सुराः ॥ २९ ॥

पुनर्विचिन्त्यतां कार्यं सर्वेषां वो यथा सुखम् ।

एवं बह्वेर्वचः श्रुत्वा देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ ३० ॥

ययमुनिगणैः सार्धं मन्दरं चारुकन्दरम् ।

तमासाच गिरिश्रेष्ठं प्रियं देवस्य शूलिनः ॥ ३१ ॥

कृताञ्जलिपुटाः सर्वे ह्यस्तुवन्वृषभध्वजम् ॥ ३२ ॥

देवा ऊचुः-ॐ नमः परमेशाय त्रिनेत्राय त्रिशूलिने ।

विंश्रूपाय सुरूपाय पञ्चास्याय त्रिमूर्तये ॥ ३३ ॥

वरदाय वरहीष कूर्माय च भृगाय च ।

नीलालकशिखण्डाय मण्डलेशाय ते नमः ॥ ३४ ॥

विश्वमानाय विश्वाय विश्वेद्यायाऽऽत्मरूपिणे ।

कालघ्नाय मखघ्नाय अन्धकघ्नायै वै नमः ॥ ३५ ॥

नमो मन्त्राय जप्याय कोटिजाप्याय ते नमः ।

ध्यानाय ध्येयरूपाय ध्येयध्यानात्मर्न नमः ॥ ३६ ॥

ईशोऽनीशस्त्वमेवेश अन्तानन्तस्त्वमेव च ।

अव्ययस्त्वं व्ययश्चैव जन्माजन्म त्वमेव च ॥ ३७ ॥

\* नित्यानित्यस्त्वमेवेश धर्माधर्मस्त्वमेव च ।

गुरुस्त्वमगुरुर्देव वीजं वाऽवीजमेव च ॥ ३८ ॥

कालस्त्वभेसि लोकानामकालः परिगीयसे ।

बलस्त्वमबलश्चैव प्राणश्चाप्राण एव च ॥ ३९ ॥

\* कश्चिन्नित्यस्तुत्ययोरयं श्लोको नास्ति ।

१ ( घ. ड. च. ) ०देश व्यग्रान्ति २ ( ख. ग. ) ०८ तदा । ३ ( ल. ग. ) ०या नो य ०।  
 ४ ( क. ख. ) विश्वरूप विश्वाय मण्डलेशाय ते नमः ॥ ३३ ॥ ५ ( ख. ग. ज. ) ०राहाय ।  
 ६ ( क. ख. ) ०य पञ्चास्याय त्रिमूर्तये ॥ ३४ ॥ ७ ( ख. ग. ) ०२ ते ज्ञ ० ८ ( क. ख. ) ०यथ  
 वायस्त्व च वा । ९ ( क. घ. ड. च. छ. ज. स. ) ०या ज्ञोऽना ०।

साक्षी त्वं कर्मणां देव तथाऽसाक्षी महेश्वर ।  
 शास्ताऽशास्ता विरूपाक्ष ध्रुवश्चाध्रुव एव च ॥ ४० ॥  
 संसारी त्वं हि जन्तूनामसंसारी त्वमेव च ।  
 गोप्ता त्वं सर्वभूतानां नास्ति गोप्ता तवेश्वरः ॥ ४१ ॥  
 जीवस्त्वं जीवलीकस्य जीवस्तेऽन्यो न विद्यते ।  
 \*न्यूनातिरिक्तभावेन त्वमायुश्च शरीरिणाम् ॥ ४२ ॥  
 देहिनां शंकरस्त्वं हि न चान्यस्तव शंकर ।  
 अरुद्रस्त्वं महादेव रुद्रस्त्वं घोरकर्मणाम् ॥ ४३ ॥  
 देवानां च महादेवो महांस्त्वत्तो न विद्यते ।  
 कामस्त्वं भविनां सर्वकामदस्त्वं जगत्पते ॥ ४४ ॥  
 अजेयो जपिनां श्रेष्ठो जयरूपस्त्वमेव हि ।  
 पुराणपुरुषस्त्वं हि पुराणोऽन्यो न विद्यते ॥ ४५ ॥  
 व्यालयज्ञोपवीताय सरोजाङ्गाय ते नमः ।  
 नमोऽस्तु नीलप्रीवाय शितिकण्ठाय मीढुपे ॥ ४६ ॥  
 नमः कपालहस्ताय पाशहस्ताय दण्डिने ।  
 नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय च ॥ ४७ ॥  
 ऊर्ध्वमार्गप्रणेत्रे च नमस्ते ह्यूर्ध्वरेतसे ।  
 † क्रोधिने वीतरागाय गजचर्मविगुण्ठिने ॥ ४८ ॥  
 नमो ब्रह्मशिरोघ्नाय नमस्ते रुक्मरेतसे ।  
 नमश्चण्डाय धीराय कमण्डलुनिषङ्गिणे ॥ ४९ ॥  
 नमः प्रचण्डवेगाय क्रोधचण्डाय ते नमः ।  
 वेरण्याय शरण्याय ब्रह्मण्यायाम्बिकापते ॥ ५० ॥  
 सर्वानुग्रहकर्ता त्वं धनदाय नमो नमः ।  
 नमः ससारपोताय अणिमादिप्रदायिने ॥ ५१ ॥  
 ज्येष्ठसामादिसंस्थाय रथंतराय ते नमः ।  
 त्रिगाथाय त्रिमात्राय त्रिमूर्ते त्रिगुणात्मने ॥ ५२ ॥

\* न्यूनातिरिक्तत्वाद् न विद्यते इत्यन्त श्लोचद्वयं गद्यसहितपुस्तकयोरेवास्ति ।

† क्रोधिन इत्याद् रुक्मरेतस इत्यन्त शब्दजात घसीततपुस्तके नास्ति ।

१ ( क. ख ग ज.स ) ० वमधु० २ ( ख ग ) ० यशान्ताय । ३ ( घ. अ.स. ) इव ज्ञान०  
 ( ख. ग ) त्वं यशदा० ४ ( क घ ड च छ. ) ० षष्ठासाद० ५ ( ट. घ. छ. ) त्रिगाथाय  
 त्रिगाथश्री त्रिमू०

त्रिवेदिने त्रिसंध्याय त्रिशून्याय त्रिवर्मणे ।  
 त्रिदेहाय त्रिकालाय त्रिशक्तिव्यापिने नमः ॥ ५३ ॥  
 शक्तित्रयविहीनाय शक्तित्रययुताय च ।  
 शक्तित्रयात्मरूपाय शक्तित्रयधराय च ॥ ५४ ॥  
 योगीशाय विपद्नाय विजयाय नमो नमः ।  
 नमस्ते हरिकेशाय लोकपालाय दण्डिने ॥ ५५ ॥  
 हलीशाय प्रमेयाय कुलीशाय तु चक्रिणे ।  
 नमो विन्दुविसर्गाय नादायानादधारिणे ॥ ५६ ॥  
 नाडीस्थाय च नाड्याय नाडीवाहाय वै नमः ।

\* नमो गायत्रीनाथाय गायत्रीहृदयाय ते ॥ ५७ ॥  
 नमो गायत्रीगोप्त्रे च गायत्र्याय नमो नमः ।  
 य इदं पठते स्तोत्रं गीर्वाणैः समुदीरितम् ॥ ५८ ॥  
 यावज्जीवकृतैः पापैर्मुक्तो याति परं गतिम् ।  
 एव स्तुतः सुरैः शंभुः प्रसन्नो वरदोऽभवत् ॥ ५९ ॥  
 वरं वृणीध्वं हे देवा इत्युवाच महेश्वरः ।  
 अथ तं वरदं ज्ञात्वा शंभुमग्निमुखाः सुराः ॥ ६० ॥  
 ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे भयं त्यक्त्वा द्विजोत्तमाः ।

देवा ऊचुः—यदि तुष्टोऽसि विश्वेश देहीमं वरमुत्तमम् ॥ ६१ ॥

गिरिजाकुक्षिसंभृतः पूत्रो मा भूत्तवानघ ।  
 एवमस्त्वित्यसौ शंभुः पुनरुक्त्वा ततो वचः ॥ ६२ ॥  
 नाहं रेतो वृथा स्कन्दे त्रैलोक्यक्षयकारकम् ।  
 वृथा शुक्रे मदीये तु त्रैलोक्यं भस्मसाद्भवेत् ॥ ६३ ॥  
 हिताय तस्माल्लोकानां यम रेतो दिवोकसः ।  
 शान्त्यर्थं चैव युष्माभिः शीघ्रमेव प्रयुज्यताम् ॥ ६४ ॥  
 एवं शंभोर्वचः श्रुत्वा देवास्ते भयविह्वलाः ।  
 सलोकेशाः सगोविन्दा न किञ्चिदद्भुवन्द्भिजाः ॥ ६५ ॥  
 अथ देवेषु सीदत्सु वद्विर्गौरिव कर्दमे ।  
 प्रसार्यं स्वाञ्जलिं शंभु रेतो मुञ्चेति चाववात् ॥ ६६ ॥

\* नमोनायत्रीनायाथेयादिनमो नम इत्यन्त शब्दजात यश्चमशितयुस्तवशोर्नास्ति ।

देवदेवामृतं दिव्यं हस्ताभ्यां मम शंकर ।  
 शीघ्रमेव प्रयच्छस्व पिवन्तु सुरपुङ्गवाः ॥ ६७ ॥  
 ततो लिङ्गाद्विनिष्क्रान्तं चन्द्रविम्बात्सुनिर्मलम् ।  
 जातीनीलोत्पलामोदं परणौ वह्नेर्देवौ शिवः ॥ ६८ ॥  
 कराभ्यां पतितं रेतस्तदाऽभूत्पावकस्य वै ।  
 पपौ वह्निस्ततः शुक्रं ज्वलन्तं भास्करप्रभम् ॥ ६९ ॥  
 सुधेति मनसा मत्वा हृष्टात्मा मुदयाऽन्वितः ।  
 अथ पीते तदा शुके वह्निना मुनिपुङ्गवाः ॥ ७० ॥  
 रेतःपातेन संतर्प्य स देवासुरपूजितः ।  
 विसृज्य तांस्तु भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७१ ॥  
 तदा हविर्भुजं देवं सेन्द्रा ब्रह्मपुरोगमाः ।  
 यथाऽऽगता ययुस्तत्र पूजयित्वा दिवोकसः ॥ ७२ ॥  
 रेतसा दह्यमानोऽग्निः पातालात्सुतलं गतः ।  
 ततो विवेश गिरिशो यत्राऽऽस्ते पार्वती शिवा ॥ ७३ ॥  
 उवाच पार्वतीं शंभुः प्रहसन्कमलेक्षणाम् ।  
 ईश्वर उवाच—शृणु देवि महाभागे यद्वृत्तं तद्वर्षाम्यहम् ॥ ७४ ॥  
 स्वतन्नकामाऽसि शिवे यथाऽहं वरवर्णिनि ।  
 देवाभ्यच्छरणं प्राप्ता न चाहं शरणं त्यजे ॥ ७५ ॥  
 गोप्या मया सदा कान्ते महादेवो यतः स्मृतः ।  
 भविष्यति महाभागे पुत्रस्तव पट्टाननः ॥ ७६ ॥  
 किं त्वौत्सस्तु मुश्रोणि देवैर्नेष्टस्तवांशतः ।  
 तस्माच्छुद्धं मया रेतो मुखे वै जातवेदसः ॥ ७७ ॥  
 वह्निर्कृत्स्नगतं रेतो गतं देवान्विभागशः ।  
 यच्छेपमुदरे वह्निस्तद्गङ्गायां प्रदास्यति ॥ ७८ ॥  
 ततः साऽपि विदहन्ती मम तेजः प्रतापवत् ।  
 कृत्तिकाः पट्ट समालयाता गङ्गायां स्नातुमागताः ॥ ७९ ॥  
 तामु गङ्गाविनिक्षिप्तं मम रेतस्तदद्भुतम् ।  
 ततरताः कृत्तिकास्तब्धा देवि मां शरणं गताः ॥ ८० ॥



अनुग्रहान्मया तासामिदमुक्तं तदा शिवे ।  
 ममाऽऽदेशाद्गताः सर्वाः शरधानवनं शुभम् ॥ ८१ ॥  
 मोचयिष्यन्ति ता गर्भं देवाश्च कमलेक्षणे ।  
 वचनान्मम सुश्रोणि गर्भशलयं वरानने ॥ ८२ ॥  
 ततस्ते भविता पुत्र एकीभूत्वा स्वतेजसः ।  
 बालसूर्यापुतः प्रख्यो बालेन्दुभ्रूलताङ्कितः ॥ ८३ ॥  
 आग्नेयो वह्निजो देवो गाङ्गेयः कृत्तिकासुतः ।  
 स्कन्दो गुहस्तथा पुत्रो नामभिस्ते भविष्यति ॥ ८४ ॥  
 एवं शंभोर्वचः श्रुत्वा प्राह देवी गिरीन्द्रजा ।  
 मम कुक्षिसमुत्पन्नं यतो नेच्छन्ति पुत्रकम् ॥ ८५ ॥  
 अतः पुत्रविहीनास्ते भविष्यन्ति सुरादयः ।  
 यो हि नन्दी महावीर्यः सुरासुरमहोरगैः ॥ ८६ ॥  
 दुर्जयः सर्वभूतानां योगी योगबलान्वितः ।  
 प्रविश्यान्तःपुरे वह्निर्दृष्ट्वा मां बलवज्जिताम् ॥ ८७ ॥  
 यस्माद्गुपेक्षितस्तस्मान्मनुष्पत्वं प्रयातु सः ।  
 शापं श्रुत्वाऽथ शैलादिवेज्जेणेव ह्यो गिरिः ॥ ८८ ॥  
 न्यपतद्योगिनामग्र्यो ज्ञानमूर्तिधरो द्विजाः ।  
 पुनश्च शंभोर्वचनाच्छैलादिमनुग्रहं च ॥  
 समाल्लिङ्ग्य महादेवं स्थिता देवीति नः श्रुतम् ॥ ८९ ॥ ३४३ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरै सूतशौनकसंवादे पावकस्तुत्यादि-  
 कथनं नामैकपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६१० ॥

**ऋषय ऊचुः**—बह्वै संतर्पिते सूत रेतसा त्रिदिवीकसः ।

सगर्भाः खलु संजाता देवदेवेन शंभुना ॥ १ ॥

सौख्यं कथमवापुस्त उदरस्थेन रेतसा ।

किमकुर्वस्तदा सर्वे नारायणपुरोगमाः ॥ २ ॥

गर्भनिष्क्रमणं तेषामुत्पन्नेन च किं कृतम् ।

एतत्सर्वं समासेन ब्रूहि नः सूत पृच्छताम् ॥ ३ ॥

**सूत उवाच**—बह्वै (?) संतर्पितास्तेन रेतसा त्रिदिवीकसः ।

रेतसा चोदरस्थेन संतर्पितास्ते सुरादयः ॥ ४ ॥

दशपञ्चसहस्राणामतीतेषु द्विजोत्तमाः ।  
 वर्षाणां च तथाऽष्टौ च गृहगर्भा दिवोकसः ॥ ५ ॥  
 दुःखिताः पार्वतीकान्ते शंकरं शरणं ययुः ।  
 ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ ६ ॥  
**देवा ऊचुः**—भगवन्पदिदं दुःखं गर्भजं देहशोषणम् ।  
 यथा नश्यति देवेश तदुपायं कुरु प्रभो ॥ ७ ॥  
 वह्निना पीतमात्रेण रेतसां तव शंकर ।  
 वयं सगर्भाः संजाता गर्भकाले च तोषदाः ॥ ८ ॥  
 \*उपहास्यमिदं देव पुंसां यद्गर्भसंभवः ।  
 सर्वे वै भृशमुद्विग्रास्तव तेजोवशाद्विभो ॥ ९ ॥  
 दह्यमाना महादेव नरके पापिनो यथा ।  
 शरणं भव देवानां करालम्बं दृदस्व नः ॥ १० ॥  
 दुःखोदधौ प्रदुस्तारे प्रणतार्तिविनाशन ।  
 †एवं श्रुत्वा तु वचनं देवानां पार्वतीपतिः ॥ ११ ॥  
 †ईषद्विहस्य भगवानुवाचेदं सुरेश्वरः ॥ १२ ॥  
**ईश्वर उवाच**—भगद्विरीदृशं कार्पमिष्टं वै सुरपुङ्गवाः ।  
 नेष्टं देव्योदरस्थं हि तस्माद्गर्भदशां गताः ॥ १३ ॥  
 इदानीं यत्प्रकर्तव्यं शृणुध्वं तत्सुरोत्तमाः ।  
 वह्निं ययं पुरस्कृत्य मेरुं व्रजत मन्दरात् ॥ १४ ॥  
 शरधानवने ययं हृदोत्सङ्गे प्रसूयत (?) ।  
 निःसरिष्यत्पसन्देहं ततः सौरुष्यमवाप्स्यथ ॥ १५ ॥  
 ततः शंभोर्वचः श्रुत्वा नारायणपुरोगमाः ।  
 अग्निमन्विष्य च ययुर्मेरुं गिरिवरोत्तमम् ॥ १६ ॥  
 तस्य चोत्तरदिग्भागे शरधानवने शुभे ।  
 उपविश्य महात्मानो मध्ये संस्थाप्य वेधसम् ॥ १७ ॥  
 नारायणं पुरस्कृत्य प्रसूताः सर्वदेवताः ।  
 गर्भशल्यविनिर्मुक्ता जातास्ते सुखिनो द्विजाः ॥ १८ ॥

\* वसङ्गितपुस्तकेषु भोर्भा नालि ।

† एव श्रुत्वेत्यादि सुरेश्वर इत्यन्त इन्द्रजान पञ्चसङ्गितपुस्तकयोर्नीतिम् ।

शार्वेण तेजसा तेन रक्षितो मेरुपर्वतः ।  
 ततः काञ्चनतां प्राप्तः सशैलवनकाननः ॥ १९ ॥  
 शार्वं तेजो धृतं यस्माद्देवैर्विद्विपुरोगमैः ।  
 तस्माज्जरादिभिर्मुक्ता अमरोश्च सुरोत्तमाः ॥ २० ॥  
 सिद्धाश्च मुनयश्चैव ये केचित्तत्र संस्थिताः ।  
 नृणगुल्मलताशैव जलस्थलरुहाश्च ये ॥ २१ ॥  
 सर्वे काञ्चनसंकाशाः संजातास्तत्रभावतः ।  
 पार्श्वं मेरोर्विनिर्भिद्य शंभोस्तेजो विनिर्गतम् ॥ २२ ॥  
 गङ्गायां निहितं यच्च तदेकस्थंमभूद्द्विजाः ।  
 अथ देवो महादेवस्तेजोराशिर्मापतिः ॥ २३ ॥  
 गोपयामास तत्तेजः पिङ्गलं प्रेक्ष्य शंकरः ।  
 गोप्यमाने तु तस्मिंश्च मेरो र्छर्षायुतप्रभः ॥ २४ ॥  
 वर्षाणां च सहस्रेण कठिनं स्कन्दतां गतः ।  
 स्कन्द इत्युच्यते तेन तदाप्रभृति सुव्रताः ॥ २५ ॥  
 \*हराज्जातो यतस्तेन कुमार इति कथ्यते ।  
 स्कन्दः कुमारः पद्मत्रस्तथा द्वादशलोचनः ॥ २६ ॥  
 भुजैर्द्वादशभिश्चैव शोभमानोऽभवत्तदा ।  
 ईशादेशात्पुनः स्नातुं कृत्तिकाः परमोज्ज्वलाः ॥ २७ ॥  
 ताभिः क्षीरं यतो दत्तं कार्तिकेय इति स्मृतः ।  
 गर्भपङ्कविलिम्बाङ्गो गङ्गायां स्नापितः प्रभुः ॥ २८ ॥  
 तत्रचामीकराभासः शरधानवने तदा ।  
 नाम्नां सहस्रेण तदा कुमारो वेधसा स्तुतः ॥ २९ ॥  
 मुमोच नादमुत्थाय सर्वभूतभर्षकरम् ।  
 पातालं भेदयित्वा तु तच्छृङ्गं शतधा कृतम् ॥ ३० ॥  
 सिंहादयोऽपि तत्रस्थास्तेन नादेन सूदिताः ।  
 ततस्तं क्रीडमानं तु दृष्ट्वा देवं शिवात्मजम् ॥ ३१ ॥  
 पिङ्गलो देवदेवेशं ज्ञापयामास शंकरम् ।  
 पश्य त्वं देवदेवेश क्रीडमानं कुमारकम् ॥ ३२ ॥  
 सूर्यायुतप्रतीकागमात्ममूर्तुं पठाननम् ।

\* इमाहापुराणेश्वर्येण शोको न विद्यते ।

ज्ञापितः पिङ्गलेनेशो वाक्यं देव्यै मुदावहम् ।  
 वरो वरेण्यो वरदो विश्वाकार उवाच ह ॥ ३३ ॥  
 ईश्वर उवाच—गच्छाव एहि देवेशि मेरौ यत्र सुतस्तव ।  
 पश्यावस्तं वरारोहे कुमारं तु पठाननम् ॥ ३४ ॥  
 पुरा त्वपेष्टं कनकावभासं पश्याद्रिजे मानसराजहंसम् ।  
 प्रधावमानं शतसूर्यकल्पं पठाननं कार्मुकपाणिमग्रे ॥ ३५ ॥  
 समागतौ स ज्वलनोऽथ दृष्ट्वा त्रिलोकनाथो जगतः प्रदीपौ ।  
 उवाच बह्विर्वरदं कुमारं हराम्बिके द्वौ पितरौ तवैतौ ॥ ३६ ॥  
 त्वामागतौ द्रष्टुमनन्तवीर्यं ब्रजाश्रयेति प्रमथाधिनाथौ ।  
 गतोऽथ बह्वैर्वचनं निशम्य ततः सुतत्वाद्विरिजाङ्गगोऽभूत् ॥ ३७ ॥  
 तं सा पिवन्तं मुहुरङ्गसंस्थमनृप्यमानं कलहंसनादिनी ।  
 उमाङ्गसंस्थो मदनारिसूनुः करेण तस्यास्तिलकालकौ तु ॥ ३८ ॥  
 ममर्दं शंभोश्च भुजंगहारं जग्राह चन्द्रं स कपर्दसंस्थम् ॥ ३९ ॥  
 पञ्चम्यां स्थापितः सोऽथ पेष्यां पष्ठीप्रियो गुहः ।  
 चलुष्पादवतीं स्पक्त्वा त्रैलोक्यं हन्तुमुद्यतः ॥ ४० ॥  
 अबोधयत्तदा बालो जन्तून्स्थावरजङ्गमान् ।  
 कचिच्छृङ्गं गिरैः शौर्पान्नयत्याशु समानतोम् ॥ ४१ ॥  
 कचित्सिंहान्समाकृष्य पातयामास भूतले ।  
 आरुर्ह्यभ्यहनत्पृष्ठे (?) तानेव भ्रामयन्पुनः ॥ ४२ ॥  
 कचिन्नागौ गृहीत्वा तु कराभ्यां संमुखाबुभौ ।  
 ओस्फोटयत्तदाऽन्योन्यं कुम्भाभ्यां स च लीलया ॥ ४३ ॥  
 समुत्पत्य समादाय खेचराणामुमाभुतः ।  
 चिक्षेप सहसा बालो विमानान्पवनीतले ॥ ४४ ॥  
 पुनरुत्पत्य वेगेन प्रेक्ष्यमाणः स्वमण्डले ।  
 मार्गं रुरोध सूर्येन्द्वोर्ग्रहाणां च तथैव सः ॥ ४५ ॥  
 उत्पाद्य मेरुशृङ्गाणि इतश्चेतश्च सोऽक्षिपत् ।  
 पर्वतांश्च विशेषेण नद्यश्चोन्मार्गतोऽनयत् ॥ ४६ ॥  
 आसितं तु जगत्सर्वं दामोदरपदत्रये ।  
 ततस्ते भुशमुद्दिग्वाः शक्रं शत्रुप्रतापनम् ॥ ४७ ॥

१ ( ड. च. छ. ) ० विश्वका० २ ( घ. ड. च. छ. ) ० र्यं मद्रावल् वै प्र० ३ ( ल. ड. )  
 ० रेतस्य नयथा ४ ( घ. ड. च. छ. ज ) ० श्यायाहृ० ( इ. झ. ) ० मायाह तद्वृष्टं ताया ५ ( व. ग. )  
 नारपालय०

ऊचुर्गत्वा द्विजश्रेष्ठा भूता वाक्यमिदं तदा ।  
 अपमर्कापुत्रप्रख्यो बालो नो हन्ति वृत्रहन् ॥ ४८ ॥  
 तवैष राज्यहर्ता वै भविष्यति न संशयः ।  
 पराक्रमाद्भ्रालाच्छक्र तथोत्साहाच्च तेजसः ॥ ४९ ॥  
 नूनं शतगुणेनायमधिकश्चेह दृश्यते ।  
 यदि सूदयसे नाथ तत्त्वं सुखमवाप्स्यसि ॥ ५० ॥  
 केरिष्यसि वचोऽस्माकं तव राज्यं भविष्यति ।  
 उपेक्षा नैव कर्तव्या शिशुं मत्वा पुरंदर ॥ ५१ ॥  
 एतद्विचार्य यत्नेन ततो बालं निपूदय ।  
 एवमुक्तस्ततस्तैस्तु भूतव्रातैः पुरंदरः ॥  
 उवाच वचनं शृङ्गणं तेषां धर्मपरायणम् ॥ ५२ ॥  
**इन्द्र उवाच**—कथमुक्तमिदं भूता बालस्य हननं प्रति ।  
 धर्मघ्नं पापसंघातं कीर्तिघ्नं वै चराचरे ॥ ५३ ॥  
 श्रयतामभिधास्यामि धर्मशास्त्रस्यं निश्चितम् ।  
 ऋषिभिश्च पुराऽऽख्यातं पुराणेषु चराचराः ॥ ५४ ॥  
 आतुरं भीरुमुद्दिग्ममेकस्थं शरणागतम् ।  
 त्रियमप्यथवा बालमन्धं पङ्कं तपस्विनम् ॥ ५५ ॥  
 विलपन्तं तपोन्मत्तं विश्वस्तं ब्राह्मणं तथा ।  
 पतितं प्रपलापन्तं कामासक्तं निरायुधम् ॥ ५६ ॥  
 नम्रं दीनं तथा वृद्धं नसरोमसमन्वितम् ।  
 मुक्तकेशं तथा मत्तं सुप्तं च भुवनीकंसः ॥ ५७ ॥  
 सूदधिष्यन्ति ये नूनं सूदास्ते नरकाणवात् ।  
 अनुत्थाना भविष्यन्ति गर्तस्थः कुञ्जरो यथा ॥ ५८ ॥  
 तस्माद्भ्रजध्वं शरणं यत्र शंभुसुतो गुहः ।  
 नाहं बालध्वं कर्तुमुत्सहे सचराचरे ॥ ५९ ॥  
 एवमुक्ते तु शक्रेण भूतास्ते भृशदुःखिताः ।  
 क्रोधसंदीपनं वारुणं पुनर्युश्चराचराः ॥ ६० ॥

\* इत्यस्माद्भ्रजध्वं शरणं यत्र शंभुसुतो गुहः ।

† इत्यस्माद्भ्रजध्वं कर्तुमुत्सहे सचराचरे ।

भूता ऊचुः—गर्भो दितेर्यथा शक्र संरम्भात्स्रदितस्त्वया ।

तदा नीतिर्गता कुत्र दारुणे गर्भपातने ॥ ६१ ॥

अशक्यमिति मत्त्वैव नीतिमानसि मानद ।

अशक्यकर्मणि विभो नीतिमान्पुरुषो भवेत् ॥ ६२ ॥

कश्च नाम नरः शूरो यो बालं योधयेद्गणे ।

अपि शक्रशतैस्तस्य वज्रकोटिनिपातनैः ॥ ६३ ॥

अप्येकमपि रोमाग्रं पातितुं नैव शक्यते ।

एवमुक्तस्ततस्तेस्तु भूतत्रातैः पुरंदरः ॥ ६४ ॥

आज्यधाराभिपिक्तोऽग्निर्यथैव प्रज्वलंस्तथा ।

उवाचेदं वचस्तान्स क्रोधवह्निप्रदीपितः ॥ ६५ ॥

वज्रमुद्यम्य हस्तेन वृत्रहां कुलिशायुधः ॥ ६६ ॥

इन्द्र उवाच—पुरा मया यथा गर्भो घातितश्च चराचराः ।

दितेः कार्यं समाविश्य तथेदानीं निहन्यसे ॥ ६७ ॥

अथ गत्वा हनिष्यामि पतङ्गमिव वह्निना ।

वज्रं हस्ते समादाय आहवे प्रसहेत कः ॥ ६८ ॥

एवमुक्त्वा ततः शक्रः क्रोधानलसमीरितः ।

आज्ञापयत्तदा विप्राः साध्यान्देवान्दिवाकरान् ॥ ६९ ॥

शरधानं गमिष्यामि वधार्थं बालकस्थं च ।

हंसकुन्देन्दुवर्णाभिं चतुर्दन्तं महागजम् ॥ ७० ॥

आनयध्वं ममाग्रे तु करीन्द्रं मम वल्लभम् ।

जलधेरिव गम्भीरं दीर्घहस्तं घनस्वनम् ॥ ७१ ॥

दैत्यदानवरक्तेन छिन्नदंष्ट्रं मघावहम् ।

तदादेशात्सुरैस्तूर्णं सर्वायुधसमन्वितः ॥ ७२ ॥

निवेदितः स शक्राय तमारुह्य पुरंदरः ।

विश्वैर्देवैश्च साध्वैश्च वसुभिश्च मरुद्गणैः ॥ ७३ ॥

आदित्यैरश्विनीभ्यां च ययौ स्कन्दवधाय सः ।

वियन्मण्डलमास्थाय स्तूयमानश्चराचरैः ॥ ७४ ॥

वृत्यमानाप्सरोभिश्च वाद्यमानैश्च किंनरैः ।

गीयमानश्च गन्धर्वैः सुगीतैर्गातशालिभिः ॥ ७५ ॥

नदद्भिश्च महासिंहैर्गर्जद्भिश्च गजोत्तमैः ।

हरिभिहेपमाणैश्च वायुवेगैर्महारथैः ॥ ७६ ॥

पताकाभिर्जयन्तीभिर्ध्वजैश्छत्रैश्च चामरैः ।

एवमाद्यैरनेकैश्च नन्दीश्वर इवापरः ॥ ७७ ॥

दोधूपमानश्चमरैश्च दिव्यैर्जेगीपमानः सुरकिंनरीभिः ।

पेषीयमानः सुरसुन्दरीभिः कामातुराभिर्नयनैरजस्रम् ॥ ७८ ॥

संपूज्यमानो मुनिसिद्धसंघैर्मुदान्वितो वज्रधरः किरीटी ।

कुमारमुद्दिश्य गतोऽथ वेगाद्दरिर्हरिर्वै भनुजान्यथेव ॥ ७९ ॥ ३५१३ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे परमेश्वर-

सुरसंवादादिकथनं नाम द्विपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

मृत उवाच-एवं गत्वा सहस्राक्षो यत्राऽऽस्ते पार्वतीसुतः ।

वालं सूर्यायुत्प्रख्यं तमपश्यच्छचीपतिः ॥ १ ॥

प्रलयाग्निचपाकारं दृष्ट्वा नारदमब्रवीत् ॥ १ ॥

इन्द्र उवाच-इदं किं भाति देवर्षे मेरोः शतगुणोच्छ्रयम् ।

तेजसा व्याप्तभुवनं सर्वभूतभयंकरम् ॥ २ ॥

एवं शक्रवचः श्रुत्वा भगवान्पद्मसुतः ।

ऐरावतगजारूढं शचीपतिमथाब्रवीत् ॥ ३ ॥

नारद उवाच-योऽसौ देव त्वया न्यस्तो गर्भश्चैव सहामरैः ।

तस्यैवैप प्रभावोऽयं नूनं देव शतक्रतो ॥ ४ ॥

भास्कराणां न पुञ्जोऽयं नैव पर्वतसंज्ञयः ।

वालेनोत्पाद्यमानेन सह देवैश्च रक्षितः ॥ ५ ॥

अधो योजनसंख्याभिः सहस्राण्येव षोडश ।

चतुरशीतिरुत्सेधो द्वात्रिंशद्विस्तरः स्मृतः ॥ ६ ॥

यद्गिरिः सकलोऽयं तु मेरुः काञ्चनतां गतः ।

तत्तेजः स्कन्दतां पातं सहस्राब्दैर्गतेस्तथा ॥ ७ ॥

चतुर्थ्यां साकृतिर्देव यश्चम्पामङ्गवांस्ततः ।

पृष्ठ्यां पद्भ्यां यथा वैप त्रैलोक्यं विजयिष्यति ॥ ८ ॥

त्वया सहायं सप्तम्यां पालयिष्यति वा पुनः ।

त्वं तु नूनं न शक्तोऽसि जेतुं वर्षशतैरपि ॥ ९ ॥

कुमारं वरदं देवं पार्वत्यानन्दवर्धनम् ।  
 नानाप्रहरणोपेतं नानाभरणभूषितम् ॥ १० ॥  
 मातृभिर्गणवृन्दैश्च सेव्यमानमुमासुतम् ।  
 एवं संजल्पमानोऽसौ जम्भारिर्बालकं प्रति ॥ ११ ॥  
 वज्रं मुमोच वृत्रारिः स्फुलिङ्गोद्गारिभीषणम् ।  
 वृणवन्मन्यमानोऽसौ वज्रं तत्पार्वतीसुतः ॥ १२ ॥  
 शरेणैकेन विव्याध पपातं च स मूर्च्छितः ।  
 पुनरन्यं समादाय शरं ज्वलनसंनिभम् ॥ १३ ॥  
 छत्रं ध्वजं पताकाश्च हरेश्चिच्छेद पण्मुखः ।  
 विभेदान्पेन तीक्ष्णेन हस्तं वै वज्रिणो गुहः ॥ १४ ॥  
 शरेणाऽऽदित्यतुल्येन रुरुं शंभुर्पथाऽऽहवे ।  
 पुनर्बाणं समादाय तं जघानं गतक्रतुम् ॥ १५ ॥  
 अपरेण तु तीक्ष्णेन मुकुटं तु तथा हरेः ।  
 शरेण वह्नितुल्येन चिच्छेद च स लीलया ॥ १६ ॥  
 यमं च पञ्चभिर्बाणैर्निऋतिं दशभिर्गुहः ।  
 दशपञ्चशरैराशु वरुणं च विभेद सः ॥ १७ ॥  
 विंशत्या वापुदेवं च रविं च दशपञ्चभिः ।  
 त्रिंशद्भिः सोमराजानं ताडयित्वा रणे पुनः ॥ १८ ॥  
 शक्रं पञ्चशतैराशु शरैश्च प्राणहारिभिः ।  
 अन्यानपि सुरान्स्कन्दस्त्रिभिर्द्विपञ्चभिः शरैः ॥ १९ ॥  
 शूरो नादं प्रमुञ्चन्वै शक्रं दुद्राव शंभुजः ।  
 वसुभिश्च तथाऽऽदित्यैर्मरुद्भिश्च महाबलैः ॥ २० ॥  
 वृत्तः शस्रकैर्बालः सिंहेः शरभराडिव ।  
 ततस्तानागतान्दृष्ट्वा देवान्शंकरवल्लभः ॥ २१ ॥  
 केसरीव मृगान्धुद्रान्दुद्राव च दिवौकसः ।  
 पुनः स्कन्दं सहस्राक्षो वज्रेण तमताडयत् ॥ २२ ॥  
 ताडिते तु ततस्तस्माद्दुत्पन्नाश्चारुमूर्तयः ।  
 त्रयो देवाश्च वेदाश्च लोकाश्चाग्निदिवाकराः ॥ २३ ॥

\* पद्यपद्यसप्तशतपुस्तकेषु इति या इत्यादि तीक्ष्णेनेत्यन्तं चन्द्रजातं नास्ति ।

१ ( व. प. उ. ) देव पा० २ ( व. श. ) ०५ एतद् मू० ३ ( व. उ. प. ए. उ. )  
 ०५५५०१



ततश्चेदं सहस्राक्षं बृहद्गुरुबृहस्पतिः ।

देवमन्त्री महामाज्ञो बृहस्पतिरथाश्रवात् ॥ २४ ॥

अलं युद्धेन देवेश महादेवस्य सूनुना ।

हितं तवोपदेश्येऽहं सहस्राक्षं शृणुष्व तत् ॥ २५ ॥

यदीप्सति सुखं भोक्तुं कुरुष्व वचनं मम ।

अनेन सह संभीतिं क्रत्वा राज्यमकण्ठकम् ॥ २६ ॥

भुङ्क्ष्व त्वं निश्चलं क्रत्वा दानवांश्च निपृदय ।

यस्य वज्राभिघातेन नातिः स्वल्पाऽपि जायते ॥ २७ ॥

हन्तव्यः स कथं शक्र शतसंख्यैर्भवाद्दशैः ॥ २८ ॥

**सूत उवाच-** श्रुत्वा तस्य वचः शक्रस्तदा सुरगुरोर्द्विजाः ।

तमेवं शरणं प्रायात्सुमारं पार्वतीसुतम् ॥ २९ ॥

**इन्द्र उवाच-** प्रसीद मे त्वं शरणागतस्य पादौ तवाहं शिरसा वहामि ।

सुराधिपस्त्वं भव शर्वसूनो यथाण राज्यं मम अंभुरूप ॥ ३० ॥

एषोऽञ्जलिः पङ्कजचारुनेत्रं क्रतोत्तमाङ्गैः(?) जहि मन्युमुग्रम् ।

सतां हि कोपः प्रणतेषु नित्यं विनाशमेत्यार्षमनः सुसिद्धम् ॥ ३१ ॥

अथेन्द्रवचनं श्रुत्वा भगवान्पण्णमुखस्तदा ।

अश्रवीत्करुणाविष्टः शक्रं प्रति मुनीश्वराः ॥ ३२ ॥

**स्कन्द उवाच-** करोमि किमहं राज्य भोगैश्च प्राकृतैरलम् ।

अपर्याप्तं न मे किञ्चिदस्ति पित्रोः प्रसादतः ॥ ३३ ॥

निष्कण्ठकं त्वमेवेह राज्यं कुरु शचीपते ।

मम संख्येन सकलाञ्जलिः पुरंदर ॥ ३४ ॥

एवं स्कन्दवचः श्रुत्वा पुनराह शचीपतिः ।

भगवन्नापरः कश्चिद्देवानां विदितो बली ॥ ३५ ॥

तस्मात्कुरु त्वमेवेह राज्यमीश्वरनन्दन ।

क वालः क च संग्रामः क नीतिः क पराक्रमः ॥ ३६ ॥

क ज्ञानमनुलं देव क मतिः क च सौम्यता ।

क माया क च दाक्षिण्यं क क्षान्तिः क प्रसादता ॥ ३७ ॥

\* घसहितपुस्तकेऽयं श्लोको नास्ति ।

अलं त्वमेव राज्यस्य गुणैरेभिरुदीरितः ।

\*स्वरूपैः स्वगुणैस्त्वं हि बन्दिभिश्चारणैस्तथा ॥ ३८ ॥

विद्याधरैश्च यज्ञैश्च विविधैर्गुणकोटिभिः ।

स्तूयमानोऽमरैः सिद्धैर्गन्धर्वाप्सरसां गणैः ॥ ३९ ॥

अहं सेनापतिर्देव भवामि भवनन्दन ।

तिष्ठत्वोपरि कृत्स्नस्य त्रैलोक्यं भुङ्क्ष्व षण्मुख ॥ ४० ॥

सर्वगः सर्वभूतस्त्वं यथा देवो महेश्वरः ।

एवं शक्रवचः श्रुत्वा पुनः प्राहाम्बिकामृतः ॥ ४१ ॥

**स्कन्द उवाच**—अभयं शक्र मा भेषीः कुरु राज्यमकण्ठकम् ।

इन्द्रस्त्वं देवराजस्त्वं त्वमेव जगतः प्रभुः ॥ ४२ ॥

दर्पगर्वबलोदीर्णा दानवा ये च तांस्तदा ।

यैः पराजीयसेऽत्यर्थं सूदयेऽहं त्वयां स्मृतः ॥ ४३ ॥

वह्नालापैरलं शक्र गदितेन पुनः पुनः ।

निश्चयेन सरवाऽहं ते भवाग्यसुरसूदन ॥ ४४ ॥

अथोवाच महादेवपुत्रं संवीक्ष्य निःस्पृहम् ।

नेष्टं त्वयाऽपि हीन्द्रस्त्वं भव सेनापतिर्गुह ॥ ४५ ॥

एवमस्त्विति तं प्राह कार्तिकेयः शचीपतिम् ।

ततः सर्वैः सुरैर्विप्रा आदेशात्परमेष्ठिनः ॥ ४६ ॥

अभिपिक्तौऽथ विधिना सेनापत्ये तदा गुहः ।

यावदत्तं कुमाराय सेनापत्यं हराज्ञया ॥ ४७ ॥

इन्तुमभ्यागतस्तूर्णं कुमारं तारकस्तदा ।

आगतं तं तदा वीक्ष्य लीलया पार्वतीसुतः ।

ददाहाऽऽशु महादैत्यं तूलं वह्निरिवाऽऽहवे ॥ ४८ ॥

दग्ध्वा तु तारकं घोरं पतङ्गमिव पावकः ।

ततः प्रीतमनाः स्कन्दो मातुरङ्गमुपाविशत् ॥ ४९ ॥

महादेवोऽपि भगवान्वेधादीन्विष्णुना सह ।

विसृज्य गणपैः सार्धं क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥ ५० ॥ ३५६३ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरैः सूतशौनकसंवादे नारदेंद्र-

संवादादिकथनं नाम त्रिपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

**ऋषय ऊचुः**—कथितो भवतां सूत विवाहः परमेष्ठिनः ।

उत्पत्तिः कार्तिकेयस्य तस्य चैव परारुमः ॥ १ ॥

\* ससंज्ञितपुत्रे स्वरूपैरित्यदि गुणकोटिभिरित्यन्त इन्द्रजात नास्ति ।

सेनापत्यं यथा दत्तं श्रुतं सर्वमशेषतः ।  
 भक्तियोगमधेदानो वद सूत महामते ॥ २ ॥  
 तृप्तिर्नाद्याप्यभूद्यस्माच्छ्रुत्वा चैव पुनः पुनः ।  
 जानासि त्वं भगवतो माहात्म्यं त्रिपुरद्विपः ॥ ३ ॥  
 उपासितो यतः सम्पग्भगवान्वादरापणिः ।  
 तत्प्रसादात्त्वया लब्धं ज्ञानं तत्पारमेश्वरम् ॥ ४ ॥  
 दुर्लभं सर्वशास्त्रेषु मुनीनां च महात्मनाम् ॥ ५ ॥

**सूत उवाच**—पदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं नारदाय महात्मने ।  
 प्रीतेन मनसा तेन तच्छृणुध्वं द्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥  
 सत्यलोके मृखासीनं ब्रह्माणं तेजसां निधिम् ।  
 ऋषिभिर्मुनिभिः सिद्धैर्वेदैः साङ्गैरुपासितम् ॥ ७ ॥  
 संगीयमानं गन्धर्वैः स्तूयमानं मरुद्गणैः ।  
 दृष्ट्वा प्रणम्य विधिवन्नारदस्तमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥

**नारद उवाच**—देवदेव जगनाथ चतुर्मुख सुरीत्तम ।  
 भक्तियोगस्य माहात्म्यं देवदेवस्य शूलिनः ॥ ९ ॥

**ब्रह्मोवाच**—प्रणम्य शंकरं शान्तमप्रमेयमनामयम् ।  
 परं ज्योतिरनाद्यन्तं निर्गुणं तमसः परम् ॥ १० ॥  
 भक्तियोगं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद सुव्रत ।  
 भक्तियोगस्य माहात्म्यं यथा शंभोर्मया श्रुतम् ॥ ११ ॥  
 भक्तिर्भगवतः शंभोर्दुर्लभा खलु देहिनाम् ।  
 कथंचिद्यदि सा लब्धा तेषां नैवास्ति दुर्लभम् ॥ १२ ॥  
 भक्त्यैव प्राप्यते राज्यमिन्द्रत्वं मत्पदं च यत् ।  
 विष्णुत्वमपि मुक्तिं च नृनं प्राप्नोति नारद ॥ १३ ॥  
 शुभानामशुभानां च कर्मणां राशिसंचयम् ।  
 करोति भस्मसाद्भक्तिर्भवस्याग्निर्पथेन्धनम् ॥ १४ ॥  
 म्लेच्छोऽपि वा यदि भवेद्भवभक्तिसमन्वितः ।  
 न तत्समश्चतुर्वेदी नाग्निष्टोमादियज्ञकृत् ॥ १५ ॥  
 अपि पापानि घोरानि सदा कुर्वन्नरो यदि ।  
 लिप्यते नैव पापैस्तु भक्तो भवति चेच्छिवे ॥ १६ ॥

शिवभक्ता महात्मानो मुच्यन्ते ते न संशयः ।  
 अपि दुष्कृतकर्माणः प्रसादाच्छूलिनो मुने ॥ १७ ॥  
 सकृत्पूजयते यस्तु भगवन्तमुमापतिम् ।  
 अप्यश्वमेधादधिकं फलं भवति नारद ॥ १८ ॥  
 जीवितं चञ्चलं ज्ञात्वा पञ्चपत्र इवोदकम् ।  
 मृतेर्दुरन्तान्नरकांस्ततः कुर्याच्छिवे मतिम् ॥ १९ ॥  
 शिवे मतिं प्रकुर्वाणः संसारादतिभीषणात् ।  
 मुच्यते मुनिशार्दूल मतिः शर्वेऽतिदुर्लभा ॥ २० ॥  
 भवव्यालमुखस्थानां भीरूणां देहिनां मुने ।  
 तस्माद्धिमोचकस्तेषां महादेव इति श्रुतिः ॥ २१ ॥  
 भक्तिः शिवे यदि भवेन्न कस्मात्कस्यचिद्भयम् ।  
 भवार्णवं तरत्येव प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥ २२ ॥  
 स्वर्गार्थिनां मुमुक्षूणां ब्रह्मत्वमपि काङ्क्षिणाम् ।  
 भक्तिरेव विरूपाक्षे नान्यः पन्था इति श्रुतिः ॥ २३ ॥  
 आदिमध्यान्तरहिते पिनाकिनि जगत्पतौ ।  
 सदा मनीषिभिः कार्या भक्तिरेव हि नारद ॥ २४ ॥  
 सर्वमन्यत्परित्यज्य भक्तो भूव हरे मुने ।  
 मुक्तो भविष्यसि क्षिप्रं तस्य शंभोरनुग्रहात् ॥ २५ ॥  
 यस्य प्रसादलेशेन ब्रह्मत्वं प्राप्तवानहम् ।  
 विष्णुत्वमपि विष्णुश्च स शिवः कैर्न सेव्यते ॥ २६ ॥  
 शिवे दानं शिवे होमः शिवे स्नानं शिवे जपः ।  
 अक्षयानि फलान्येषामित्याह भगवोऽशिवः ॥ २७ ॥  
 फुरुक्षेत्रे निवसतां यत्फलं नैमिषे तथा ।  
 प्रयागे च प्रभासे च गङ्गासागरसंगमे ॥ २८ ॥  
 रुद्रकोट्यां गयायां च शालिग्रामेऽमरेश्वरे ।  
 पुष्करे भारभूतेशे गोकर्णे मण्डलेश्वरे ॥ २९ ॥  
 तत्फलं दिवसेनैव भक्त्या भर्गार्चनाद्भवेत् ।  
 नास्ति लिङ्गार्चनात्पुण्यमधिकं भुवनत्रये ॥ ३० ॥

लिङ्गेऽर्चितेऽखिले विश्वमर्चितं स्प्राञ्च संशयः ।

मायया मोहितात्मानो न जानन्ति महेश्वरम् ॥ ३१ ॥

अनुग्रहाद्भगवतो जानन्त्येव हि नारद ।

यः पूजितं शिवं दृष्ट्वा प्रणभेद्भक्तिभावतः ॥ ३२ ॥

पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं भवति निश्चितम् ।

ये पुनः शान्तमनसः शिवभक्ता जितेन्द्रियाः ॥ ३३ ॥

मर्त्यस्य वदनं तेऽपि नैव पश्यन्ति नारद ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥ ३४ ॥

शिवलिङ्गे वसन्त्येव तानि सर्वाणि नारद ।

तस्माल्लिङ्गं सदा पूज्यं भक्तिभावेन नित्यशः ॥ ३५ ॥

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वस्मादधिकश्च सः ।

पस्तु लिङ्गार्चनं त्यक्त्वा देवानन्यांश्च पूजयेत् ॥ ३६ ॥

रत्नं विहाय मृदात्मा यथा काचमपेक्षते ।

चतुर्दशवामयाष्टम्यां पौर्णमास्यां तथैव च ॥ ३७ ॥

अमावास्यां त्रयोदश्यां पूजयेद्विन्दुशेखरम् ।

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ ३८ ॥

शिवलोकमवाप्नोति देहान्ते दुर्लभं मुने ।

शिवार्चनरतो नित्यं महापातकसंभवैः ॥ ३९ ॥

दोषैः क्रतैर्न लिप्येत पद्मपत्रमिवाभ्रसा ।

दर्शनाच्छिवभक्तानां सकृत्संभाषणादपि ॥ ४० ॥

अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं भवति नारद ।

ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यः शूद्रो वाऽन्दपन्नजातिजः ॥ ४१ ॥

शिवभक्तः सदा पूज्यः सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।

नास्याऽऽचारं परीक्षेत न कुलं न व्रतं तथा ॥ ४२ ॥

त्रिपुण्ड्राङ्कितमालेन पूज्य एव हि नारद ।

कर्मणा मनसा वाचा यस्तु भक्तान्विनिन्दति ॥ ४३ ॥

निरयाऽनिष्कृतिर्नास्ति तस्य मृदात्मनो मुने ।

शिवभक्तान्वर्जयित्वा सर्वेषां शासको यमः ॥ ४४ ॥

\* खगपदच उजमसितेष्वादेशपुस्तकेषु ये पुनरित्यादिर्नारदेत्यन्तः श्लोको नास्ति ।

यः पुनः शिवभक्तानां शिव एव न चापरः ।  
 न शिवाश्रयिणो मौञ्जी न दण्डो न च कुण्डले ॥ ४५ ॥  
 नैव काषायवासांसि भक्तिरेवात्र कारणम् ।  
 यदि भक्ताः पशुपतौ पापकर्मसु ये रताः ॥ ४६ ॥  
 यमस्य वदनं तेऽपि नैव पश्यन्ति नारद ।  
 ये पुनः शान्तमनसः शिवभक्ता जितेन्द्रियाः ॥ ४७ ॥  
 मर्त्यधर्मं समासाद्य विज्ञेयास्ते गणेश्वराः ।  
 मृतस्य जीवतो वाऽपि शिवभक्तस्य नारद ॥ ४८ ॥  
 यमाद्रूपं न तस्यास्ति राज्ञश्चैव तु का कथा ।  
 आश्चर्यं कथयिष्यामि शृणु नारद यत्पुरा ॥ ४९ ॥  
 उज्जयिन्यां वृषो ह्यासीन्नान्ना सत्यध्वजो मुने ।  
 धर्मात्मा सत्यसंकल्पः प्रजापालनतत्परः ॥ ५० ॥  
 भुक्त्वा समस्तामवनिं कालेनाथ दिवं गतः ।  
 वसुश्रुत इति ख्यातः पुत्रस्तस्य महात्मनः ॥ ५१ ॥  
 महाकालार्चनरतस्तन्निष्ठस्तत्परायणः ।  
 न धर्मेण प्रजः शास्ति राजधर्मवहिष्कृतः ॥ ५२ ॥  
 असाधून्संपरित्यज्य साधून्वै हन्त्यसौ वृषः ।  
 प्रजानां कुशलं नास्ति सर्वत्र परिपन्थिनः ॥ ५३ ॥  
 यज्ञांश्च यज्वेनां दृष्ट्वा म्लेच्छा विध्वंसयन्ति तान् ।  
 गते वर्षसहस्रे तु राज्ये तस्मिन्वसुश्रुते ॥ ५४ ॥  
 मृत्युर्कालोऽयं संप्राप्तो देहिनामतिभीषणः ।  
 पापिष्ठ इति तं मत्वा संप्राप्ता यमकिंकराः ॥ ५५ ॥  
 शिवभक्त इति प्राप्तात्त्रिनेत्राः शूलधारिणः ।  
 शिवदूतैः समानीतं विमानं सार्वकामिकम् ॥ ५६ ॥  
 यमदूतास्त्वतिकूराः पाशदण्डासिपाणयः ।  
 आहर्तुमुद्यताः सर्वे वृषं तं यमकिंकराः ॥ ५७ ॥  
 गणेश्वरास्ततः क्रुद्धा दृष्ट्वा तान्यमकिंकरान् ।  
 त्रिशूलैर्मुद्गरैश्चक्रैर्गदाभिर्मुसलैस्तथा ॥ ५८ ॥  
 ताडयित्वा भृशं दृतान्यमशासनपालकान् ।  
 नीतः शिवपुरं दिव्यं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ५९ ॥

अथ ते किंकराः सर्वे यमं गत्वेदमब्रुवन् ।  
**किंकरा ऊचुः**—शृणु धर्मं यथा वृत्तमीश्वरस्य गणेश्वरैः ॥  
 सर्वानस्यांस्ताडयित्वा नीतः पापो वसुश्रुतः ॥ ६० ॥  
 न यज्ञैर्यजते देवान् विप्रान्नातिथीनपि ।  
 न धर्मेण प्रजाः पाति कथं शिवपुरं गतः ॥ ६१ ॥  
 तत्त्वं धर्मं विजानासि धर्मदण्डधरो भवान् ।  
 तस्माद्ब्रवीहि(?) भगवंस्तवाऽऽज्ञाकारिणो वयम् ॥ ६२ ॥  
 एवं तेषां वचः श्रुत्वा धर्मराट् सूर्यनन्दनः ।  
 वचः प्रोवाच गम्भीरं किंकरान्प्रति नारद ॥ ६३ ॥  
**यम उवाच**—देवासुरमनुष्पाणां सर्वेषां प्राणिनामपि ।  
 शास्ताऽहं नास्ति संदेहः शिवभक्तमृते किल ॥ ६४ ॥  
 माहात्म्यं शिवभक्तानां को वा विन्दति तत्त्वतः ।  
 तेषां नियन्ता भगवान्महादेवो न चापरः ॥ ६५ ॥  
 शिवभक्ता महात्मानः सदा शर्वार्चने रताः ।  
 अप्याश्रमाचारहीनास्त्यजध्वं तान्प्रयत्नतः ॥ ६६ ॥  
 वर्णाश्रमाणामाचारा अपि तेन विवर्जिताः ।  
 शंकरे यदि भक्तः स्यान्न शास्यः पूज्य एव हि ॥ ६७ ॥  
 भवद्भिः परिहर्तव्याः शिवभक्ताः प्रयत्नतः ।  
 पापकर्मस्वपि रतास्तेषामेनो न विद्यते ॥ ६८ ॥  
 विभेमि शिवभक्तेभ्यः सिंहादिव यथा मृगाः ।  
 श्वेतस्याऽऽहरथे पूर्वमहं देवेन घातितः ॥ ६९ ॥  
 ततः प्रभृत्यहं आस्ता तद्भक्तानां न किंकराः ।  
 योऽसौ वसुश्रुतो राजा न प्रजाः पालयन् यदि ॥ ७० ॥  
 तथाऽपि शंकरे भक्तो मनोवाक्कायकर्मभिः ।  
 प्रसादात्तस्य देवस्य पापं स्पृशति तं कथम् ॥ ७१ ॥  
 सकृत्पश्यति यो देवं महाफालं त्रिभोचनम् ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो याति शैवं परं पदम् ॥ ७२ ॥  
 यः सदाऽर्चयते देवं महाकार्त्तं तमीश्वरम् ।  
 गणेश्वरः स मन्तव्यो भवद्भिरिति किंकराः ॥ ७३ ॥

एवं यमस्य वचनं श्रुत्वा ते यमकिंकराः ।

तूष्णीमासाद्य ते सर्वे बभूवुर्विगतज्वराः ॥ ७४ ॥

तस्मात्पूज्यो महादेवस्तद्भक्तश्च विशेषतः ।

भक्तानां पूजनाच्छंभुः प्रीतो भवति नारद ॥ ७५ ॥

शिवस्य नित्यनृपस्य किं नाम क्रियते जनैः ।

यत्कृतं शिवभक्तानां तेन प्रीतो भवेच्छिवः ॥ ७६ ॥

देवान्सर्वान्परित्यज्य भज नारद शंकरम् ॥ ७७ ॥ ३६४० ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरि सूतशौनकसंवादे ब्रह्मनारदः-

संवादादिकथनं नाम चतुःपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

**ब्रह्मोवाच-**पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पत्रं पुष्पमथापि वा ।

यः प्रयच्छति शर्वाय तदनन्तफलं सकृत् ॥ १ ॥

सप्तकोटिमहामन्त्राः शिववक्त्राद्विनिर्गताः ।

पञ्चाक्षरस्य मन्त्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २ ॥

दीक्षितोऽदीक्षितो वाऽपि विधानादन्यथाऽपि वा ।

पञ्चाक्षरं जपेद्यस्तु शिवस्यानुचरो भवेत् ॥ ३ ॥

अपि कृत्वा भ्रूणहत्यां पापानि सुबहून्यपि ।

पञ्चाक्षरजपात्सद्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४ ॥

न हि पञ्चाक्षरजपाच्छ्रेयोऽस्ति भुवनत्रये ।

एवं ज्ञात्वा जपेद्विद्वान्विचां पञ्चाक्षरीं शुभाम् ॥ ५ ॥

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण विल्वपत्रैः शिवार्चनम् ।

करोति श्रद्धया यस्तु स गच्छेद्देश्वरं पदम् ॥ ६ ॥

दर्शनाद्विल्ववृक्षस्य स्पर्शनाद्द्वन्दनादपि ।

अहोरात्रकृतं पापं नश्यते ऋषिसत्तम ॥ ७ ॥

अन्तकाले नरो यस्तु विल्वमूलस्य मृत्तिकाम् ।

आलिम्पेत्सर्वगात्राणि मृतो याति परां गतिम् ॥ ८ ॥

विल्ववृक्षं समाश्रित्य द्वादशाहमभोजनम् ।

यः कुर्याद्भ्रूणहा पापान्मुक्तो भवति नारद ॥ ९ ॥

विल्ववृक्षं समाश्रित्य त्रिरात्रोपोषितः शुचिः ।

हरनाम जपेद्वृक्षं भ्रूणहत्यां व्यपोहति ॥ १० ॥

१ ( व. स. ग. ज. घ. ) ०१२-या दि नारद ॥ ७ ॥ २ ( व. स. ग. झ. ) ०१२-य सर्वेण



\*मातृहा पितृहा वाऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः ।  
 माघे कृष्णचतुर्दश्यां पूजयेदिन्दुशेखरम् ॥ ११ ॥  
 भक्त्या बिल्वदलैर्मौनी हरनाम जपन्निशि ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो याति शैवं परं पदम् ॥ १२ ॥  
 शुष्कैः पर्युषितैः पत्रैरपि बिल्वस्य नारद ।  
 पूजयेद्विरिजानाथं मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १३ ॥  
 अर्घ्यं पुष्पफलोपेतं यः शिवाय निवेदयेत् ।  
 युगानामयुतं साग्रं शिवलोके वसेन्नरः ॥ १४ ॥  
 आपः क्षीरं कुशाग्राणि सघृतं दधि तण्डुलाः ।  
 तिलैश्च सर्पपैः सार्धमर्घ्योऽष्टाङ्ग इति स्मृतः ॥ १५ ॥  
 पलकोटिं सुवर्णस्य यो दद्याद्वेदपारगो ।  
 शिवाय रक्तिकामात्रं प्रदत्त्वा(?) वाऽधिकं भवेत् ॥ १६ ॥  
 तस्मात्पत्रैः फलैः पुष्पैस्तोषैरपि यजेच्छिवम् ।  
 तदनन्तफलं प्रोक्तं भक्तिरेवात्र कारणम् ॥ १७ ॥  
 लिङ्गस्य लेपनं कुर्याद्विष्णुर्गन्धैर्मनोरमैः ।  
 वर्षकोटिशतं दिव्यं शिवलोके महीयते ॥ १८ ॥  
 सुगन्धालेपनात्पुष्पं द्विगुणं चन्दनस्य तु ।  
 चन्दनाक्षौंगरोर्ज्ञेयं पुष्पमष्टगुणाधिकम् ॥ १९ ॥  
 कृष्णांगरोर्विशेषेण द्विगुणं फलमिष्यते ।  
 तस्माच्छतगुणं पुष्पं कुङ्कुमस्य विधीयते ॥ २० ॥  
 चन्दनाङ्गरोर्विष्णुर्गन्धैर्नाभिरोचनकुङ्कुमैः ।  
 लिङ्गपेतैः समालिप्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥  
 संवीज्य तालवृन्तेन लिङ्गं गन्धैः सुलेपितम् ।  
 दशवर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ २२ ॥  
 मयूरव्यजनं दद्याच्छिवायातीव शोभनम् ।  
 वर्षकोटिशतं दिव्यं शिवलोके महीयते ॥ २३ ॥

\* मातृहत्यादिभोग्रह्याने कलगञ्जसक्षितपुस्तकेषु किञ्चिद्विन्न भोगार्थमेव दृश्यते । तद्यथा—वि-  
 ल्वपत्रैरक्षयैश्च पूजयेदिन्दुशेखरम्—इति ।

१ ( क. ख. ) ०५ भक्तिमात्रं च प्रधानमधिकं फलम् ॥ १६ ॥ २ ( क. ख. म. ख. )  
 ०६ हस्याऽऽले ० । ३ ( घ. ङ. च. छ. ज ) ०७ नागुरो ० । ४ ( घ. ङ. च. छ. ज ) ०८ नागुरो ० ।  
 ५ ( घ. ङ. छ. ज ) ०९ नागुरो ०

चामरं घः शिवे दद्यान्मणिरत्नविभूषितम् ।  
 हेमरूप्यादिदण्डं वा तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४ ॥  
 चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीपरिवारितः ।  
 विमानं वरमारुह्य गणैर्याति शिवं पदम् ॥ २५ ॥  
 अरण्यसंभवैः पुष्पैः पत्रैर्वा गिरिसंभवैः ।  
 अपर्युषितनिश्छिद्रैररक्तैर्जन्तुवर्जितैः ॥ २६ ॥  
 आत्मारामोद्भवैर्वाऽपि पुष्पैः संपूजयेच्छिवम् ।  
 पुष्पजातिविशेषेण भवेत्पुण्यमथोत्तरम् ॥ २७ ॥  
 तपःशीलगुणाढ्याय वेदवेदाङ्गगामिने ।  
 दश दत्त्वा सुवर्णस्य फलं हि तदवाप्नुयात् ॥ २८ ॥  
 अर्कपुष्पैः कृता पूजा यदि देवाय शंभवे ।  
 अर्कपुष्पसहस्रेभ्यः करवीरं प्रशस्यते ॥ २९ ॥  
 करवीरसहस्रेभ्यो विल्वपत्रं विशिष्यते ।  
 विल्वपत्रसहस्रेभ्यः शमीपत्रं विशिष्यते ॥ ३० ॥  
 अर्कपुष्पसहस्रेभ्यः शमीपुष्पं विशिष्यते ।  
 शमीपुष्पसहस्रेभ्यः कुशपुष्पं विशिष्यते ॥ ३१ ॥  
 कुशपुष्पसहस्रेभ्यः पद्मपुष्पं विशिष्यते ।  
 पद्मपुष्पसहस्रेभ्यो बकपुष्पं विशिष्यते ॥ ३२ ॥  
 बकपुष्पसहस्रेभ्य एकं धत्तूरकं तथा ।  
 धत्तूरकसहस्रेभ्यो बृहत्पुष्पं विशिष्यते ॥ ३३ ॥  
 बृहत्पुष्पसहस्रेभ्यो द्रोणपुष्पं विशिष्यते ।  
 द्रोणपुष्पसहस्रेभ्यः अपामार्गं विशिष्यते ॥ ३४ ॥  
 अपामार्गसहस्रेभ्यः श्रीमन्नीलोत्पलं वरम् ।  
 नीलोत्पलसहस्रेण यो मालां संप्रयच्छति ॥ ३५ ॥  
 शिवाय विधिवद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ।  
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ ३६ ॥  
 वसेच्छिवपुरे श्रीमांशिवतुल्यपराक्रमः ।  
 करवीरसमा ज्ञेया जाती विजयपाटला ॥ ३७ ॥

श्वेतमन्दारकुमुभं, सितपद्मं च तत्समम् ।  
 नागचम्पकपुंनागा घञ्चूरकसमाः स्मृताः ॥ ३८ ॥  
 बन्धूकं केतकीपुष्पं कुन्दपूथीमदन्तिकाः ।  
 शिरीषं चार्जुनं पुष्पं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ३९ ॥  
 कनकानि कदम्बानि रात्रौ देयानि शंकरे ।  
 दिवा शेषाणि पुष्पाणि दिवा रात्रौ च मल्लिका ॥ ४० ॥  
 महरं तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् ।  
 केशकीटापविद्धानि शीर्णपर्युपितानि च ॥ ४१ ॥  
 स्वयं पतितपुष्पाणि त्यजेदुपहतानि च ।  
 मुकुलैर्नाचर्षेदीशं यस्य कस्यापि नारद ॥ ४२ ॥  
 फलिकैर्नाचर्षेदेवं चम्पकैर्जलजैर्विना ।  
 न पर्युपितदोषोऽस्ति जलजोत्पलचम्पकैः ॥ ४३ ॥  
 पुष्पाणामप्यलाभे तु पत्राण्यपि निवेदयेत् ।  
 फलानामप्यलाभे तु नृणगुल्मौपधैरपि ॥ ४४ ॥  
 औषधानामभावे तु भक्त्या भवति पूजितः ।  
 विष्वक्पत्रैरखण्डैस्तु सकृत्पूजयते शिवम् ॥ ४५ ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोके महीयते ।  
 धत्तकैस्तु यो लिङ्गं सकृत्पूजयते नरः ॥ ४६ ॥  
 गोलक्षस्य फलं प्राप्य शिवलोके महीयते ।  
 बृहतौकुष्ठमैर्भक्त्या यो लिङ्गं सकृदर्चयेत् ॥ ४७ ॥  
 गवामपुत्रदानस्य फलं प्राप्य शिवं व्रजेत् ।  
 मल्लिकोत्पलपुष्पाणि नागपुंनागचम्पकैः ॥ ४८ ॥  
 भशोकश्वेतमन्दारकाणिकारवकानि च ।  
 करवीरार्कमन्दारशर्मतिगरकेसरम् ॥ ४९ ॥  
 कुशापामार्गकुमुदकदम्बकुरंवैरपि ।  
 पुष्पैरेतैर्यथा लाभं यो नरः पूजयेच्छिवम् ॥ ५० ॥  
 स यत्फलमवाप्नोति तदेकाम्रमनाः शृणु ।  
 सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वात्मिकैः ॥ ५१ ॥  
 पुष्पमालापरिक्षिप्तैर्गीतवादित्रनिस्वनैः ।  
 तन्नीमधुरनादैश्च स्वच्छन्दगमनेस्तथा ॥ ५२ ॥

रुद्रकन्यासमाकीर्णैः समन्ताद्गुणशोभितैः ।  
 दोधूपमानश्वमरैः शिवलोके महीयते ॥ ५३ ॥  
 अनेकाकारविन्यासैः कुमुदैश्च शिवं गृहम् ।  
 यः कुर्यात्पर्वकालेषु किञ्चिन्नकुमुदोज्ज्वलम् ॥ ५४ ॥  
 स पुष्पकविमानेन सहस्रपरिवारितः ।  
 दिव्यस्त्रीमुखैसौभाग्यक्रीडारतिसमन्वितः ॥ ५५ ॥  
 अक्षपाल्लोभते लोकानतिरस्कृतशासनः ।  
 शिवादिसर्वलोकेषु यत्रेष्टं तत्र याति सः ॥ ५६ ॥  
 पूजादिभक्तिविन्यासैरर्चनादिषु सर्वतः ।  
 फलमेकं समं ज्ञेयं फलं वित्तानुसारतः ॥ ५७ ॥  
 स्वयमुत्पाद्य पुष्पाणि यः स्वयं पूजयेच्छिवम् ।  
 तानि साक्षात्प्रगृह्णाति देवदेवो महेश्वरः ॥ ५८ ॥  
 ऋष्णाङ्गरोः सकर्पूरधूपं दद्याच्छिवाय वै ।  
 नैरन्तर्पेण मासार्थं तस्य पुण्यफलं गृणु ॥ ५९ ॥  
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।  
 भुक्त्वा शिवपुरे भोगांस्तदन्ते पृथिवीपतिः ॥ ६० ॥  
 गुग्गुलं घृतसंयुक्तं साक्षाद्गृह्णाति शंकरः ।  
 मासार्थं धूपदानेन शिवलोके महीयते ॥ ६१ ॥  
 ऋष्णपक्षे चतुर्दश्यां यः साज्यं गुग्गुलं दहेत् ।  
 स याति परमं स्थानं यत्र देवः पिनाकधृत् ॥ ६२ ॥  
 श्रीफलं चाऽऽज्यसंमिश्रं दत्त्वाऽऽप्नोति परां गतिम् ।  
 एभिः सुगन्धितो धूपः पर्येसहस्रगुणोत्तरः ॥ ६३ ॥  
 यैस्त्वर्कसंपुटे कृत्वा मधु चार्घ्यस्य मन्त्रतः ।  
 निवेदयति शर्वाय सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ६४ ॥  
 शालितण्डुलप्रस्थेन कुर्यादन्नं सुसंस्कृतम् ।  
 शिवाय तच्चरुं दत्त्वा चतुर्दश्यां विशेषतः ॥ ६५ ॥  
 यावन्तस्तण्डुलास्तस्मिन्नेवेद्ये परिसंरक्ष्यया ।  
 तावद्द्वयसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ ६६ ॥

१ ( घ. इ. च. छ. ज. ) ०यदन्तकाले तु वि० २ ( क. रा. ग. ज. छ. ) ०क्षमभोगवि०

३ ( क. छ. ) ०मेव स० ( घ. ग. ) मेव स० ४ ( क. रा. ग. घ. ) ०गहम० ५ ( क. रा. ग.

ज. छ. ) ०स्तस्यान्ते। ६ ( क. रा. ग. छ. ) ०स्माद्गु० ७ ( क. छ. ग. ज. छ. ) ०योर्धर्मप्रपुटे इ०

८ ( क. ग. ग. छ. ) ०एतेनो तण्डुलप्रस्थे तु०

गुहस्रण्डघृतानां च भक्ष्याणां च निवेदनात् ।  
 घृतेन पाचितानां तु दत्त्वा शतगुणं भवेत् ॥ ६७ ॥  
 घृतदीपप्रदानेन शिवाय शतयोजनम् ।  
 विमानं लभते दिव्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ ६८ ॥  
 यः कुर्यात्कार्तिके मासि शोभनां दीपमालिकाम् ।  
 घृतेन च चतुर्दश्याममावास्यां विशेषतः ॥ ६९ ॥  
 सूर्यायुतप्रतीकाशस्तेजसा भासयन्दिशः ।  
 तेजोराशिर्विमानस्थः सूर्यवद्द्योतते सदा ॥ ७० ॥  
 शिरसा धारयेद्दीपं सर्वराज्यां\* विशेषतः ।  
 ललाटे वाऽथ हस्ताभ्यां शिरसा वाऽथ नारद ॥ ७१ ॥  
 सूर्यायुतप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।  
 कल्पायुतशतं दिव्यं शिवलोके महीपते ॥ ७२ ॥  
 शिवस्य पुरतो दत्त्वा दर्पणं च मुनिर्मलम् ।  
 चन्द्रांश्चनिर्मलः श्रीमान्मुभगः कामरूपधृत् ॥ ७३ ॥  
 कल्पायुतसहस्रं तु शिवलोके महीपते ।  
 कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या शिवस्याऽऽयतनं नरः ॥ ७४ ॥  
 अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोति नारद ।  
 कूपारामप्रपाद्यैस्तु शिवायतनकर्मणि ॥ ७५ ॥  
 उपयुक्तानि भूतानि खननोत्पातनादिषु ।  
 कामतोऽकामतो वाऽपि स्थावराणि चराणि च ॥ ७६ ॥  
 शिवं यान्ति न संदेहः प्रेसादात्परमेष्ठिनः ।  
 क्रोशमात्रं शिवक्षेत्रं समन्तात्परमेष्ठिनः ॥ ७७ ॥  
 देहिनां तत्र पञ्चत्वं शिवसायुज्यकारणम् ।  
 मनुष्यस्थापिते लिङ्गे क्षेत्रमानमिदं स्मृतम् ॥ ७८ ॥  
 स्वायंभुवे योजनं स्थादार्षे चैव तदर्धकम् ।  
 पापाचारोऽपि यस्तत्र पञ्चत्वं याति नारद ॥ ७९ ॥

\* अत्र सर्वराज्यामित्यपेक्षितमिति प्रतिभाते ।

सोऽपि याति शिवस्थानं बहवैरपि दुर्लभम् ।

\*तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नानादिकं चरेत् ॥ ८० ॥

†तस्मादावसथं कुर्याच्छिवक्षेत्रसमीपतः ।

शिवलिङ्गसमीपस्थं यत्तोयं पुरतः स्थितम् ॥ ८१ ॥

शिवगङ्गेति संज्ञेयं तत्र स्नानादिना व्रजेत् ।

यः कुर्यादीर्घिकां वाऽपि कूपं वाऽपि शिवाश्रमे ॥

त्रिःसप्तकुलसंपुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ८२ ॥ ३७२२ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे पञ्चाक्षरमन्त्र-  
प्रभावादिकथनं नाम पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

**ब्रह्मोवाच**—पुष्पं वा यदि वा पत्रं सकृच्छिद्धे समर्पितम् ।

तदनन्तफले प्रोक्तं हेतुर्भवति मुक्तये ॥ १ ॥

‡तुष्टे शिवे पदार्थः को दुर्लभो हि तृणां प्रभो ।

\*तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शिवप्रीत्यर्थमाचरेत् ॥ २ ॥

‡यावदाहुं शिवः शक्तस्तावच्चिन्तयितुं प्रभुः ।

तत्सर्वं न नरः सौख्यं शिवप्रीत्यर्थमाचरेत् ॥ ३ ॥

‡द्विसिद्धी न दूरस्थे शिवप्रीत्यर्थकर्मणाम् ।

नराणां नरनाथे किं भीते तु दुर्लभं भवेत् ॥ ४ ॥

विश्वेश्वरं सदा प्रेम्णा ये भजन्ति नरोत्तमाः ।

इह सौख्यं चिरं भुक्त्वा ह्यन्ते मोक्षमवाप्नुयुः ॥ ५ ॥

‡शिशुनाथं भुवि मानवा ये भजन्ति भक्त्या नरलोकवन्द्याः ।

भवन्ति ते हाटकपूर्णगेहा देहावसाने शिवलोकभाजः ॥ ६ ॥

‡ब्रह्महा वा सुरापो वा स्तेयी वा गुरुतल्पगः ।

योऽन्तकाले शिवं स्मर्याच्छिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७ ॥

‡निर्माल्यं धारयेद्भक्त्या शिरसा पार्वतीपतेः ।

राजसूयस्य यज्ञस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ८ ॥

\* इदं ध्येयार्थं यत्सगद्यज्ञसहितपुस्तकेषु नास्ति ।

† ङङसहितयोः पुस्तकयोस्तस्मादित्यादिर्जिदित्यन्तं सार्धं ध्येयो नास्ति ।

‡ तुष्टे शिव इत्यादि शिवलोकाभाज इत्यन्तं ध्येयस्य \* यत्सगद्यज्ञसहितपुस्तकेषु नास्ति ।

शिरसा शिवनिर्माल्यं भक्त्या यो धारयिष्यति ।  
 अशुचिर्भिन्नमर्पादः सर्वावस्थां गतोऽपि वा ॥ ९ ॥  
 स्वैरी चैवामपुक्तात्मा नियमैश्च बहिष्कृतः ।  
 तस्य पापानि नश्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ १० ॥  
 मोहान्न धारयेच्छंभोर्निर्माल्यं न च भक्षयेत् ।  
 न स्पृशेदपि पादेन लङ्घयेन्नापि नारद ॥ ११ ॥  
 निर्माल्यलङ्घनाच्छंभोश्चाण्डालः सोऽभिजायते ।  
 पृथूदकं महत्तीर्थं गङ्गा च यमुना तथा ॥ १२ ॥  
 नर्मदा सरयूँ सिन्धु तथा गोदावरी नदी ।  
 सदा सनिहितास्त्वेवं शंभोः स्नानोदके मुने ॥ १३ ॥  
 शंभोः स्नानोदकं सेव्यं सर्वतीर्थमयं हि तत् ।  
 धारणात्पापसंघातैस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ १४ ॥  
 लिङ्गे स्वायंभुवे वाणे रत्नजे रसनिर्मिते ।  
 सिद्धप्रतिष्ठिते लिङ्गे न चण्डोऽधिष्णुतो भवेत् ॥ १५ ॥  
 पादोदकं च निर्माल्यं भक्तैर्घायं प्रयत्नतः ।  
 न तान्स्पृशन्ति पापानि मनोवाक्कायजान्पि ॥ १६ ॥

**नारद उवाच-** किं लिङ्गं प्रोच्यते तात केन वा तदधिष्ठितम् ।  
 भगवन्ब्रूहि मे सर्वमाश्चर्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ १७ ॥

**ब्रह्मोवाच-** अव्यक्तं लिङ्गमित्युक्तमानन्दं तमसः परम् ।  
 महादेवस्य यत्नेन लिङ्गी स्यात्तेन शंकरः ॥ १८ ॥  
 एकाग्रंवे पुरा घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।  
 मम विष्णोः प्रबोधार्थमाविर्भूतं शिवात्मकम् ॥ १९ ॥  
 तदाप्रभृत्यहं विष्णुर्भक्त्या परमया मुदा ।

लिङ्गमूर्तिधरं शान्तं पूजयावो वृषध्वजम् ॥ २० ॥

**नारद उवाच-** लिङ्गं कथमभूत्पूर्वमानन्दमजरं ध्रुवम् ।  
 प्रबोधार्थं च पुत्रपौत्रैरुमहंसि पञ्चज ॥ २१ ॥

१ ( क. ख. ग. घ. ) अनि रीद्राणि नाशयन्तैव शहरः ॥ १० ॥ २ ( क. ख. ग. घ. )  
 लोमान् ॥ ३ ( घ. ) महार्थं ॥ ४ ( ख. ग. घ. ) ०५ सिन्धु ( छ. ज. ) ०६ सिन्धु । ५ ( घ.  
 क. ख. छ. ज. ) ०७ यमुने । ६ ( क. ख. ) ०८ यत्कं तावत् ७ ( क. ख. ग. घ. ) ०९ न  
 सयत्तानरे । म० ८ ( घ. ) ०९ । विष्णोः प्रबोधार्थाय यावत् १० ( क. ख. ग. घ. ) ०९ यत्  
 प्रभुर्भूत् ११ ( क. ख. ग. घ. ) ० मञ्जु ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच—आसीद्विकार्षवे घोरे निर्विभागे तमोमये ।  
 शेते च भगवान्विष्णुस्तप्तजाम्बूनदप्रभः ॥ २२ ॥  
 तत्समीपमहं गत्वा संरम्भादिदमुक्तवान् ।  
 कस्त्वं किमर्थं वा शेषे शीघ्रमुत्तिष्ठ दुर्मते ॥ २३ ॥  
 कुरु युद्धं मया सार्धमहमेव जगत्पतिः ।  
 अथ वा भज मां देवं त्रैलोक्यस्याभयप्रदम् ॥ २४ ॥  
 एवं मद्भजनं श्रुत्वा प्रहसन्मधुसूदनः ।  
 मामब्रवीदमेयात्मा कथं गर्वायसे मुधा ॥ २५ ॥  
 कर्ताऽहं सर्वलोकानां पालकोऽहं न संशयः ।  
 संहर्ताऽहं पुनश्चान्ते नान्योऽस्ति सदृशो मया ॥ २६ ॥  
 एवं विवादे संजाते मम देवेन शाङ्किणा ।  
 प्रादुर्भूतं तदा लिङ्गमावयोर्दर्पहारि तत् ॥ २७ ॥  
 कालाग्निप्रयुतप्रख्यं ज्वालमालासमाकुलम् ।  
 आदिमध्यान्तरहितं क्षयवृद्धिविवर्जितम् ॥ २८ ॥  
 तस्मिँल्लिङ्गे महादेवः स्वयंज्योतिः सनातनः ।  
 सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ २९ ॥  
 अर्धनारीश्वरोऽनन्तस्तेजोराशिर्दुरासदः ।  
 ज्येष्ठत्वं युवयोस्तावदास्तां किञ्चिद्भवीम्यहम् ॥ ३० ॥  
 मूलं ममास्य लिङ्गस्य यदि पश्यति माधवः ।  
 नूनं भविष्यति ज्येष्ठ इति देवेन भाषितम् ॥ ३१ ॥  
 मूर्धानमस्य लिङ्गस्य यदि पश्यति पन्नजः ।  
 भविष्यति ततो ज्येष्ठ इति देवेन भाषितम् ॥ ३२ ॥  
 एवं शंभोर्निगदितमुररीकृत्य नारद ।  
 गतोऽस्मि मस्तकं द्रष्टुं तस्य लिङ्गस्य पुत्रक ॥ ३३ ॥  
 आवयोर्वर्षसाहस्रं गच्छतोर्मोहितात्मनोः ।  
 गतं देवऋषे नूनं विस्मयाविष्टचित्तयोः ॥ ३४ ॥

१ ( स. ग. ) ०११ रे श्लो० २ ( घ. ट. छ. ) पात्रो० । ३ ( स. ग. ज. ) इत्यायामप्रती-  
 चिद्वचः ॥ ३१ ॥ ४ ( ट. ज. ) ०११मि पन्नज । भविष्यति ततो ५ ( क. ख. ग. छ. ) ०स्य नारद  
 ॥ ३३ ॥ ६ ( क. स. ग. छ. ) ०योर्धुगमा० ७ ( ट. छ. ज. ) ०यमद० ८ ( ग. स. ग. छ )  
 ०टोनायोः ॥ ३४ ॥



५

हरिमूलमदृष्ट्वैव तं देवं पुनरागतः ।

यथा हरिस्तथैवाहमागतो वै मुने तदा ॥ ३५ ॥

तमेव शरणं गत्वा संस्तूय विविधैस्तवैः ।

प्रीतो भूत्वा महादेवो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३६ ॥

**ईश्वर उवाच**—मत्प्रसादेन सर्वस्मादधिको भव माधव ।

मद्भक्तानां त्वमेवाग्र्यः पूज्यो मान्यस्त्वमेव हि ॥ ३७ ॥

लिङ्गे मां पूजय हरे लिङ्गमूर्तिधरो ह्यहम् ।

अत ऊर्ध्वं न संदेहः सर्वे चान्ये दिवोकसः ॥ ३८ ॥

लिङ्गाराधनतः क्षिप्रमज्ञानं नाशयाम्यहम् ।

लिङ्गार्चनरतानां च नास्ति संसारजं भयम् ॥ ३९ ॥

एवं हरेर्वरं दत्त्वा मामुवाच महेश्वरः ।

विरञ्चे तव दास्यामि गृहाण वरमुत्तमम् ॥ ४० ॥

चराचरस्य जगतो मान्यो भव पितामह ।

गृहाण चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विधे ॥ ४१ ॥

इत्यावाभ्यां वरं दत्त्वा देवदेवः पिनाकधृत् ।

विश्वेश्वरः स्वयंज्योतिः क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥ ४२ ॥

ततः प्रभृति विष्णवाद्या देवा दैत्याश्च दानवाः ।

गन्धर्वा मुनयः सिद्धा यक्षा नागाश्च किंनराः ॥ ४३ ॥

संपूज्य परमं लिङ्गं परां सिद्धिं गता मुने ।

नास्ति लिङ्गार्चनादन्यच्छ्रेयोऽस्मिन्भुवनत्रये ॥ ४४ ॥

ज्ञात्वा त्वमेवं देवर्षे लिङ्गार्चनरतो भव ।”

क्षेत्रेषु चैव तीर्थेषु वनेषूपवनेषु च ॥ ४५ ॥

यानि लिङ्गानि दिव्यानि स्थापितानि सुरासुरैः ।

द्रष्टव्यानि बुधैस्तानि श्रद्धयैव हि नारद ॥ ४६ ॥

मुक्तिभाजो भवन्त्येवं तेऽपि शंभोरनुग्रहात् ॥ ४७ ॥

**नारद उवाच**—कानि स्थानानि दिव्यानि येषु संनिहितः शिवः ।

आचक्ष्व तानि मे ब्रह्मन्माहात्म्यं चापि क्रत्स्नशः ॥ ४८ ॥

**ब्रह्मोवाच**—माहात्म्यं दिव्यलिङ्गानां तीर्थानामपि नारद ।

अत्र ते कथयिष्यामि श्रूयतामद्यशासनम् ॥ ४९ ॥

या सा शैवी परा मुक्तिः शिवभक्त्या ह्यपां पतिः ।  
 नारायणः स्वयं साक्षादहं चान्याश्च देवताः ॥ ५० ॥  
 वसन्ति सागरे नूनं तीर्थराजेति स स्मृतः ।  
 जम्बूद्वीपं महापुण्यं तत्रापि लवणोदधिः ॥ ५१ ॥  
 अहोरात्रकृतं पापं दर्शनादेव नश्यति ।  
 स्पृष्ट्वा त्रिरात्रकं पापं नाशयत्येव सागरः ॥ ५२ ॥  
 सप्तरात्रकृतं पापं प्रोक्षणादेव नश्यति ।  
 पानेन पक्षजनितं स्नानात्पक्षद्वयस्य च ॥ ५३ ॥  
 ऋतुद्वये तथाऽष्टम्यां पर्वस्नानं च वापिकम् ।  
 भानावनुदिते नित्यं यः स्नाति लवणोदधौ ॥ ५४ ॥  
 कपिलापाः फलं तस्य दत्तापाः श्रोत्रिये ध्रुवम् ।  
 उपोष्य रजनीमेकां रविसंक्रमणं प्रति ॥ ५५ ॥  
 स्नात्वा शतसुवर्णस्य दत्तास्य फलमाप्नुयात् ।  
 व्यतीपात्ते दिनच्छिद्रे अयने विपुलेषु च ॥ ५६ ॥  
 पुगादौ च नरः स्नात्वा विधिवच्छ्रवणोदधौ ।  
 गोसहस्रस्य दत्तस्य कुरुक्षेत्रे फलं हि यत् ॥ ५७ ॥  
 तत्फलं लभते मर्त्यो भूमिदानस्य च ध्रुवम् ।  
 दानानि यानि लोकेषु विख्यातानि मनीषिभिः ॥ ५८ ॥  
 तेषां फलमवाप्नोति ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।  
 बडवानलमुक्तोऽसौ पूतो भवति नारद ॥ ५९ ॥  
 अतोऽस्माद्धि परं नास्ति मुतीर्थमवनीतले ।  
 गङ्गा गोदावरीरेवा चन्द्रभागा च वेदिका ॥ ६० ॥  
 एतासां संगमो यत्र स्नानं कुर्यान्महोदधौ ।  
 यानि पापानि घोरानि भ्रूणहत्यादिकानि च ॥ ६१ ॥  
 नाशयन्ति क्षणादेव संगमस्य प्रभावतः ।  
 अश्वमेधसहस्रस्य फलं च भवति ध्रुवम् ॥ ६२ ॥  
 समुद्रतीरे परमं तेजोलिङ्गं दुरासदम् ।  
 यत्र सिद्धाः पुरा वत्स मुनयः सप्तकोटयः ॥ ६३ ॥  
 सप्तकोटीश्वरं नाम ततःप्रभृति नारद ।  
 तस्य लिङ्गस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ ६४ ॥  
 स्मरणादस्य लिङ्गस्य गोसहस्रफलं लभेत ।  
 समुद्रे विंशत्यवत्स्नात्वा सप्तकोटीश्वरं शिवम् ॥ ६५ ॥

ये द्रक्ष्यान्त महात्मानो मुक्तिभाजो भवन्ति ते ।  
 राजसूयस्य यज्ञस्य सहस्रगुणितं फलम् ॥ ६६ ॥  
 तथा गोमेधयज्ञस्य दर्शनात्तत्फलं त्विह ।  
 सप्तकोटीश्वरो देवो दृष्टश्चेद्भुवि मानवैः ॥ ६७ ॥  
 धन्यास्ते ये च लोकेऽस्मिंस्तेषां मुक्तिः करे स्थिता ।  
 तत्र स्नानं जपो होमो दानं च पितृतर्पणम् ॥ ६८ ॥  
 सर्वं तदक्षयं शोक्तं सप्तकोटीश्वरे शिवे ।  
 सप्तकोटीश्वरं प्राप्य कथं शोचन्ति जन्तवः ॥ ६९ ॥  
 सर्वानुग्राहको रुद्रस्तस्मिंलिङ्गे व्यवस्थितः ।  
 न तच्छैलमयं लिङ्गं न तद्धैमं न राजतम् ॥ ७० ॥  
 न तद्रत्नमयं लिङ्गं ज्ञातव्यमिति नारद ।  
 किं सञ्जपोतिर्मयं लिङ्गं शैवं पदपनामपम् ॥ ७१ ॥  
 सप्तकोटीश्वरं लिङ्गं माहुर्केदविदो बुधाः ।  
 अहं नारायणो देवः शक्रश्चन्द्रो दिवाकरः ॥ ७२ ॥  
 मरुतो मुनयः सिद्धाः खेचरा भूचराश्च ये ।  
 अर्चयित्वा परं लिङ्गं सप्तकोटीश्वरं शिवम् ॥  
 प्राप्तवन्तः परां सिद्धिं तस्मिंलिङ्गे च नारद ॥ ७३ ॥ ३७२५ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतेशीनकसंवादे शिवार्चन-  
 माहात्म्यादिकथनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

**ब्रह्मोवाच-**उज्जयिन्यां महाकालं ये वै पश्यन्ति मानवाः ।

अवाप्तयुः परं लोकं यत्र गत्वा न शोचति ॥ १ ॥  
 महाकालस्य लिङ्गस्य दिव्यलिङ्गं तदुच्यते ।  
 स्पर्शनात्तस्य लिङ्गस्य सशरीराः शिवं ययुः ॥ २ ॥  
 तज्जात्वा च मया तत्र पापाणः कुक्कुटाकृतिः ।  
 निक्षिप्तश्च महाकाले ततोऽभृत्कुक्कुटेश्वरः ॥ ३ ॥  
 तत्रैव नगरे रम्ये शूलेश्वर इति स्मृतः ।  
 तस्य दर्शनमात्रेण हयभेधफलं लभेत् ॥ ४ ॥  
 शूलेश्वरस्य पूर्वं तु अकारं लिङ्गमुत्तमम् ।  
 तत्र कुण्डं महोदिव्यं पूरितं पुष्पवारिणा ॥ ५ ॥

स्नानं सर्माचरंस्तत्र प्रयतात्मा समाहितः ।  
 द्वितीयेऽह्नि तृतीयेऽह्नि दशमे वाऽपि नारद ॥ ६ ॥  
 पक्षे मासेऽथ पण्मासे स्वप्ने पश्यति शंकरम् ।  
 दिव्यं ज्ञानमवाप्नोति देवानामपि दुर्लभम् ॥ ७ ॥  
 यः पश्येच्छिङ्गमोकारं स्नात्वा कुण्डे समाहितः ।  
 दीक्षासहस्रस्य फलं प्राप्य याति परां गतिम् ॥ ८ ॥  
 तत्रैवागस्त्यमुनिना तपसाऽऽराधितः शिवः ।  
 प्रादुर्भूतश्च भगवानगस्त्येश्वरनामतः ॥ ९ ॥  
 प्रसिद्धो दर्शनात्तस्य ब्रह्महृत्पां व्यपोहति ।  
 तत्रैव शक्तिभेदाख्यं तीर्थं मुनिनिषेवितम् ॥ १० ॥  
 तत्र स्नात्वा भद्रवटं यस्तु पश्यति मानवः ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः स्कन्दलोके महीयते ॥ ११ ॥  
 तीर्थानि कोटिशः सन्ति उज्जयिन्यां समन्ततः ।  
 तेषां महात्म्यमखिलं स्कान्दे स्कन्देन भाषितम् ॥ १२ ॥  
 कुरुक्षेत्रे तु देवर्षे स्थाणुर्नाम महेश्वरः ।  
 तपस्तप्त्वा मया तत्र प्राप्तं ब्रह्मत्वमुत्तमम् ॥ १३ ॥  
 वालखिल्यादैयस्तत्र सिद्धिं प्राप्ताः परां द्विजाः ।  
 तत्राऽऽसीत्पुलहः पूर्वं मशकः स्थाणुमन्दिरे ॥ १४ ॥  
 मृतस्तु विविधान्भोगान्भुक्त्वा दिव्यमनोरथान् ।  
 तदन्ते मत्सृतो जातः स्थाणुमूढप्रभावतः ॥ १५ ॥  
 सर्वदेवमघो यत्र स्थाणुर्नाम महेश्वरः ।  
 इष्टः सकृच्च मनुजः शैवं पदमवाप्नुयात् ॥ १६ ॥  
 तीर्थराज इति ख्यातः प्रयागो मुनिसत्तमाः ।  
 गङ्गायमुनयोस्तत्र संगमो लोकविश्रुतः ॥ १७ ॥  
 तत्र स्नात्वा दिवं गत्वा भोगान्भुक्त्वा यथेष्टया ।  
 आस्ते महेश्वरो यत्र सर्वानुग्राहकः परः ॥ १८ ॥  
 दर्शनादक्षयाल्लोकान्प्राप्नोति मनुजोत्तमः ।  
 अन्यतीर्थं परं गुह्यं गयातीर्थमिति स्मृतम् ॥ १९ ॥  
 यत्र शंभोर्भगवत्श्ररणी सृप्रतिष्ठितौ ।  
 पितृणामक्षया नृसिस्तत्र पिण्डप्रदानतः ॥ २० ॥

महानद्यां नरः स्नात्वा रुद्रपादं स्पृशेद्यदि ।

शिवलोकमवाप्नोति पितृभिः सह मीदते ॥ २१ ॥

महाकालं महातीर्थं कालकालस्य वल्लभम् ।

तत्रापि देवदेवेन विन्यस्तथरणो भुवि ॥ २२ ॥

तत्र स्नात्वा तु मेधावी चरणं पार्वतीपतेः ।

यः पश्यति नरो भक्त्या शैवं पदमवाभुयात्\* ॥२३॥ ३८१८॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे महाकाल-  
माहात्म्यकथनं नाम सप्तपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

प्रायः प्रान्तमुपोष्यं स्पात्तीर्थं देवफलेप्सुभिः ।

मूलं हि पितृनुष्टयर्थं पित्र्यं चोक्तं मर्दापिभिः ॥ १ ॥

यां प्राप्यास्तमुपैत्यर्कः सा चेतस्यात्रिमुहूर्तिका ।

धर्मकृत्येषु सर्वेषु संपूर्णां तां विदुस्तिथिम् ॥ २ ॥

अष्टम्येकादशी पष्ठी तृतीया च चतुर्दशी ।

कर्तव्या परसंयुक्ता अपरा पूर्वमिश्रिता ॥ ३ ॥

बृहत्तल्पा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी ।

कृष्णाष्टमी च समृता कर्तव्या संमुखी तिथिः ॥ ४ ॥

लिङ्गे स्वायंभुवे वाणे रत्ने च रसनिर्मिते ।

सिद्धप्रतिष्ठिते लिङ्गे न चण्डस्पायिकारतः ॥ ५ ॥

वाणलिङ्गं स्वयं भूमिश्चन्द्रकान्तिस्तथैव च ।

चान्द्रापणसमं पुण्यं शंभोर्नैवेद्यभक्षणात् ॥ ६ ॥

वृषं चण्डं वृषं चैव सोमसूत्रं पुनर्वृषम् ।

चण्डं च सोमसूत्रं च पुनश्चण्डं पुनर्वृषम् ॥ ७ ॥

आरं च आरनालं च कांस्यपात्रं मसूरिका ।

चणकास्तिलतैलं च मन्त्रवीर्पहराणि पट् ॥ ८ ॥

वामपार्श्वे विनिक्षिप्य गृहीत्वा वामपाणिना ।

धृत्वा च दक्षिणे पाणौ तैले दद्याज्जलाञ्जलिम् ॥ ९ ॥

\* मत्स्यसंहितातपुस्तके श्वेतदध्यायसमाप्तिरयं न विद्यते । विदु हेतुना केन भगवानित्या-  
दिरभ्यायो योऽस्मिन्पुस्तके एकोनसप्ततितमाध्यायस्याने सगृहीतः सोऽस्यैव शेषः ।

† मत्स्यसंहितातपुस्तके ऋषयर्ष्यायो नास्त्येव ।

‡ यस्मिन्सप्ततपुस्तके इदं धीमार्थं नास्ति ।

गुशब्दस्त्वन्धकारश्च रुशब्दस्तु निरोधकः ।  
 अन्धकारनिरोधेत्वाद्वरुशब्दो निगद्यते ॥ १० ॥  
 गुरुत्यागी लभेन्मृत्युं मन्त्रत्यागी दरिद्रतां ।  
 गुरुमन्त्रपरित्यागात्सिद्धोऽपि नरकं व्रजेत् ॥ ११ ॥  
 एकमर्घ्यं प्रदातव्यं मध्यान्हे भास्करं प्रति ।  
 उभयोः संधयोरपत्त्रिः क्षिपेदसुरक्षयात् ॥ १२ ॥  
 भ्रातृद्वयं न कुर्वीत न कर्तव्यं पितासुतम् ।  
 अनम्रिकं न कर्तव्यं न कुर्याद्भ्रिणीपतिम् ॥ १३ ॥  
 निरम्रिकः स्मृतस्तावद्यावद्भ्रातृणां न विन्दति ।  
 साम्रिको भार्यया युक्त इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥ १४ ॥  
 प्रणाममेकहस्तेन एकं वाऽपि प्रदक्षिणम् ।  
 कालसेवा तथाऽकाले अब्दपुण्यं विनश्यति ॥ १५ ॥  
 सभायां यज्ञशालायां देवतापतने गुरौ ।  
 प्रत्येकं च नमस्कारं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥ १६ ॥  
 गोक्षीरं गोघृतं चैव मुद्गधान्यं तिला यवाः ।  
 एते चैवाक्षारगणा अन्ये क्षारगणाः स्मृताः ॥ १७ ॥  
 मक्षिका मशका वेश्या पाचकाश्चैव मूपकाः ।  
 गणका ग्रामणीश्चैव सप्तैते परभक्षकाः ॥ १८ ॥ ३८३६ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे तिथिनिर्ण-  
 यादिफथनं नामाष्टपष्टितमोऽध्यायः\* ॥ ६८ ॥

नारद उवाच-हेतुना केन भगवान्कालकालो महेश्वरः ।

श्रोतुमिच्छामि भगवन्ब्रूहि मे कमलोद्भव ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच-आसीन्मुनिवरः पूर्वं नाम्ना श्वेत इति स्मृतः ।

तीर्थोदकानि सेवेत यमांश्च नियमांस्तथा ॥ २ ॥

माहेश्वराग्रणीः शान्तो महादेवार्चने रतः ।

तं नेतुमागतः कालो दण्डहस्तो भयंकरः ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा कालं स विभेन्द्रो भयव्याकुलितेन्द्रियः ।

स्पृष्ट्वा कराभ्यां तल्लिङ्गं ध्यापमानो महेश्वरम् ॥ ४ ॥

प्रहसन्नब्रवीत्कालः श्वेतं मुनिवरं मुने ।

प्राप्ते मयि कथं ब्रह्मन्स्वस्थास्तिष्ठन्ति जन्तवः ॥ ५ ॥

\* शङ्खचक्रसहितपुस्तकेष्वत्रैव पुराणस्य समाप्तिः । हेतुना केनेत्यादिरन्तिमोऽध्याय एतेषु पुस्त-  
 केषु नास्त्येव ।

चरन्ति मद्रपात्सर्वे ब्रह्मचर्यं तपांसि च ।  
 तीर्थे दानं प्रशंसन्ति निरताः स्वेषु कर्मसु ॥ ६ ॥  
 यजन्ति मद्रपाद्देवान्यज्ञांश्च विविधांस्तथा ।  
 तस्माद्दुत्तिष्ठ नेष्यामि मम पाशवशं गतः ॥ ७ ॥  
 दातारं नैव पश्यन्ति तवाद्य मुनिपुङ्गवाः ।  
 एवं निशम्य वचनं स वै कालस्य नारद ॥ ८ ॥  
 अपात्रवीद्यमं भीतः पाशहस्तं करालिनम् ।  
 कथमीशार्चनरतं त्वं मां नेतुमिहार्हसि ॥ ९ ॥  
 शिवाचनरतानां च त्वत्तः कस्माद्भयं वद ।  
 एवमुक्तो यमः कोपाद्ब्रह्मन्ध्य मुनिपुङ्गवम् ॥ १० ॥  
 पाशैर्दृढतरैः शीघ्रं ध्यायमानं महेश्वरम् ।  
 अप देवो महादेवः प्रादुर्भूतद्विलोकभृत् ॥ ११ ॥  
 तं दृष्ट्वा देवदेवेशं प्रहृष्टोऽभूत्तदा मुनिः ।  
 शंकरोऽथात्रवीत्कालं मम भक्तं त्रिमोचय ॥ १२ ॥  
 स्वतत्र एव मद्रक्तः स कथं नीयते त्वया ।  
 यदुक्तं देवदेवेन तदतिक्रम्य सूर्यजः ॥ १३ ॥  
 पुनर्ध्वन्ध त्रपतिं स्वर्पुरीं गमनीद्यतः ।  
 अथ देवो महादेवो विश्वेश्वर उमापतिः ॥ १४ ॥  
 अकरोद्भस्मसात्कालं श्वेतः पाशैर्विमोचितः ।  
 दत्तं भगवता तस्मै गाणपत्यं च शाश्वतम् ॥ १५ ॥  
 देव्या सह महादेवः क्षणादन्तर्हितोऽभवेत् ।  
 अनेन हेतुना शंभुः कालकाल इति स्मृतः ॥ १६ ॥  
 अहं च विष्णुना सार्धं स्तुत्वा देवं महेश्वरम् ।  
 प्रसादाथ पुनर्जातः कालः शंभोरनुग्रहात् ॥ १७ ॥  
 अन्यतीर्थं पुण्यतमं ज्वालेश्वरमिति स्मृतम् ।  
 रेवातीरे मुनिश्रेष्ठ महापातकनाशनम् ॥ १८ ॥  
 कोटिशः सन्ति तीर्थानि तस्मिज्ज्वालेश्वरे शिवे ।  
 तत्र स्नात्वा देवऋषे दृष्ट्वा ज्वालेश्वर शिवम् ॥ १९ ॥  
 कुलैकविंशमुद्धृत्य (?) शिवलोके महीयते ।  
 अन्यं श्रीपर्वतं श्रेष्ठं सिद्धानामालयं शुभम् ॥ २० ॥

तत्र सिद्धाश्च मुक्तयो दृश्यन्ते सर्वतो गिरौ ।  
 सदा संनिहितः शंभुलिङ्गे श्रीमल्लिकार्जुने ॥ २१ ॥  
 दृष्टे तस्मिन्परे लिङ्गे जीवन्मुक्तो नरो भवेत् ।  
 मनुष्याः पशवः कौटिमृगाश्वमशकादयः ॥ २२ ॥  
 श्रीपर्वते मृताः सर्वे यान्ति शंभोः परं पदम् ।  
 केदारे परमं तीर्थं प्रियं देवस्य शूलित्तः ॥ २३ ॥  
 तत्र स्नात्वादेकं पीत्वा संपूज्य च पिनाकिनम् ।  
 गाणपत्यमवाप्नोति देवानामपि दुर्लभम् ॥ २४ ॥  
 वृषध्वजे परं तीर्थं देविकायास्तटे मुने ।  
 यत्र स्नात्वा शिवं दृष्ट्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ २५ ॥  
 गोदावरी नदी यत्र निर्गता पापहारिणी ।  
 तत्र देवार्धिदेवेशत्रियम्बक इति स्मृतः ॥ २६ ॥  
 तत्र स्नानं जपो दानं ब्रह्मयज्ञमस्रः कृतः ।  
 सर्वं तदक्षयं प्रोक्तं नूनं ब्रह्मगिरौ मुने ॥ २७ ॥  
 तत्र स्नात्वा शिवं दृष्ट्वा देवदेवं त्रियम्बकम् ।  
 स्कन्दनन्दिसमो भूत्वा क्रीडते शिवसंनिधौ ॥ २८ ॥  
 रेवाया नातिदूरे तु गोकर्णं इति विश्रुतः ।  
 अनुग्रहार्थं लोकानां तत्र संनिहितः शिवः ॥ २९ ॥  
 नियतौऽनियतो वाऽपि यो वा को वाऽपि मानवः ।  
 यस्तु पश्यति गोकर्णं रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ ३० ॥  
 देवस्य वायुर्दिग्भागे देवेशी भद्रकालिका ।  
 योगसिद्धिप्रदा नित्यं दर्शनात्प्राणिनां मुने ॥ ३१ ॥  
 महाबलश्च भगवान्यत्राऽऽस्ते गिरिजापतिः ।  
 तस्य दर्शनमात्रेण गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३२ ॥  
 अन्यदक्षिणगोकर्णं सिन्धुतीर्थं महेश्वरः ।  
 तस्य दर्शनमात्रेण राजसूयफलं लभेत् ॥ ३३ ॥  
 अन्यद्वारुवनं पुण्यं शंकरस्यातिवल्लभम् ।  
 गिरिजापतिना यत्र मोहिता मुनिपत्नयः ॥ ३४ ॥

नारद उवाच-कथं भगवता तात मोहिता मुनिपत्नयः ।

आचक्ष्व तत्समासेन कौतुकं हृदि वर्तते ॥ ३५ ॥



४

**ब्रह्मोवाच-**शृणु नारद वक्ष्यामि भ्रुस्य चरितं शुभम् ।

श्रवणादेव मनुजः शिवस्य दयितो भवेत् ॥ ३६ ॥

भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।

जमदग्निर्भरद्वाजो गोतमो भागुरिस्तथा ॥ ३७ ॥

वामदेवोऽङ्गिराः शङ्खो लिखितश्च बृहच्छ्रवाः ।

विश्वामित्रोऽथ जावालिरन्ये च मुनयस्तथा ॥ ३८ ॥

यज्ञैर्यजन्ति देवेशं तपन्ति च तपस्तथा ।

अज्ञात्वैव परं भावं देवदेवस्य शूलिनः ॥ ३९ ॥

तेषां मूर्धोत्थितो धूमस्तपसा क्लेशितात्मनाम् ।

तेन धूमेन महता व्याप्तो ब्रह्माण्डमण्डपः ॥ ४० ॥

शंभोरुत्सङ्गा देवी धूमव्याप्तं जगन्नयम् ।

दृष्ट्वा पप्रच्छ विश्वेशं कौतुकादीश्वरेश्वरी ॥ ४१ ॥

**देव्युवाच-**आश्चर्यमिव मे भाति धूमव्याप्तमिदं जगत् ।

धूमस्य कारणं ब्रूहि देवदेव महेश्वर ॥ ४२ ॥

**ईश्वर उवाच-**पत्र दारुवनं पुण्यं मम चातीव वल्लभम् ।

तत्र तिष्ठन्ति मुनयस्तपोनिष्ठा जितेन्द्रियाः ॥ ४३ ॥

अविदित्वैव मां देवि शरीरक्लेशकारिणि ।

तेषां मूर्ध्नि स्थितो धूमो व्याप्नोति सचराचरम् ॥ ४४ ॥

कर्माणि यानि लोकेषु पुष्कलानि बहूनि च ।

सर्वाणि निष्कलान्येव मामज्ञात्वैव पार्वति ॥ ४५ ॥

एवं देवस्य वचनं श्रुत्वा मर्षमथाब्रवीत् ॥ ४६ ॥

**देव्युवाच-**देवदेव महादेव मुनीनां भावितात्मनाम् ।

अज्ञानस्य यथा व्याप्तिस्तामहं द्रष्टुमुत्सहे ॥ ४७ ॥

एवं देव्या वचः श्रुत्वा भगवान्नीललोहितः ।

वित्त्वेपमथाऽऽस्थाय ययौ दारुवनं प्रति ॥ ४८ ॥

स्त्रीरूपधारी विष्णुश्च शंकरेण समागतः ।

विष्णुना सह विश्वेशो देवदारुवनौकसः ॥ ४९ ॥

मोहयन्मायया शंभुर्विचचार वने तदा ।

मुनिस्त्रियः शिवं दृष्ट्वा मदनानलदीपिताः ॥ ५० ॥

त्यक्तलज्जा विवस्त्राश्च ययुस्ता अनु शंकरम् ।

स्त्रीरूपधारिणं विष्णुं सर्वे मुनिकुमारकाः ॥ ५१ ॥

धन्वगच्छन्त देतुर्षे कामवाणप्रपीडिताः ।  
 तदद्भुतं तदा ज्ञात्वा कुपिता मुनयस्तदा ॥ ५२ ॥  
 लिङ्गहीनं हरं कृत्वा गोपवेपथरं हरिम् ।  
 तदामभृति विभेन्द्र शिवा मेखलसंज्ञिता ॥ ५३ ॥  
 उभयोश्चैव संयोगः सर्वपापहरः शिवः ।  
 इति श्रुत्वा तु देवर्षिर्ब्रह्मणो वचनं तदा ॥ ५४ ॥  
 जगाम कर्तुं तीर्थानि शिवभक्तिपुरस्कृतः ।  
 एतत्सौरं पुराणं ते यथावत्समुदीरितम् ॥ ५५ ॥  
 यच्छ्रुत्वा मनुजः सम्पगोसहस्रफलं लभेत् ।  
 किं तीर्थैस्तु प्रयागाद्यैः किं यज्ञैर्भूरिदक्षिणैः ॥ ५६ ॥  
 यदि श्रुतं श्रद्धधानैः पुराणमिदमुत्तमम् ।  
 यत्र देवाधिदेवस्य माहात्म्यं कथ्यते विभोः ॥ ५७ ॥  
 गिरीशस्य तु योगीन्द्राः किं तेन सदृशं भवेत् ।  
 श्रद्धधानः शिवे भक्तो नियतः शृणुयादिदम् ॥ ५८ ॥  
 ब्राह्मणांश्चिवभक्तांश्च पुरस्कृत्य समाहितः ।  
 समाप्य सकलं वेदं पूजयेद्वाचकं नरः ॥ ५९ ॥  
 कनकेन सुशुद्धेन तथा चन्दनखण्डकैः ।  
 विश्वेश्वरो महादेवः प्रीयतामिति भावतः ॥ ६० ॥  
 दद्यात्स्वर्णं यथाशक्ति वाचकाय सचन्दनम् ।  
 यद्येकशीरमात्राऽपि दत्ता भूमिः शिवार्थिना ॥ ६१ ॥  
 सा तारयति धातुर्हि पूर्वजान्सकलानपि ।  
 श्रुत्वा ग्रन्थमिदं सम्पदद्याद्दानानि शक्तितः ॥ ६२ ॥  
 तान्यक्षयफलान्याहुर्मुनयो वेदवादिनः ॥ ६३ ॥ ३८९९ ॥  
 इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे शिवतीर्थ-  
 कथन मुनिपक्षिमोहनं नामैकोनसप्तति-  
 तमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

॥ समाप्तमिदं सौरपुराणम् ॥